

UNIVERSAL
LIBRARY

OU_186485

UNIVERSAL
LIBRARY

OSMANIA UNIVERSITY LIBRARY

Call No. **H 539.7**
K 17 P

Accession No. **H 3457**

Author **कपूर, रामचन्द्र**

Title **परमाणु-विसण्डब** 1962.

This book should be returned on or before the date
last marked below.

परमाणु-विखण्डन

हिन्दी-सामांत-ग्रन्थमाला—५७

परमाणु-विखण्डन

लेखक

डा० रमेशचन्द्र कपूर,
इलाहाबाद विश्वविद्यालय

हिन्दी समिति

सूचना विभाग, उत्तर प्रदेश

प्रथम संस्करण, १९६२

मूल्य ९ रु०

मुद्रक

सम्मेलन मुद्रणालय, प्रयाग

प्रकाशकीय

“परमाणु-विखंडन” अत्यन्त महत्वपूर्ण विषय है। आधुनिक विज्ञान की इस उपलब्धि से संसार का कायापलट हो जाने की बड़ी-बड़ी सम्भावनाएँ उपस्थित हो गयी हैं। इसके कारण एक ओर जहाँ युद्ध की विभीषिका में अभूतपूर्व वृद्धि होकर मानव जाति के विनाश का ही खतरा उत्पन्न हो गया है, वहाँ दूसरी ओर सस्ती से सस्ती बिजली तथा जनहित के अन्य सुख-साधनों की उत्पत्ति द्वारा यह मनुष्य और समाज के लिए परम कल्याणकारी भी साबित हो सकता है। परमाणु-शक्ति के इस अवरोक्त सदुपयोग से यथासम्भव लाभ उठाने की ओर ही भारत अग्रसर हो रहा है, यद्यपि बम्बई के निकट स्थापित प्रतिष्ठान की गति-विधि के कारण आज वह इस स्थिति में भी आ गया है कि यदि आवश्यकता पड़े तो वह अल्प समय के भीतर ही परमाणु बम तैयार कर सकता है। थोड़े में इस विषय की वैज्ञानिक जानकारी हिन्दी के पाठकों को हो सके, इसी उद्देश्य से यह पुस्तक हिन्दी समिति द्वारा प्रकाशित की जा रही है।

इस पुस्तक के लेखक डाक्टर रमेशचन्द्र कपूर इस विषय के अच्छे ज्ञाता और सुयोग्य विद्वान् हैं। उन्होंने दिखलाया है कि परमाणु बम तथा परमाणु भट्टी का स्वरूप क्या है, विस्फोट कैसे होता है, परमाणु ऊर्जा का उत्पादन किस तरह किया जाता है और भारत ने इस सम्बन्ध में कहाँ तक उन्नति कर ली है। परमाणु बम विस्फोट की अत्यन्त भयावह विनाशकारी शक्ती का रोमांचक वर्णन भी इसमें है और परमाणु ऊर्जा के कृषि, चिकित्सा

आदि मे होने वाले लाभकारी प्रयोग की तथा जहाजों, रेलों और विमानों के चलाने में उसके प्रयुक्त किये जाने की सम्भावना भी स्पष्ट रूप से दिख-
लायी गयी है। उन्होंने बहुत ही सुबोध भाषा मे अपना अभिमत प्रकट करने की चेष्टा की है और बीच बीच में चित्र भी दिये है जिससे आशय समझने में यथेष्ट सहायता मिलती है।

लीलाधर शर्मा 'पर्वतीय'

सचिव, हिन्दी समिति

विषय-सूची

अध्याय १	परिचय	१
अध्याय २	रेडियधर्मिता (परमाणुओं का प्राकृतिक विखण्डन)	१४
अध्याय ३	मूलभूत कण	२१
अध्याय ४	परमाणु संरचना	४१
अध्याय ५	नाभिक की बंधन ऊर्जा	६२
अध्याय ६	तत्वांतरण (परमाणु-विखण्डन का प्रथम चरण)	६६
अध्याय ७	परमाणु-विखण्डन यंत्र	७७
अध्याय ८	कण एवं विकिरण-सूचक यंत्र	१०१
अध्याय ९*	कृत्रिम रेडियधर्मिता	११६
अध्याय १०	यूरेनियम खण्डन	१२५
अध्याय ११	नाभिकीय शृंखला प्रतिक्रिया	१५१
अध्याय १२	परमाणु ऊर्जा के उपयोग—१ प्रतिकारी	१६८
अध्याय १३	परमाणु ऊर्जा के उपयोग—२ यातायात उपयोग	१९८
अध्याय १४	परमाणु ऊर्जा के उपयोग—३ रेडियधर्मी	
	समस्थानिक	२११
अध्याय १५	नये तत्व	२४८
अध्याय १६	नाभिक संगलन प्रतिक्रिया	२५८
अध्याय १७	परमाणु व ताप नाभिकीय बम	२७०
अध्याय १८	विकिरण से सुरक्षा	२८२

अध्याय १९	भारत में परमाणु-अनुसन्धान की प्रगति	२९१
	परिशिष्ट	
अ	तत्वों के परमाणु-भार	३००
आ	कुछ उपयोगी रेडियधर्मी समस्थानिक	३०५
इ	विशेष उपयोगी रेडियसमस्थानिक	३१०
ई	कुछ उपयोगी स्थिरांक	३१४
उ	व्याख्यात्मक शब्दावली	३१६
ऊ	पारिभाषिक शब्दावली	३२२

अध्याय १

परिचय

प्राचीन काल के हिन्दुओं ने सर्वप्रथम द्रव्य को परमाणुओं से बना हुआ माना। यूनानी विद्वानों ने इसी विचार को भारत से लिया। यूनान के प्रसिद्ध दार्शनिक डिमाक्रिटस ने कहा कि सम्पूर्ण भौतिक वस्तुएँ छोटी इकाइयों से बनी हैं। ये इकाइयाँ और अधिक सूक्ष्म नहीं की जा सकती। इन सूक्ष्मता-इकाइयों को परमाणु या एटम (जो काटा न जा सके) कहा गया। एटम नाम यूनानी दार्शनिकों ने २५०० वर्ष पहले रखा था। यद्यपि यह नामकरण प्राचीन काल में ही हो चुका था, किन्तु यह दार्शनिकों के मष्तिष्क की सामग्री मात्र था।

इसके पाश्चात् बहुत काल तक परमाणु सम्बन्धी यह विचारधारा अन्धकार में रही। पन्द्रह शताब्दियों के बाद पुनः गैलेलियो, डेकार्ट, बायल, बेकन, न्यूटन आदि दार्शनिकों तथा वैज्ञानिकों ने यह मत प्रकट किया कि द्रव्य छोटे-छोटे कणों द्वारा बना है।

अंग्रेजी स्कूल के अध्यापक जॉन डाल्टन ने वर्तमान परमाणु-सिद्धान्त की नींव डाली। उसने अनिश्चित क्रियाओं के स्थान पर एक पुष्ट सिद्धान्त का निर्माण किया। पुराने दार्शनिक अपने विचारों की उड़ानों तक ही सीमाबद्ध रहते थे। डाल्टन के बाद से परमाणु-सिद्धान्त का उपयोग भौतिकी तथा रसायन में निरन्तर बढ़ता रहा। पुराने विचारों को सरलता से हटाना कठिन कार्य होता है। कुछ वैज्ञानिकों ने परमाणु की सत्ता को न मानते हुए विचार प्रकट किया कि परमाणु-सिद्धान्त एक कोरी कल्पना है, वास्तविकता नहीं। परन्तु आज विश्व में कोई विरला ही विचारक होगा जो परमाणु की वास्तविकता पर सन्देह करता हो।

तत्त्वो सम्बन्धी विचार

जिस समय परमाणु की वास्तविकता की कल्पना की जा रही थी, उस समय तत्त्वों संबंधी विचारों में क्रान्तिकारी परिवर्तन आ गये थे। प्राचीन हिन्दू सभ्यता में पंच तत्त्वों का विशेष महत्त्व रहा है, जिसके अनुसार सारा ब्रह्माण्ड पांच तत्त्वों से निर्मित माना जाता था। ये तत्त्व पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु तथा आकाश माने गये हैं। इसी प्रकार यूनानियों ने सृष्टि के निर्माण में चार तत्त्वों की कल्पना की। इन विचारों को बहुत काल तक मान्यता मिलती रही।

अरस्तू ने इन विचारों पर आधारित ब्रह्माण्ड की कल्पना की थी। उसके अनुसार प्रत्येक वस्तु एक आदि तत्त्व^१ तथा अन्य चार तत्त्वों से मिलकर बनी हुई होती है। ये चार तत्त्व थे—पृथ्वी, वायु, अग्नि तथा जल।

कुछ विशेष गुणों के कारण इन तत्त्वों में अन्तर भी माना गया। साथ में यह भी समझा गया कि इन गुणों को घटाने-बढ़ाने से द्रव्य का रूप बदला जा सकता है। कीमियागरों^२ को तो यहाँ तक विश्वास था कि सही पद्धति ज्ञात होने पर एक वस्तु को दूसरी में परिवर्तित किया जा सकता है।

माध्यमिक युग में यही कीमियागर ऐसे पारस पत्थर की खोज करते रहे जिसके द्वारा निम्न प्रकार की धातुओं को स्वर्ण में परिवर्तित किया जा सके। इस काल में लोगों को रासायनिक क्रिया की वास्तविक प्रकृति का ज्ञान न था। कतिपय क्रियाओं के फलस्वरूप पदार्थों के रूप तथा गुणों में पर्याप्त अन्तर आ जाता था। इस अन्तर से ही कीमियागर अपने सिद्धान्त की पुष्टि समझते थे। बहुत-से लोगों ने यह दावा किया कि उन्होंने ऐसे गुर का पता लगा लिया है जिससे वे लौह से स्वर्ण बना सकते हैं। अब यह भली-भाँति ज्ञात हो चुका है कि इनमें से कोई भी सही न था और इस विधि से स्वर्ण का एक कण भी न बन पाया होगा।

अठारहवीं शती के अंत तक तत्त्वांतरण-सिद्धान्त की अन्त्येष्टि हो चुकी थी और रसायन-विज्ञान पर इसका कोई भी प्रभाव शेष न रह गया था। परन्तु कीमियागर कुछ हद तक जनता को चमत्कृत करते रहे, यहाँ तक कि वर्तमान युग में भी कतिपय लोगों ने स्वर्ण बनाने का दावा किया है और आश्चर्य है कि कुछ लोग उन पर विश्वास कर उनके जाल में फँस जाते हैं।

धीरे-धीरे रासायनिक विज्ञान की प्रगति हुई। प्रायः ९० तत्त्वों में द्रव्यों का विभाजन हुआ। ये तत्त्व किसी भी रासायनिक क्रिया द्वारा विभाजित नहीं हो सकते थे। हर तत्त्व के परमाणु का रूप पृथक्-पृथक् था। वह स्थायी तथा अविनाशी प्रतीत होता था।

कहा जाता है कि जब ऐसे दो या इससे अधिक तत्त्व मिलते हैं तो यौगिक बनते हैं। आजकल वैज्ञानिक लोग यौगिकों और तत्त्वों का अन्तर सरलता से ज्ञात कर लेते हैं। हर तत्त्व को पहचानने के बड़े सफल उपाय निकाले गये हैं, यथा एक्स-रे,^१ प्रकाश वर्णक्रम^२। किसी तत्त्व का परमाणु उसका सबसे छोटा कण है। अतः हर तत्त्व के परमाणु में उसी के गुण-धर्म होते हैं।

क्रांतिकारी खोज

बीसवी शताब्दी के प्रारम्भ में एक क्रांतिकारी खोज हुई। इस खोज ने परमाणु की इस रूप-कल्पना को ही भंग कर दिया। सन् १९०२ में अनुसन्धान द्वारा ज्ञात हुआ कि यूरेनियम तथा थोरियम तत्त्व रेडियधर्मी हैं। इस प्रक्रिया में इन तत्त्वों के परमाणु स्वतः रूपान्तरण^३ करते हैं। यद्यपि इनकी गति^४ तो कम होती है, परन्तु सरलता से उनकी पहचान हो जाती है। परमाणु अविनाशी है, इस सिद्धान्त को इस नयी खोज ने जड़ से हिला दिया। रेडियधर्मिता के अध्ययन से परमाणु की संरचना पर बहुत प्रकाश पड़ा। वैज्ञानिकों ने उसके द्वारा यह सिद्ध किया है कि कतिपय भारी तत्त्वों के

1. X-Ray

2. Optical spectrum

3. Spontaneous transformation

4. Rate

परमाणु अविनाशी नहीं हैं, वरन् विस्फोट के साथ विखण्डित होते हैं। इस विखण्डन में प्रचुर मात्रा में ऊर्जा मुक्त होती है। तत्पश्चात् शृंखलाबद्ध तत्त्वों की उत्पत्ति होती है। इन तत्त्वों की जीवन-अवधि सीमित होती है तथा उनके विखण्डन पर अधिक उर्जा के विभिन्न प्रकार के विकिरण निकलते हैं जिनका वर्णन अगले अध्याय में किया जायगा।

रेडियोधर्मिता की खोज ने परमाणु-सिद्धान्त के दूसरे आधारों को भी धक्का पहुँचाया है। डाल्टन ने अपने सिद्धान्त में कहा था कि एक ही तत्त्व के परमाणुओं का भार समान होता है। रेडियोधर्मिता ने एक ही तत्त्व के भिन्न-भिन्न भारों वाले परमाणुओं की उपस्थिति सिद्ध की। यह परमाणु रासायनिक गुणों में बिल्कुल एक-से होते हैं। यदि उन्हें मिला दिया जाय तो किसी भी रासायनिक क्रिया द्वारा वे अलग-विलग नहीं किये जा सकते। ऐसे परमाणुओं को समस्थानिक^१ कहते हैं।

कुछ समय तक वैज्ञानिकों का यह विचार था कि समस्थानिक केवल रेडियोधर्मी परमाणुओं में ही वर्तमान होते हैं। परन्तु यह विचार निर्मूल सिद्ध हुआ। जे० जे० टॉमसन^२ के अनुसन्धानों ने सिद्ध कर दिया कि अरेडियोधर्मी स्थायी तत्त्वों में भी समस्थानिक मिल सकते हैं। इस ओर उसके शिष्य एस्टन ने विशेष सतर्कता के साथ अनुसन्धान किया। उसने एक भार-वर्णक्रम लेखी^३ का आविष्कार किया। इस उपकरणिका से तत्त्वों के समस्थानिक अलग-अलग किये जा सकते हैं। इसके द्वारा आज तक के समस्त तत्त्वों का विश्लेषण हो चुका है। प्राकृतिक अवस्था में पाये जाने वाले अधिकांश तत्त्व समस्थानिकों के मिश्रण हैं।

सन् १९१९ में रदरफोर्ड^४ ने एक खोज की जिसे हम कीमियागरों के स्वप्न की पूर्ति कह सकते हैं। यद्यपि उन्होंने लोहे से स्वर्ण का निर्माण नहीं

1. Isotopes

2. J. J. Thompson

3. Mass-spectrographs

4. Rutherford

किया परन्तु उससे भी कहीं अधिक मौलिक खोज की। रदरफोर्ड ने नाइट्रोजन के कुछ परमाणुओं को आक्सीजन में परिणत किया। यह एक ऐसा प्रयोग था जिसमें परमाणु की बाहरी परिधि को तोड़ कर उसके नाभिक^१ का विखण्डन किया गया। इस विखण्डन से परमाणु का रूप बिलकुल बदल गया और एक परमाणु दूसरे परमाणु में परिवर्तित हो गया। रदरफोर्ड की खोज विज्ञान के लिए क्रान्तिकारी सिद्ध हुई। उसके पश्चात् अन्य अनेक वैज्ञानिक इस परमाणु-विखण्डन क्रिया में सफल हुए। इसी क्रिया द्वारा कृत्रिम रेडियधर्मी^२ तत्व भी बने। ये परमाणु स्थायी तत्वों के समस्थानिक हैं और प्राकृतिक रेडियधर्मी परमाणुओं की तरह विखण्डित होते हैं। उन पर प्राकृतिक रेडियधर्मिता^३ के समस्त नियम लागू होते हैं।

पिछले ३० वर्षों में इस दिशा में विज्ञान में उच्च कोटि का कार्य हुआ है। इन प्रयोगों के निमित्त अत्यन्त मूल्यवान् तथा जटिल उपकरण बने हैं जिनके द्वारा परमाणुओं पर अपूर्व शक्ति का प्रयोग किया जाता है। परमाणु विखण्डन के लिए उच्चस्तरीय ऊर्जा की आवश्यकता होती है और विशेष प्रकार के उपकरण ही इस ऊर्जा को उत्पन्न कर सकते हैं।

परमाणु की संरचना

इस प्रसंग में परमाणु की संरचना पर कुछ कहना अनुपयुक्त न होगा। आज की परमाणु कल्पना डाल्टन की कल्पना से बहुत भिन्न है। अब यह सिद्ध हो चुका है कि परमाणु के खण्ड हो सकते हैं। आइए, हम देखें कि इसके खंड किस प्रकार के होते हैं। यद्यपि हमारे पास ऐसा सूक्ष्मदर्शी यन्त्र नहीं है जिससे हम परमाणु देख सकें, परन्तु वैज्ञानिकों के अनुसन्धानों से हमें उसका एक चित्र तो मिल ही सकता है। उस चित्र से हम परमाणु के आकार की कल्पना कर सकते हैं। हमें यह ज्ञात है कि हर तत्व के परमाणु

1. Nucleus

2. Artificially radio-active

3. Natural Radio-activity

दो प्रकार के कणों से बने हैं जिनमें मौलिक अन्तर होता है। उनमें एक कण को हम नाभिक कहेंगे। नाभिक कण में घनात्मक विद्युत का आवेश होता है। दूसरे कण को हम इलेक्ट्रान^१ कहते हैं। इस पर ऋणात्मक विद्युत स्थापित है। इलेक्ट्रान, नाभिक के चारों ओर उसी प्रकार परिक्रमा करते हैं जैसे अन्य ग्रह सूर्य के चारों ओर। इन दोनों कणों के भार में भी बहुत अन्तर है। इलेक्ट्रान बहुत हलका कण है। इसका भार एक हाइड्रोजन परमाणु के भार का १८००वां अंश है। यह कहना आवश्यक है कि हाइड्रोजन प्रकृति में सबसे हलका तत्त्व है। परमाणु के भार का एक अत्यन्त अल्प भाग इलेक्ट्रान में स्थापित रहता है। इसके विपरीत नाभिक में परमाणु भार का समग्र भार रहता है। इस प्रकार किसी भी तत्त्व का परमाणु भार उसके नाभिक भार के बराबर होता है।

परमाणु का आयतन अति सूक्ष्म होता है। वैज्ञानिकों का कहना है कि परमाणु को आँख से देखना कभी भी संभव न होगा। इसकी सूक्ष्मता का अनुमान इस प्रकार किया जा सकता है कि यदि हम दस करोड़ परमाणुओं को एक रेखा में रखें तब उनकी संयुक्त लम्बाई एक इंच से अधिक न होगी। यह तो रही परमाणु की बात। अब हम उसके नाभिक को देखें। नाभिक को परमाणु का हृदय ही समझना चाहिए। यद्यपि उसमें परमाणु का सारा भार स्थित है, परन्तु उसका आयतन परमाणु के आयतन का एक लाखवां भाग है। सारे परमाणुओं के नाभिक दो प्रकार के मूलभूत कणों से बने होते हैं जो प्रोटान^२, तथा न्यूट्रान^३ हैं। प्रोटान पर घनात्मक विद्युत स्थित होती है, पर न्यूट्रान पर विद्युत् का कोई आवेश नहीं रहता। प्रोटान का भार लगभग हाइड्रोजन के परमाणु-भार के समान है, वास्तव में वह हाइड्रोजन का नाभिक है। दोनों कणों (प्रोटान तथा न्यूट्रान) का भार प्रायः समान

1. Electron

2. Protons

3. Neutrons

होता है। परन्तु सूक्ष्म दृष्टि से देखने पर न्यूट्रान का भार, प्रोटान से थोड़ा अधिक प्रतीत होगा।

विभिन्न तत्त्वों के नाभिकों पर धनविद्युत् का आवेश भिन्न-भिन्न मात्रा में रहता है, परन्तु एक तत्त्व के सारे समस्थानिक परमाणुओं पर विद्युत् आवेश समान रहता है। प्रत्येक तत्त्व के नाभिक पर एक विशेष विद्युत् आवेश होता है जिसकी मात्रा से हम उस तत्त्व को पहचान सकते हैं।

मध्ययुग में कीमियागर तत्त्वों को बदलने का प्रयत्न किया करते थे, परन्तु वे उसमें असफल ही रहे। किन्तु अब हम जानते हैं कि एक परमाणु को दूसरे में परिणत करने के लिए उसके नाभिक पर आक्रमण करना आवश्यक होता है। नाभिक तक पहुँचने में उच्च कोटिका बल लगता है क्योंकि नाभिक के कणों को पास-पास रखने वाली शक्ति परमाणु को अक्षत रखने वाली शक्ति से बहुत अधिक है। इसका एक उदाहरण देखें—

हीलियम एक गैस है जो हाइड्रोजन को छोड़कर सबसे हल्का तत्त्व है। उसके परमाणु हाइड्रोजन से चार गुना भारी होते हैं। इस कारण उसका परमाणु-भार ४ माना गया है। इसके नाभिक में २ प्रोटान तथा २ न्यूट्रान सम्मिलित हैं। इस नाभिक के चारों ओर २ इलेक्ट्रान परिक्रमा करते हैं। यदि हम हीलियम परमाणु से एक इलेक्ट्रान निकालना चाहें तो हमें कुछ ऊर्जा का उपयोग करना होगा। परन्तु यदि हम इसके नाभिक का विखण्डन करें तो पहले प्रयोग से १० लाख गुनी अधिक ऊर्जा की आवश्यकता पड़ेगी। परमाणुओं के नाभिकों के मध्य क्रिया लाने में व्यवहृत ऊर्जा, रासायनिक प्रयोगों से कहीं अधिक होती है।

रदरफोर्ड तथा अन्य वैज्ञानिकों ने परमाणु का तत्त्वान्तरण^१ किया है, परन्तु इस क्रिया में अत्यधिक ऊर्जा प्रयुक्त करना पड़ता था। साथ ही तत्त्वान्तरण वाले परमाणुओं की संख्या अत्यन्त अल्प थी और उनका परीक्षण भी

रासायनिक क्रिया द्वारा सम्भव नहीं था। अतः कार्य में विशेष प्रगति न आ सकी।

संयुक्त राष्ट्र अमेरिका के प्रसिद्ध वैज्ञानिक लारेंस के अद्भुत अन्वेषण कार्य से ही इस दिशा में कार्य द्रुत गति से बढ़ने लगा। सन् १९३२ में उसने एक यंत्र का आविष्कार किया जिसका नाम 'साइक्लोट्रान' है। इसके द्वारा मूलभूत कणों को अत्यन्त वेग से प्रवाहित किया जा सकता है। इसके पश्चात् ये ऊर्जाशील कण दूसरे नाभिकों का लक्ष्य वेध कर नाभिक क्रिया में भाग लेते थे। साइक्लोट्रान द्वारा अनेक अनुसन्धान किये गये जिनसे नाभिक क्रियाओं को समझने में सरलता हुई। परमाणु-भट्टी या परमाणुपुंज बनने के पूर्व इस दिशा में साइक्लोट्रान का ही प्रयोग होता था। न्यूट्रान की खोज

सन् १९३२ में रदरफोर्ड के शिष्य चेडविक^३ ने इंग्लैंड में न्यूट्रान की खोज की। जैसा पहले बताया जा चुका है, न्यूट्रान पर कोई विद्युत आवेश नहीं रहता। इसे हम निरपेक्ष^४ कण भी कह सकते हैं। परमाणु तत्वांतरण और विखण्डन में न्यूट्रान सबसे उपयोगी कण सिद्ध हुआ है। निरपेक्ष होने के कारण इन कणों को दूसरे परमाणुओं के नाभिक तक पहुँचने में कठिनाई नहीं होती क्योंकि उन्हें प्रतिकर्षण^५ का सामना नहीं करना पड़ता।

सन् १९३३ में रेडियम की अन्वेषिका मेरी क्यूरी^६ की पुत्री इरीन क्यूरी^७ और उनके पति फ्रेड्रिक जोलियट^८ ने सर्वप्रथम कृत्रिम रेडियधर्मिता की घोषणा की। यह पहले बताया जा चुका है कि कृत्रिम रेडियधर्मि

1. Cyclotron	2. Atomic pile
3. Chadwick	4. Neutral
5. Repulsion	6. Mary Curie
7. Irene Curie	8. Fredrick Joliet

तत्त्वों पर रेडियधर्मिता के समस्त नियम उसी प्रकार लागू होते हैं जैसे कि रेडियम, यूरेनियम और थोरियम आदि पर ।

नाभिक क्रिया में न्यूट्रान का सर्वप्रथम उपयोग एनरीको फर्मी^१ द्वारा सन् १९३४ में किया गया था । फर्मी इटली राज्य का प्रसिद्ध भौतिकी वैज्ञानिक था । इटली में फासिस्टों के अत्याचारों से तंग आकर उसे अमेरिका में शरण लेनी पड़ी थी । उसकी विधि द्वारा तत्वांतरण की क्रिया सरल हो गयी और आवर्त सारणी के अन्य तत्त्वों पर भी यह क्रिया सम्भव हो सकी । कुछ ही समय में अनेक तत्त्वों के कृत्रिम रेडियधर्मी समस्थानिक बनाये गये ।

यह दशा सन् १९३८ में थी । उस समय जर्मनी के रसायनज्ञ आटो हान^२ ने एक मौलिक खोज की घोषणा की । हान तथा स्ट्रासमान^३ ने न्यूट्रान द्वारा यूरेनियम पर आक्रमण क्रिया की । यूरेनियम प्रकृति में सबसे भारी तत्त्व है । इसका परमाणु-भार २३८ तथा परमाणु-संख्या ९२ है । इन अन्वेषणकर्ताओं का लक्ष्य यूरेनियम से भारी तत्त्वों का निर्माण था, परन्तु उन्हें कुछ और ही प्राप्त हुआ । उन्होंने देखा कि यूरेनियम का परमाणु दो भागों में खण्डित हो गया । साथ में अत्यधिक मात्रा में ऊर्जा का उदय हुआ ।

परमाणु-ऊर्जा

यह वह समय था जब हिटलर का नात्सी राज्य बढ़ रहा था । उसके अत्याचारों से पीड़ित होकर लोग बड़ी संख्या में जर्मनी से भाग रहे थे । इनमें उच्च कोटि के वैज्ञानिक भी थे । उसी समय दो वैज्ञानिकों एक आटो राबर्ट फ्रिश^४ तथा दूसरे (कु) लिज माइटनर^५ को जर्मनी छोड़कर भागना पड़ा । माइटनर इसके पूर्व आटो हान के साथ कैसर विल्हेल्म अनुसन्धान-शाला में उच्चकोटि का कार्य कर चुकी थीं । सन् १९३९ में फ्रिश ने

1. Enrico Fermi

2. Otto Hahn

3. Strassmann

4. Otto Robert Frisch

5. Lise Meitner

डेनमार्क में तथा माइटरनेर ने स्वीडन में ओटो हान की अणुविखण्डन की इस क्रान्तिकारी खोज की सराहना की और इस घटना को नाभिक-खण्डन अथवा न्यूक्लियर फिशन' का नाम दिया। इससे भी अधिक अद्भुत बात यह थी कि इस क्रिया को शृंखलाबद्ध किया जा सकता है।

उस समय एक अनजाने मनुष्य के लिए इन खोजों का कोई स्थायी महत्व नहीं था। उसके लिए यह घटना भी अनेक वैज्ञानिक लेखों की तरह, जिनमें कुछ अनुसन्धानशाला में किये हुए प्रयोगों का वर्णन होता, पत्रिकाओं में छपी घटनाओं के समान थी, परन्तु भौतिक विज्ञान में दक्ष मनुष्यों ने जिन्हें परमाणु ऊर्जा में रुचि थी, इस खोज में एक नये युग का आह्वान पाया। इन प्रयोगों से सिद्ध हुआ था कि परमाणु ऊर्जा अब केवल एक स्वप्न नहीं रहेगी वरन् शीघ्र ही वस्तुतः उत्पादित होगी। इस खोज के साथ ही परमाणु ऊर्जा युग के प्रारम्भ की पुनीत बेला आ पहुँची। दुर्भाग्यवश उस समय द्वितीय विश्व-युद्ध के काले बादल आकाश पर मँडरा रहे थे, इस कारण ऊर्जा का सर्वप्रथम उपयोग विनाश के लिए ही हुआ।

उस समय संसार के बड़े-बड़े वैज्ञानिक इस खोज की महत्ता पर बड़ी बड़ी सभाओं में विवाद कर रहे थे। वे इस प्रयत्न में थे कि परमाणु ऊर्जा को प्रयोग में लाने के लिए एक शृंखलाबद्ध क्रिया सुलभ की जा सके। शृंखला बनने के पश्चात् ही इस क्रिया का परमाणु ऊर्जा-उत्पादन में उपयोग हो सकता था। सन् १९४० में इस प्रकार की एक सभा अमेरिका के वाशिंगटन नगर में हुई। इसमें भौतिकी के बड़े-बड़े दिग्गज—निएल, बोर् तथा फर्मी भी भाग ले रहे थे। उस समय तक शृंखला क्रिया' का पूर्ण सम्भव न हो सका था अतः उसकी पूर्ति के लिए अनेक सुझाव रखे गये थे।

द्वितीय महायुद्ध प्रारम्भ होने के कारण परमाणु ऊर्जा का सारा कार्य गोपनीय बना दिया गया। पाँच वर्ष तक बाह्य संसार को इसका कुछ भी

पता न लग सका। संयुक्त राष्ट्र अमेरिका में ही इसका केन्द्र स्थापित हुआ, जहाँ संसार के कोने-कोने से वैज्ञानिक तथा इंजीनियर लाये गये जिनकी सहायता से और सहरानीय सहकारिता से बहुत कुछ कार्य सम्पन्न हुआ। उस समय सबको एक ही धुन थी कि जल्दी से जल्दी धुरी राष्ट्रों (जर्मनी, इटली तथा जापान) को हराया जाय। पहले जिस कार्य को पूरा होने में, साधारणतः पचास वर्ष लगते, वही कार्य अमेरिका की औद्योगिक शक्ति तथा अनंत पूंजी की सहायता से ५ वर्ष के लघुकाल में सम्पन्न हो गया।

अगस्त १९४५ में यकायक जापान के नगर हिरोशिमा पर परमाणु बम गिरने का समाचार मिला। इसके साथ ही परमाणु-विखण्डन विषयक अनुसन्धानों की कुछ झलक जनसाधारण को मिली।

परमाणु ऊर्जा के सारे अनुसन्धान अत्यन्त गोपनीय रूप से किये गये थे। प्रथम नियंत्रित-खण्डन-वृंखला' को १९४२ में शिकागो विश्वविद्यालय में वैज्ञानिक फर्मी ने फलीभूत किया। प्रथम परमाणु बम का विस्फोट संयुक्त राष्ट्र अमेरिका के न्यू मेक्सिको प्रदेश के रेगिस्तान में सन् १९४५ के वसंत में हुआ। इन प्रयोगों के समाचार अन्य राष्ट्रों को बिलकुल न मिल सके।

द्वितीय महायुद्ध के साथ अस्त्र-शस्त्रों की प्रतियोगिता समाप्त नहीं हुई। अमेरिका के साथ सोवियत रूस ने भी होड़ लगायी। सन् १९४९ में रूस ने प्रथम एटम बम का विस्फोट किया। कुछ समय पश्चात् इंग्लैंड भी इसमें सफल हुआ। अब फ्रांस भी ऐसे बम बना रहा है।

परमाणु ऊर्जा की उत्पत्ति दूसरे स्रोत से भी हुई जिसमें हाइड्रोजन के परमाणुओं का उपयोग होता है। इस प्रतिक्रिया में हाइड्रोजन के परमाणु मिलकर हीलियम बनाते हैं। इसका उपयोग भी विशिष्ट प्रकार के बम बनाने में हुआ है जिन्हें हाइड्रोजन बम कहते हैं। ये बम परमाणु बमों से कई गुने अधिक विनाशकारी होते हैं। परमाणु ऊर्जा का उपयोग विध्वंस-

कारी तथा शान्ति दायक दोनों ही प्रकार के कार्यों में हो सकता है। यदि अत्यन्त अल्प समय में ऐसी ऊर्जा पैदा की जाय जिसकी मात्रा बहुत अधिक हो तब उससे शीघ्र ही विनाशकारी विस्फोट होगा। इसी सिद्धान्त पर परमाणु तथा हाइड्रोजन बम बनाये गये। हलके विस्फोट से सुरंग खोदना, चट्टानों को तोड़ना आदि उपयोगी कार्य भी सिद्ध हो सकते हैं।

परमाणु ऊर्जा का शान्तिप्रद कार्यों में उपयोग करने के लिए आवश्यक है कि उसका ईंधन धीरे-धीरे नियंत्रण में जले। इससे उत्पन्न ऊर्जा का उपयोग घरो, नगरों, गाँवों आदि में जन-साधारण के लिए होना चाहिए। इस ओर भी कुछ प्रगति हुई है। सोवियट रूस ने सर्वप्रथम एक छोटा विद्युत् घर परमाणु ऊर्जा से चलाया। आजकल इस प्रकार के विद्युत् घर इंग्लैंड, अमेरिका तथा रूस में कार्य कर रहे हैं। अमेरिका ने परमाणु ऊर्जा से संचालित पनडुब्बी नावें^१ बनायी है। इनमें से दो नावों ने तो उत्तरी ध्रुव के बर्फ की तह के नीचे यात्रा भी कर ली है। अमेरिका ने परमाणु ऊर्जा संचालित सेवानाह^२ नामक जहाज प्रवाहित किया है जो सारे ससार की परिक्रमा, बिना रुके, कर सकेगा। रूस भी इस ओर पीछे नहीं है। लेनिनग्राड के बंदरगाह में लेनिन^३ नामक हिमभंजक तैयार होकर बाल्टिक सागर की यात्रा कर चुका है।

परमाणु ऊर्जा का अभी तो प्रारम्भ ही हुआ है। अभाग्य से जिन देशों में इस ओर अनुसन्धान हो रहे हैं वे इसे गोपनीय रखने का प्रयत्न करते हैं। यद्यपि यह विज्ञान की नीति के विरुद्ध है, फिर भी विश्वयुद्ध की समाप्ति के १५ वर्ष बाद भी परमाणु ऊर्जा के उपयोगो सम्बन्धी अनुसंधान कार्य को प्रत्येक देश अपनी विशिष्ट बपौती समझता है।

कुछ प्रशंसनीय कार्य भी इस दिशा में हुए हैं जिनमें संयुक्त राष्ट्र संघ

1. Sub-marines
3. Lenin

2. Savannah

की ओर से हुई दो सभाएँ गिनायी जा सकती हैं। इनमें वैज्ञानिकों ने परमाणु-ऊर्जा के शान्तिप्रद उपयोगों पर विचार किया था। पहली सभा सन् १९५५ में जेनीवा में हुई तथा दूसरी उसी स्थान पर १९५८ में। पहली सभा के सभापति भारतवर्ष के भौतिक शास्त्र के प्रमुख पंडित श्री होमी जहां-गीर भाभा थे। अब बड़े राष्ट्रों ने अनुभव किया है कि परमाणु-विज्ञान किसी राष्ट्र विशेष की सम्पत्ति न होकर सारे मानव समाज की भलाई के लिए एक साध्य यंत्र होना चाहिए। ऐसी सभाओं से होने वाले प्रभावों का परिणाम तुरन्त प्रकट नहीं होता। अभी देश-विदेशों के लोगों को एक साथ जुटकर काम करना है जिसके पश्चात् विश्व को उसके लाभकारी फल मिलेंगे।

हाँ, यह तभी सम्भव है जब संसार किसी दूसरे विश्वयुद्ध के चक्कर में न पड़ जाय। भला यह कौन आश्वासन दे सकता है कि परमाणु-ऊर्जा का उपयोग मानव के हित के लिए ही होगा, न कि सारे विश्व को विध्वंस करने के लिए।

अध्याय २

रेडियधर्मिता

(परमाणुओं का प्राकृतिक विखण्डन)

उन्नीसवीं शताब्दी के अन्तिम चरण के सन् १८९५ में जर्मन भौतिक शास्त्री विलियम रंटगन^१ ने अंधकार में विद्युद्विसर्जन विषय पर अनुसंधान-कार्य किया। वह काँच की नलियों में हलके दबाव पर गैसों को लेकर उनके बीच दो विद्युदग्रों^२ से विद्युद्विसर्जन कर रहा था। उन अनुसन्धानों के बीच उसने देखा कि यद्यपि नली काले कपड़े से ढकी थी, तो भी उससे कुछ किरणें निकलती थी। ये किरणें आँखों से नहीं दिखाई पड़ती थीं, परन्तु फोटोग्राफी के प्लेटों पर उनकी छाप पड़ सकती थी। इनके गुणों का अध्ययन करने पर पता चला कि इनका तरंग-दैर्घ्य^३ प्रकाशीय किरणों के दैर्घ्य से बहुत कम था। वे ठोस पदार्थों के बीच से भी निकल सकती थीं। इन किरणों का नाम उसने एक्स-रे^४ अथवा रंटगन-रे रखा। एक्स-रे विकिरण बहुत उपयोगी सिद्ध हुए हैं। इससे शरीर की हड्डियों का चित्र सरलता से लिया जा सकता है। अब तो औषधि-विज्ञान तथा औद्योगिक कार्यों में एक्स-रे का अत्यधिक उपयोग होता है।

एक्स-रे की खोज के थोड़े काल के अनन्तर एक फ्रांसीसी वैज्ञानिक

1 William Roentgen

2. Electrodes

3 Wave-length

4. X-ray, Roentgen-Ray

हेनरी बेक्वरल^१ ने एक दूसरी आश्चर्यजनक खोज की। वह विभिन्न अयस्कों^२ के गुणों पर प्रयोग कर रहा था। अकस्मात् उसने यूरेनियम के अयस्क को एक काले कागज से लिपटी फोटोग्राफी प्लेट पर रख दिया। उस प्लेट को विकसित करने पर उसने देखा कि ठीक उसी स्थान पर अयस्क की छाप बन गयी। अन्य अयस्कों में से थोरियम के अयस्कों ने भी प्लेट पर उसी प्रकार अपनी छाप डाली। उसने इन अयस्कों से निकलने वाली किरणों को बेक्वरल किरणों के नाम से पुकारा। कुछ समय पश्चात् पियर क्यूरी तथा मेरी क्यूरी ने बेक्वरल किरणों पर अन्वेषण किया। उन्होंने देखा कि ये किरणें एक नय तत्त्व से, जो यूरेनियम के अयस्क में सदैव सूक्ष्म मात्रा में पाया जाता है, विशेषतः निकलती थीं। उन्होंने इस तत्त्व का नाम रेडियम रखा। विशुद्ध रेडियम तत्त्व अंधेरे में द्युतिमान्, तथा ऊष्मा-ऊर्जा का विकिरण करता है। इनसे भयंकर फफोले पड़ जाते हैं। क्यूरी के अनुसन्धानों से ज्ञात हुआ कि कुछ अन्य तत्त्व, जैसे थोरियम, यूरेनियम, पोलोनियम, रेडान, में भी इसी प्रकार के गुण वर्तमान हैं। इस प्रकार की विकिरण-सामर्थ्य वाले तत्त्वों के गुण को रेडिय-धर्मिता या विकिरण-शीलता कहने लगे।

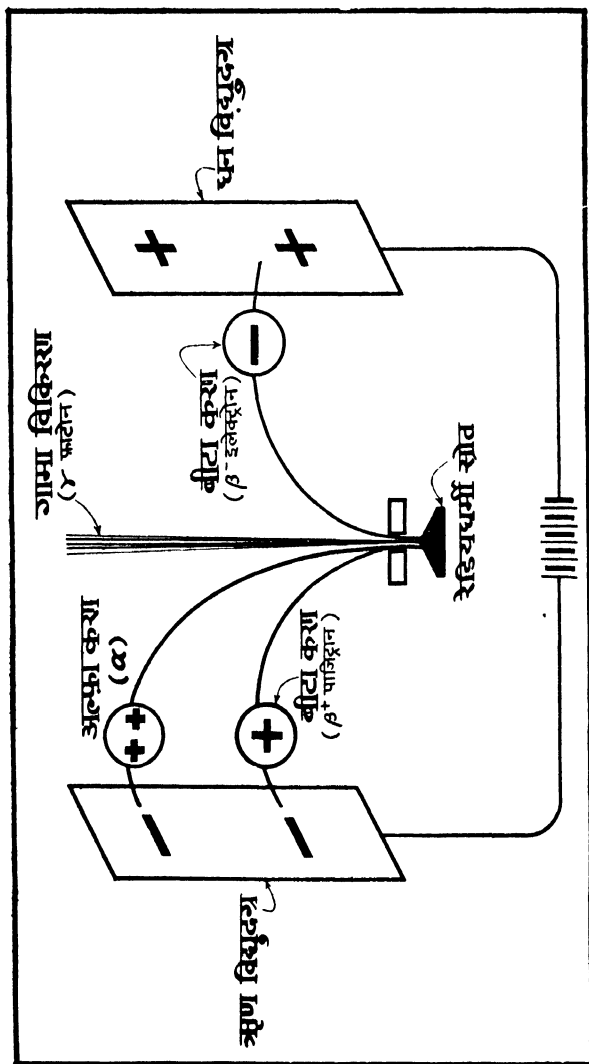
सर्व-प्रथम रदरफोर्ड ने रेडियधर्मिता की विवेचना प्रस्तुत की। रदर-फोर्ड न्यूजीलैंड के नागरिक थे। उच्च शिक्षा के हेतु वे जे० जे० टामसन के पास इंग्लैण्ड आये थे। अन्त में वे इंग्लैण्ड में ही रहने लगे। रदर फोर्ड तथा साडी^३ ने सन् १९०२ में यह प्रकाशित किया कि बेक्वरल किरणें अस्थिर परमाणुओं के कारण अद्भुत हैं। परमाणु-विच्छेदन से एक प्रकार का विस्फोट होता है जिससे तीन तरह की किरणें निकलती हैं। इन्हें क्रमशः अल्फा-किरण^४ बीटा-किरण^५, तथा गामा-किरण^६

1 Henri Becquerel

2. Ores

3. Soddy

4. (α -ray),5. (β -ray)6. γ -ray



चित्र संख्या १—विकिरण के विद्युत गुण

नाम दिये गये हैं। अल्फा-किरण आवेशयुक्त हीलियम परमाणु हैं। इन्हें हीलियम का नाभिक भी कह सकते हैं। बीटा-किरण स्वयम् ही इलेक्ट्रान है। गामा-किरण लगभग एक्स-रे के समान गुण वाले विकिरणों का ही नाम है।

अल्फा-किरण के कण वे हीलियम परमाणु है जिन पर दो विद्युत् धन आवेश होता है। इनका परमाणु-भार ४ है। बीटा-किरण के कणों में एक विद्युत् ऋण आवेश होता है। उनका भार एक हाइड्रोजन के नाभिक भार का $\frac{1}{1836}$ वां भाग है। इस प्रकार उनका भार परमाणु-भार की तुलना में शून्य ही माना जाता है। यदि अल्फा-किरण किसी नाभिक से निकल जाय तब उसका भार ४ अंश तथा नाभिक आवेश २ अंश कम हो जाता है। दूसरी ओर नाभिक से एक बीटा-कण निकल जाने पर भार तो उसका उतना ही रहता है, परन्तु आवेश एक अंश बढ़ जाता है। (नाभिक पर धन आवेश है। उसमें से एक ऋण आवेश निकल जाने पर धन आवेश में एक की वृद्धि होगी)। गामा-किरण निकलने पर नाभिक के भार या आवेश पर कुछ अंतर नहीं पड़ता।

प्रकृति में रेडियधर्मी रूपान्तरण की शृंखला पायी जाती है। रेडियम विच्छेदन की शृंखला निम्न प्रकार होगी—

रेडियम	$\xrightarrow{\alpha}$	रेडान	$\xrightarrow{\alpha}$	रेडियम-ए	$\xrightarrow{\alpha}$
	(अल्फा)		(अल्फा)	(पालोनियम)	(अल्फा)
भार	२२६	२२२		२१८	
आवेश	८८	८६		८४	

रेडियम-बी	$\xrightarrow{\beta}$	रेडियम-सी	$\xrightarrow{\beta}$	रेडियम-डी	$\xrightarrow{\alpha}$	रेडियम-ई
(सीसा)	(बीटा)	(बिसमथ)	(बीटा)	(पोलोनियम)	(अल्फा)	(सीसा)
भार	२१४	२१४		२१४		२१०
आवेश	८२	८३		८४		८२

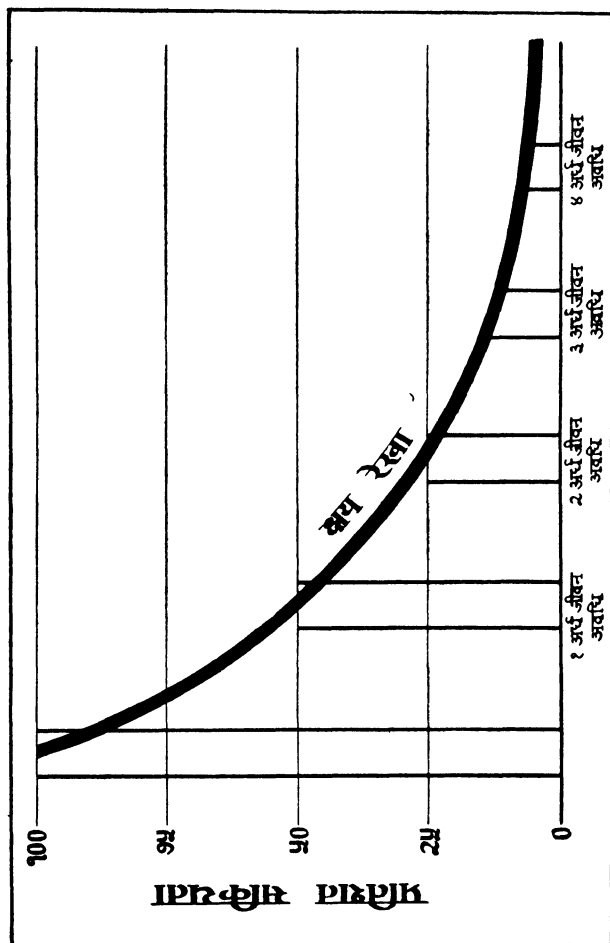
यूरेनियम तथा थोरियम भी इसी प्रकार शृंखलाबद्ध विच्छेदित होते हैं और अनेक परमाणुओं को जन्म देते हैं। इस समय चालीस प्रकार के रेडियो-तत्त्व प्राकृतिक विच्छेदन में मिलते हैं। ये सारे तत्त्व रेडियधर्मी हैं।

यह तो रही प्राकृतिक रेडियधर्मिता की बात। अब वैज्ञानिकों का चमत्कार देखिये। इस समय तक लगभग सारे तत्त्वों के कृत्रिम रेडियधर्मी समस्थानिक बनाये जा चुके हैं। कुछ ऐसे तत्त्व भी हैं जो प्रकृति में नहीं पाये जाते, परन्तु कृत्रिम रूप में बनाये गये हैं। ये भी रेडियधर्मी हैं।

रेडियधर्मिता का क्षय तथा अर्धजीवन अवधि

रेडिय तत्त्वों से तीन प्रकार की किरणें निकलती हैं। ये किरणें नियमानुसार ही निकला करती हैं। उदाहरण के लिए एक ग्राम यूरेनियम ले लीजिए। इस संमात्रा में से लगभग २४०० अल्फा-कण प्रति सेकेंड निकलेंगे। इस प्रकार यूरेनियम के २४०० परमाणुओं का प्रति सेकेंड विच्छेदन होगा। यह संख्या साधारणतः बड़ी ज्ञात होती है, परन्तु एक ग्राम यूरेनियम के सम्पूर्ण परमाणुओं की दृष्टि से वह बहुत ही न्यून है। इस समूची संमात्रा के आधे परमाणुओं के विच्छेदन में ४५० करोड़ वर्ष लग जायेंगे। यह पहले बताया जा चुका है कि यूरेनियम परमाणु के विच्छेदन से उत्पन्न परमाणु अस्थिर होने के कारण, बीटा-कण निकालता है। इस रूपांतरण के एक बार प्रारम्भ होने पर क्रिया की शृंखला चलती रहती है। प्रत्येक दशा पर अस्थिर परमाणु बनता है जो स्वयं दूसरे को जन्म देता है। यूरेनियम शृंखला में पाँचवा स्थान रेडियम का है।

किसी रेडिय-तत्त्व की सक्रियता समयानुसार कम होती जाती है। उस सक्रियता में परिवर्तन के कुछ नियम हैं। जितने काल में किसी तत्त्व की रेडियधर्मिता का आधा भाग रह जाता है, उस काल को अर्धजीवन अवधि कहते हैं। यह बात चित्र देखने से भलीभाँति समझी जा सकती है। प्रत्येक रेडियधर्मी तत्त्व की अर्धजीवन-अवधि स्थिर होती है। यह स्थिरांक तत्त्व की मात्रा पर निर्भर नहीं होती, वरन् यदि हम उस तत्त्व की किसी भी



चित्र संख्या २—अर्धजीवन अवधि का अर्थ

मात्रा से आरम्भ करें तो स्थिर समय के पश्चात् उसकी आधी मात्रा रह जायगी। यदि हम मात्रा १ से चलें तो 'क' समय के पश्चात् वह $\frac{1}{2}$ रह जाती है, फिर यदि $\frac{1}{2}$ से चलें तो भी समय 'क' के पश्चात् $\frac{1}{2}$ का $\frac{1}{2}$ अर्थात् $\frac{1}{4}$ रह जायगी।

विभिन्न तत्त्वों के अर्धजीवन काल अलग-अलग होते हैं। उदाहरण के लिए रेडियम का अर्धजीवन काल लगभग १६०० वर्ष है और यूरेनियम का ४५० करोड़ वर्ष और रेडियम सी०, का $10,661,666$ सेकेंड है।

हम जानते हैं कि तत्त्व के रासायनिक गुण उसके नाभिक आवेश अथवा परमाणु-संख्या पर निर्भर होते हैं। अल्फा या बीटा कण निकल जाने से तत्त्व एक दूसरे में परिवर्तित हो जाते हैं। यह ध्यान देने योग्य है कि अल्फा या बीटा-किरण निकल जाने से अत्यधिक मात्रा में ऊर्जा मुक्त होती है। यदि रेडियम की थोड़ी मात्रा बन्द नली में रख दी जाय तो उससे निकलने वाले कण रेडियम अथवा बंद दीवार से टकरायेंगे। वे अपनी गतिज ऊर्जा ऊष्मा में परिवर्तित करते रहते हैं जिससे नली का ताप बाहर से कुछ अधिक रहता है।

रेडियधर्मी रूपांतरण स्वतः होता और नियन्त्रण में नहीं रह सकता। चरम ऊष्मा या शीत का इस क्रिया पर कुछ भी प्रभाव नहीं पड़ता। हम उसे केवल देख सकते हैं, उस पर अनुसन्धान कर सकते हैं, परन्तु उसे परिवर्तित नहीं कर सकते।

अध्याय ३

मूलभूत कण

जिन कणों की प्रतिक्रिया और संयोग द्वारा समस्त ब्रह्माण्ड का निर्माण हुआ है, उनको हम मूलभूत कण कह सकते हैं। यह एक ऐसा पारिभाषिक शब्द है जिसकी संज्ञा प्राचीन काल से बदलती आयी है। न्यूटन के समय की विचारधारा के अनुसार हर एक वस्तु के पृथक् पृथक् मूलभूत कण थे। उदाहरणार्थ जल, वायु, लौह, नमक, काँच आदि हर एक वस्तु के विभिन्न कण माने जाते थे। उन्नीसवीं शताब्दी में रसायनज्ञों के कार्यों से ज्ञात हुआ कि ससार की सारी वस्तुएँ लगभग ९० तत्त्वों से बनी हैं।

१९१० के लगभग परमाणु के अन्दर की एक झलक मिली। यह ज्ञात हुआ कि परमाणु एक ठोस गोला नहीं है, वरन् उसके अन्दर एक नन्हा नाभिक है जिसके चारों ओर इलेक्ट्रान परिक्रमा करते हैं। इसके दस वर्ष पश्चात् नाभिक का भी विखण्डन हुआ। तत्पश्चात् अन्य प्रयोगों द्वारा ज्ञात हुआ कि नाभिक भी अटूट नहीं है, वरन् दो प्रकार के कणों से बना है जिन्हें वैज्ञानिकों ने न्यूट्रान एवं प्रोटान कहा। इस प्रकार परमाणु की ऊपरी खाल निकालने के पश्चात् हमें यह ज्ञात हुआ कि जिन ९० तत्त्वों को हम मूलभूत समझते बैठे थे वे सारे तीन प्रकार के कणों द्वारा निर्मित हैं, प्रोटान, न्यूट्रान और इलेक्ट्रान।

इनके साथ भौतिक शास्त्रियों ने प्रकाश-कण अथवा फोटान को भी जोड़ दिया। यह कण समय-समय पर एक्स-रे, गामा विकिरण, फोटान आदि अनेक रूपों में दिखाई देता है। कभी इसका तरंग रूप रहता है और कभी कण रूप। इस द्वैतवाद को समझने का श्रेय आधुनिक भौतिकी को

है जिसने यह बताया है कि यह द्वैतवाद केवल फोटॉन में ही नहीं है वरन् हर कण में पाया जाता है। हर कण में तरंग गुण भी वर्तमान है या हम यह कहें कि प्रकाश-तरंग भी उसी प्रकार का कण है, जैसे इलेक्ट्रॉन, प्रोटॉन आदि।

नाभिक रसायन, नाभिक यांत्रिकी

इन चार कणों के मूलभूत कण होने का सुनहरा स्वप्न भी शीघ्र ही ढह गया। वर्तमान समय में भौतिकी के क्षेत्र में विशेष प्रगति प्रयोगशाला तथा सैद्धान्तिक अनुसन्धान दोनों ही क्षेत्रों में हुई। भौतिकी ज्ञान का अंतरिक्ष सदा बदलता रहा है। इस अलौकिक विज्ञान के कार्यकर्ता बड़ी तीव्र गति से ज्ञान-सीमा बढ़ा रहे हैं। गैलीलियो और न्यूटन के भौतिकी सिद्धान्तों से इंजीनियरी की यांत्रिक शाखाएँ निकली। तीस-चालीस वर्ष पहले भौतिक शास्त्री रेडियो तरंगों, इलेक्ट्रॉन-विज्ञान, प्रकाश-विज्ञान, वर्णक्रम-विज्ञान, आदि के अनुसन्धान में तन्मय थे। आज वे इन विषयों को छोड़ चुके हैं और इस समय इन विषयों पर इंजीनियरी और रसायन के विशेषज्ञ कार्य कर रहे हैं। यहाँ तक कि पिछले पन्द्रह वर्षों पहले की नाभिक भौतिकी से आज नाभिक रसायन और नाभिक यांत्रिकी नामक विषय उत्पन्न हो गये हैं।

आज का भौतिक शास्त्री एक ओर ब्रह्माण्ड के निर्माण की समस्या को सुलझा रहा है और दूसरी ओर अणु, परमाणु, नाभिक को पार करता हुआ न्यूट्रॉन, प्रोटॉन की बनावट पर ध्यान दे रहा है। उसने ज्ञात किया कि नाभिक के अन्दर न्यूट्रॉन और प्रोटॉन एक अभूतपूर्व प्रतिक्रिया द्वारा जुड़े हैं। इस अनुसन्धान में मेसान आदि कुछ अन्य कणों का भी ज्ञान प्राप्त हुआ। अब प्रोटॉन भी विखण्डित हो गया और उसके अन्दर की बनावट का भी ज्ञान संगृहीत हो रहा है। यह ज्ञान अत्यन्त क्लिष्ट, अभूतपूर्व एवं अप्रत्याशित होते हुए भी विस्मयजनक और सौन्दर्यपूर्ण है।

जैसा कि ऊपर संकेत किया गया है, इन मूलभूत कणों को नये सम्यक् उपकरणों द्वारा देखने से पता चलता है कि इनके अन्दर भी अनेक विचित्र कण उपस्थित हैं।

उच्च ऊर्जाशील कणदण्ड इस अनुसन्धान के मुख्य अस्त्र हैं। इनके द्वारा ही वैज्ञानिक परमाणु-जगत् की खोज करता है। द्रव्य की परम संरचना का ज्ञान प्राप्त करने के लिए कण त्वरक नितान्त आवश्यक है। इन विशाल उपकरणों में इलेक्ट्रान, प्रोटान आदि कणों को प्रचण्ड मात्रा में त्वरित करते हैं। ये त्वरित कण नाभिक का वेधन कर उसकी जाँच करते हैं। इन कणदण्डों द्वारा परमाणु नाभिक से फोटान, न्यूट्रान, मेसान आदि को मुक्त करता है। ये मुक्त कण स्वयम् अनुसन्धान में उपयोगी सिद्ध हुए हैं।

इस समय तक लगभग तीस उप-परमाणविक कण ज्ञात हैं। अभी तक उनकी रचना ज्ञात नहीं हो सकी, न उनकी प्रतिक्रियाएँ ही पूर्णतया विदित हो पायी हैं। उनके संयोजन से ही सारे द्रव्य का निर्माण होता है। इस समय यही हमारे मूलभूत कण हैं। अभी इनकी सख्या में वृद्धि या कमी हो सकती है। इन कणों के भार, विद्युत आवेश, और प्रतिक्रिया स्वभाव का पता लगाया जा चुका है।

आइंस्टान के सापेक्षवाद के आधार पर यह अनुमान किया गया कि प्रत्येक कण का एक विपरीत प्रतिकण भी होना चाहिए। प्रतिकणों की उपस्थिति प्रयोगों द्वारा सिद्ध हो चुकी है। कण और प्रतिकण के कुछ गुणों में समानता और अन्य में विषमता होती है। इनके भार तथा भ्रमि समान होते हैं और दूसरे कणों द्वारा होनेवाली प्रतिक्रियाओं में भी समानता होती है। परन्तु इनके विद्युत आवेश विपरीत होते हैं।

कण तथा प्रतिकण के समीप आने पर दोनों पूर्णतया नष्ट हो जायेंगे और उनकी समात्राएँ ऊर्जा में परिणत होकर वेगवान् प्रकाश तरंग उत्पन्न करेगी। परमाणु बम में तो यूरेनियम कण का अल्प भाग ही ऊर्जा में परिणत होता है, परन्तु यहाँ तो सम्पूर्ण समात्रा ही ऊर्जा में परिणत हो सकती है। इस प्रकार यह प्रतिक्रिया परमाणु बम से सहस्रों गुना शक्तिशाली होगी। वेगवान् कणों के आक्रमण द्वारा प्रतिकण उत्पन्न हो सकते हैं। परन्तु यह अपने समीप के कणों से मिलकर शीघ्र ही नष्ट हो जाते हैं। इस कारण यह

अनुमान है कि प्रतिकर्णों का हम संग्रह नहीं कर सकते। परन्तु क्या ऐसे ब्रह्माण्ड हैं जो प्रतिकर्णों द्वारा ही बने हों? उनका क्या स्वरूप होगा और वे किन नियमों से शासित होते होंगे? अभी हम इसका उत्तर देने में असमर्थ हैं।

इस समय हमारे मूलभूत कर्णों के संग्रहालय में विचित्र जन्तु है। इनमें अधिकतर अत्यन्त अस्थिर है जिससे उनकी जीवन-अवधि क्षणिक होती है। ये शीघ्र प्रतिक्रिया करते हैं जिससे ये तत्त्वांतरित हो सकते हैं या नष्ट हो सकते हैं। अंत में इलेक्ट्रान, प्रोटान या न्यूट्रान बच रहता है और ऊर्जा का उदय होता है। भीमकाय त्वरकों में दी गयी विशाल विद्युत् ऊर्जा का अतः प्रकाश, ऊष्मा या न्यूट्रानों में ही होता है। परन्तु इस घटना के मध्य में क्षणिक काल के लिए कुछ अद्भुत छटा दिखाई देती है जो भौतिक शास्त्रियों के ज्ञान की वृद्धि के लिए अमूल्य है।

अधिकांश भौतिक शास्त्रियों का विचार है कि यह सारे कर्ण मूलभूत न होंगे। हो सकता है कि इसमें सत्यता हो। जिस प्रकार किसी समय हम आवर्त सारणी के सारे तत्त्वों को मूलभूत कहा करते थे, परन्तु हमारा वह विश्वास भ्रान्ति सिद्ध हुआ। उसी प्रकार हम इन कर्णों के बारे में भी स्पष्ट उत्तर देने में असमर्थ हैं। आधुनिक त्वरकों द्वारा कर्णों की संरचना की धुँधली झलक ही मिल सकी है। इनका सफल विश्लेषण अधिक भीमकाय त्वरकों द्वारा ही संभव हो सकेगा। क्वान्टम यांत्रिकी के नियम परमाणुओं की प्रतिक्रिया में अत्यन्त सफल सिद्ध हुए हैं। इनके द्वारा वैज्ञानिक अनेक विलक्षणताओं का सफल विवेचन कर सके हैं। परन्तु क्या यही नियम उप-पारमाणविक विमितियों में भी सफल सिद्ध होंगे? यह सम्भव है कि ये नियम इन कर्णों के आकार की दूरी पर लागू न हो सकें। यह भी हो सकता है कि दिक्-काल सम्बन्धी हमारे विचार उप-पारमाणविक जगत् के लिए पर्याप्त न हों। क्या दिक् में कोई न्यूनतम दूरी है जिससे कम अन्तर तक हम नहीं पहुँच सकते?

अभी हमें यह ज्ञात नहीं कि इन विश्लेषणों से क्या खोजें होंगी, परन्तु

इतना निश्चित है कि इन अभूतपूर्व अनुसन्धानों से अनेक प्रश्नों के उत्तर मिलेंगे जिससे मनुष्य के ज्ञान की सीमा में वृद्धि होगी।

आइए, अब हम इन कणों का निरीक्षण करें।

इलेक्ट्रान

सर्वप्रथम जे० जे० टामसन ने कहा था कि विद्युत् का निर्माण कणों से होता है। उसने विद्युद्विसर्जन के प्रयोगों द्वारा दिखाया कि ऋण विद्युदग्र^१ से कुछ किरणें निकलती हैं। ये किरणें विद्युदग्र से सीधी रेखा में निकलती हैं और धन विद्युदग्र^२ की स्थिति से प्रभावित नहीं होती। इन किरणों पर विद्युत् का ऋण आवेश रहता है। वास्तव में ये ऋण विद्युत् के कण हैं। इन किरणों को विद्युदाविष्ट पट्टियों^३ के प्रभाव से विक्षेपित किया जा सकता है। प्रभावशाली चुम्बक से भी इनको मार्ग से विक्षेपित कर सकते हैं। इन किरणों में प्रतिदीप्ति^४ का गुण होता है।

टामसन ने इन किरणों पर बड़ी सावधानी पूर्वक प्रयोग किये। उसने इनका वेग मालूम किया तथा इनके आवेश और संमात्रा का अनुपात^५ प्रयोगों द्वारा निकाला। अचम्भेवाली बात यह थी कि इनका वेग प्रत्येक प्रयोग में विभिन्न था, परन्तु^६ अनुपात सर्वदा समान निकला। विभिन्न विसर्ग नलियों^७ तथा विभिन्न गैसों से^८ का अनुपात एक ही मिला। इन अनुसंधानों के पश्चात् सन् १८९७ में टामसन ने कहा “मैं इससे यह परिणाम निकालता हूँ कि ये पदार्थ के कणों द्वारा वाहित ऋण आवेशीय विद्युत कण हैं।” बाद के अनुसन्धानों द्वारा अब हम यह जान गये हैं कि ये किरणें इलेक्ट्रान की धाराएँ थीं। सन् १९०९ में अमेरिकन वैज्ञानिक राबर्ट मिलिकन^९

1. Negative electrodes	2. Positive electrodes
3. Charged plates	4. Fluorescence
5. Discharge tubes	6. Robert Millikan

ने अमेरिका के शिकागो विश्वविद्यालय में इलेक्ट्रान पर परम आवेश ज्ञात किया। इसके निमित्त उसने एक प्रयोग किया जो आलम्बित तैल बिन्दु विधि नाम से प्रसिद्ध हुआ। इस प्रयोग द्वारा इलेक्ट्रान पर 4.8×10^{-10} स्थि० वै० मा० (स्थिर वैद्युत मात्रक) ऋण आवेश और 1.6×10^{-19} ग्राम संमात्रा स्थिर हुई। इतनी सूक्ष्म संख्याओं का अनुमान असम्भव-सा है। अब आइए, इलेक्ट्रान की संमात्रा की तुलना सबसे हलके तत्त्व “हाइड्रोजन” के परमाणु की संमात्रा से करें। हाइड्रोजन परमाणु की संमात्रा 1.67×10^{-24} ग्राम है। इस प्रकार हाइड्रोजन परमाणु इलेक्ट्रान से 1836 गुना भारी है।

प्रत्येक परमाणु में इलेक्ट्रान रहते हैं और सारे इलेक्ट्रान एक से होते हैं, चाहे ये हाइड्रोजन के हों या यूरेनियम के। तुलना के हेतु इलेक्ट्रान का आवेश 1 माना जाता है। परमाणु के आवेशों के माप की इकाई यही है, चाहे वह आवेश धन हो या ऋण। हाइड्रोजन के परमाणु में 1 इलेक्ट्रान रहता है जो नाभिक की परिक्रमा एक कक्षा में करता है। हाइड्रोजन की परमाणु-संख्या भी एक है। यूरेनियम प्रकृति में सबसे भारी तत्त्व है। उसके परमाणु में 92 इलेक्ट्रान परिक्रमा करते हैं। उसकी परमाणु-संख्या 92 है।

सारे पदार्थों में इलेक्ट्रान स्थित है। ये परमाणु के वे अंग हैं जो उसमें रासायनिक क्रियाएँ एवं परिवर्तन करते हैं। मनुष्य की जितनी भी दैनिक क्रियाएँ हैं, जैसे आग जलाना, भोजन पकाना व पचाना, शरीर को बढ़ाना आदि ये सब इलेक्ट्रान द्वारा ही संचालित होती हैं। अरबों इलेक्ट्रान बिजली के तारों में घूमते हैं। इस प्रकार विद्युत् रूपी ऊर्जा का प्रवाह होता है जो हमारे नित्य-प्रति प्रयोग में आती है। बिजली के लैम्प के भीतरी तार तन्तु में इलेक्ट्रान का प्रवाह होने से वह दहकता है और हमें प्रकाश देता है।

इलेक्ट्रान पंखे के मोटर के घात्र^१ में प्रवाहित होकर उसे घुमाते हैं जिससे हमें गर्मियों में सुखदायी वायु मिलती है। हमारे दैनिक जीवन के लिए इलेक्ट्रान बड़े उपयोगी हैं। रेडियो तथा टेलीविजन इलेक्ट्रान के कारण काम करते हैं। रेडियो के वाल्व इलेक्ट्रान प्रवाह से ही कार्य करते हैं। टेलीविजन का पटचित्र इलेक्ट्रान-दड ही बनाते हैं।

पाजिट्रान

इंग्लैण्ड के एक प्रसिद्ध भौतिक शास्त्री डिरैक^२ ने सन् १९३०^३ में यह तर्क रखा कि इलेक्ट्रान की तरह एक धन आवेश वाला ऐसा कण प्राप्त होना चाहिए जिसका भार तो इलेक्ट्रान के समान हो, आवेश भी समान हो, किन्तु जिसकी प्रकृति इलेक्ट्रान की विलोम (अर्थात् धन) हो।

सन् १९३२ में एंडरसन^४ ने केलीफोर्निया (अमेरिका) में इस कण को खोज निकाला। उसने विल्सन अभ्र प्रकोष्ठ में कणों के द्वारा निर्मित चिह्नों के चित्र लिये। इन चित्रों में कुछ चिह्न ऐसे कणों के थे जो इलेक्ट्रान के समान-भारीय तथा धन आवेश के ही हो सकते थे। ये कण द्रव्य पर अंतरिक्ष किरण^५ के आघात से पैदा होते थे। इनका जीवनकाल अत्यन्त सूक्ष्म था। एंडरसन ने इनका नाम पाजिट्रान^५ रखा।

बहुतेरे प्रयोगों के पश्चात् पाजिट्रान बड़ी कठिनता से देखने को मिला था। जिस प्रकार इलेक्ट्रान के विपरीत उद्भव के बाद यह द्रव्य में उपस्थित पाया जाता है उसी प्रकार यह द्रव्य में विद्यमान नहीं रहता, अपितु ज्यों ही इसका उद्भव होता है अल्प समय पश्चात् यह अनंत में विलीन हो जाता है। यह शीघ्र ही इलेक्ट्रान से मिल जाता है और इस क्रिया में दोनों का विनाश होकर

1. Armature

2. Dirac

3. Anderson

4. Cosmic Ray

5. Positron

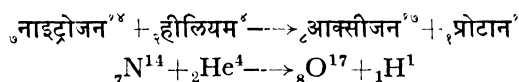
ऊर्जा की उत्पत्ति होती है। इस कारण पाज़िट्रान अधिक समय तक स्वतन्त्र अवस्था में नहीं रह सकता।

पाज़िट्रान की खोज तथा उसके गुणों के अध्ययन से इस ब्रह्माण्ड का एक अलौकिक तथ्य, कि दो कण मिलकर एक दूसरे का नाश कर सकते हैं और इस क्रिया से ऊर्जा उत्पन्न होती है, प्रकाश में आया। यह भी पता लगा कि इसके विपरीत अन्तरिक्ष या गामा-किरणों कणों में भी परिवर्तित हो सकती है और यह कि पदार्थ का ऊर्जा में तथा ऊर्जा का पदार्थ में परिवर्तन इस ब्रह्माण्ड में सदा से होता चला आ रहा है।

प्रोटान

इलेक्ट्रान की खोज के बाद, टामसन के शिष्य रदरफोर्ड ने परमाणु-रचना की ओर ध्यान दिया। परमाणु का वैद्युत रूप से निरपेक्ष होना ज्ञात ही था। परमाणु में इलेक्ट्रान की उपस्थिति भी सिद्ध हो गयी थी। अतः अब अनुमान इस बात का था कि यतः इलेक्ट्रान में ऋण विद्युत् का आवेश है इस कारण धन विद्युत् आवेशमय कण की सत्ता भी अवश्य होनी चाहिए। अन्य वैज्ञानिक भी धन विद्युत कण की खोज कर रहे थे और अनेक प्रयोगों द्वारा प्रोटान की पहचान भी की गयी। सन् १८८६ में जर्मन वैज्ञानिक गोल्डस्टाइन ने धन किरणों की खोज की। ये किरणें भी विसर्ग नली में पायी गयी परन्तु, ये इलेक्ट्रान-दंड के विपरीत दिशा की ओर चलती हैं। टामसन ने धन किरणों का सुचारु रूप से परीक्षण किया और इस कार्य में समस्थानिक तत्त्वों की खोज हुई। इसका वर्णन आगे किया जायगा। इस कार्य को और सूक्ष्मता से एस्टन ने किया। उसने एक यंत्र बनाया जिसको परमाणु-भार वर्णक्रमलेखी^१ या मास स्पेक्ट्रोग्राफ कहते हैं। इसके द्वारा परमाणुओं की संमात्राओं का सूक्ष्म अन्तर ज्ञात हो सकता है।

इन अनुसन्धानों से ज्ञात हुआ कि हाइड्रोजन का आवेशयुक्त परमाणु सब से छोटा धन आवेशयुक्त कण है। इसके पश्चात् रदरफोर्ड द्वारा किये जा रहे कृत्रिम तत्त्वांतरण विषयक प्रयोगों के समय हाइड्रोजन का धनावेशयुक्त परमाणु मुक्त हुआ। उन्होंने नाइट्रोजन, सोडियम, एल्यूमिनियम आदि तत्त्वों पर अल्फा कण का आक्रमण किया। इसके परिणामस्वरूप हाइड्रोजन का आवेशयुक्त परमाणु मुक्त हुआ। इस क्रिया को निम्न रूप से लिखा जा सकता है—



इस समीकरण में संकेत के ऊपरी अंक प्रत्येक कण की समात्रा तथा नीचे के अंक नाभिक आवेश बताते हैं।

इन क्रियाओं के बाद रदरफोर्ड ने १९२० में बताया कि धनावेशयुक्त हाइड्रोजन परमाणु एक मूलभूत कण है। यह प्रत्येक परमाणु में उपस्थित है। उन्होंने इसका नाम प्रोटान प्रस्तावित किया जिसे विज्ञान-संसार ने सहर्ष स्वीकार किया। अब प्रोटान एक मूलभूत कण माना जाता है। यह समस्त परमाणु-रचना की एक आवश्यक ईंट है। किसी परमाणु में इसकी उपस्थित संख्या उसकी परमाणु-संख्या बताती है। परमाणु-रचना विषयक विस्तृत विवरण अन्यत्र मिलेगा।

प्रति-प्रोटान

डिरेक के सिद्धान्त का अनुसरण करने से पाजिट्रान की खोज हुई। यह इलेक्ट्रान का प्रतिकण है। इसके बाद वैज्ञानिकों ने परिमाणिक अनुमान किया कि प्रोटान का भी ऐसा ही प्रतिकण होना चाहिए जिसका भार तो प्रोटान के समान होना चाहिए, पर आवेश उसके विपरीत (१ ऋण मात्रक) हो।

अंतरिक्ष किरणों या अत्यन्त ऊर्जाशील कणों के द्रव्य पर प्रतिक्रिया करने से इलेक्ट्रान-पाजिट्रान युग्म उत्पन्न होते हैं तथा इसकी पुष्टि अनेक

प्रयोगों द्वारा हो चुकी थी। अनुमान किया गया कि प्रोटान, प्रति-प्रोटान युग्म उत्पन्न करने के लिए लगभग दो सहस्र गुना अधिक ऊर्जा की आवश्यकता होगी। यह ऊर्जा अंतरिक्ष किरणों द्वारा प्राप्त हो सकती है और अंतरिक्ष किरणों के चित्रों की विवेचना द्वारा अनेक वैज्ञानिकों ने प्रति-प्रोटान की खोज के दावे किये थे, परन्तु इनकी पुष्टि न हो सकी।

१९५५ में केलीफोर्निया विश्वविद्यालय का बीवाट्रान^१ नामक त्वरक महत्तम ऊर्जा से कार्य करने लगा जिसके द्वारा प्रथम बार उच्चतर ऊर्जा का नियंत्रित स्रोत उपलब्ध हुआ। इसके द्वारा इतनी ऊर्जा प्राप्त हो सकती थी कि जिससे प्रोटान, प्रति-प्रोटान युग्म उत्पन्न हो सके। अक्टूबर १९५५ में सेग्रे, चेम्बरलेन एवं अन्य सहकार्यकर्ताओं की विज्ञप्ति के अनुसार बीवाट्रान उपकरण के द्वारा प्रति-प्रोटान की खोज हुई। उन्होंने इस कण की खोज की तथा प्रोटान, प्रति-प्रोटान प्रतिक्रिया द्वारा द्रव्य के नष्ट होने का अद्भुत चमत्कार देखा।

न्यूट्रान

यह आश्चर्यजनक बात है कि न्यूट्रान की खोज के बहुत पहले तीन वैज्ञानिकों ने उसके अस्तित्व के विषय में भविष्यवाणी की थी। अमेरिका में हारकिस^२, आस्ट्रेलिया में मेसन^३ और इंग्लैण्ड में रदरफोर्ड ने विचार व्यक्त किया कि अवश्य ही कोई ऐसा मूलभूत कण होना चाहिए जिस पर कोई विद्युत् आवेश न हो और जिसका भार हाइड्रोजन परमाणु के बराबर हो। इस कण का नामकरण उसकी खोज से पहले ही हारकिस ने कर दिया था।

आइए, हम यह देखें कि ऐसे कण में कौन-कौन से गुण-धर्म होंगे। इस कण पर कोई आवेश न होगा, इस कारण उस पर विद्युत् क्षेत्र का कोई

प्रभाव न होगा। यह ठोस प्रतिरोध के बीच से निःशंक निकल जायगा। इसको पहचान पाना भी कठिन होगा क्योंकि यह अपने मार्ग के चारों ओर आयनीकरण न करेगा (आयनीकरण एक गुण है जो आवेशयुक्त कणों में होता है। इसकी चर्चा आगे होगी)।

जब न्यूट्रान की खोज सफल हुई और उसके गुण देखे गये तब ऊपर लिखित सारे विचार सही उतरे। न्यूट्रान ने परमाणु-विज्ञान में बड़ा भारी ऐतिहासिक कार्य किया।

न्यूट्रान की खोज को सफल बनाने में दो प्रयोगों का स्थान अत्यन्त महत्वपूर्ण है। इनमें से एक प्रयोग जर्मनी में बोथे तथा बेकर^१ ने १९३० में किया तथा दूसरा बेरीलियम पर परमाणु विखण्डन का १९३२ में फ्रांस में जोलियट-क्यूरी^२ ने। इन दोनों निरीक्षणों का तब सही उत्तर नहीं मिला था। उसी समय रदरफोर्ड के शिष्य चैडविक^३ ने दोनों प्रयोगों के बारे में अपने विचार प्रगट किये। उसने कहा कि इन प्रयोगों में एक ऐसा कण निकलता है जिसका भार हाइड्रोजन के बराबर है, परन्तु आवेश न्यून है। न्यूट्रान की खोज होते ही उसे एक मूलभूत कण मान लिया गया। आवेश-युक्त कण में आयनीकरण का गुण होता है। इस कारण वे अपने मार्ग में आयनों का सकेत मार्ग छोड़ते जाते हैं। इस गुण का लाभ उठाकर विल्सन ने एक अभ्र प्रकोष्ठ बनाया जिसमें प्रोटान, इलेक्ट्रान आदि अपने मार्ग पर वाष्प की रेखा बनाते थे। परन्तु न्यूट्रान के आवेशरहित होने के कारण कोई चिह्न नहीं बनता था। न्यूट्रान द्रव्य के बीच में कणों से टकराता हुआ टेढ़ी-मेढ़ी गति से चलता है। धीरे-धीरे उसका वेग कम होता जाता है और अन्त में वह रुक जाता है। परन्तु वह सीसा-जैसे भारी परमाणु से टकराये तो उतने ही वेग से वह वापस आ जाता है। उसके वेग में शिथिलता

1. Bothe and Becker
3. Chadivick

2. Joliet-Curie

नहीं आती। कभी-कभी न्यूट्रान सीसे की मोटी तह से भी छन कर बाहर निकल जाता है। और कभी जल की पतली दीवार ही उसे रोकने में पर्याप्त समर्थ होती है।

खोज के पश्चात्, न्यूट्रान बहुतेरी अनुसन्धान शालाओं में पहचाना जा चुका है और अब एक स्वर से उसे मूलभूत कण माना जाता है।

प्रति-न्यूट्रान

अनेक कणों के प्रतिकणों की उपस्थिति के प्रमाण मिल चुकने के पश्चात् वैज्ञानिकों का विचार हुआ कि प्रति-न्यूट्रान की खोज भी सम्भव है। प्रति-न्यूट्रान भी दूसरे प्रतिकणों की भाँति सामान्य द्रव्य में न रह सकेगा, परन्तु उसका निर्माण क्षण-कालिक होना ही सम्भव था।

यह हम पहले देख चुके हैं कि प्रोटान, प्रति-प्रोटान दोनों का विध्वंस प्रतिक्रिया द्वारा हो सकता है। परन्तु यदि दोनों कण इतने निकट न आयें कि वे ध्वंस हो जायें तो यह भी सम्भव है कि एक कण अपना आवेश दूसरे कण को स्थानान्तरित कर दे। इसके फलस्वरूप दोनों कण आवेशरहित हो जायेंगे और न्यूट्रान तथा प्रति-न्यूट्रान का निर्माण होगा।

प्रोटान + प्रतिप्रोटान → न्यूट्रान + प्रतिन्यूट्रान

१९५६ में केलीफोर्निया विश्वविद्यालय के बीटाट्रान त्वरक द्वारा इस कण की खोज इसी प्रतिक्रिया द्वारा की गयी। प्रतिन्यूट्रान तथा न्यूट्रान मिलने से दोनों नष्ट हो जाते हैं और मिलने के फलस्वरूप प्रकाश की आभा उत्पन्न होती है। इसी प्रकाश द्वारा प्रति-न्यूट्रान की उत्पत्ति की पहचान हो सकी थी।

न्यूट्रान और प्रति-न्यूट्रान दोनों ही आवेशरहित कण होंगे। यह प्रश्न उठ सकता है कि दोनों में क्या अन्तर है? वैज्ञानिकों का अनुमान है कि दोनों के चुम्बकीय गुण विपरीत होंगे।

न्यूट्रिनो

अनेक रेडियतत्त्वों से बीटाकण मुक्त होते हैं। अल्फाकणों के विपरीत

इन बीटाकणों की ऊर्जा समान नहीं होती। ये कण भिन्न-भिन्न ऊर्जायुक्त होते हैं जिनकी एक महत्तम सीमा रहती है। यह निरीक्षण-ऊर्जा अक्षयता-वाद के विपरीत पड़ती थी। इस समस्या के समाधान के हेतु प्रसिद्ध स्विटजरलैण्ड निवासी भौतिक शास्त्री वुल्फगैंग पाउली ने १९३१ में एक सिद्धान्त प्रस्तुत किया।

इस सिद्धान्त के अनुसार रेडियधर्मी तत्त्वों से इलेक्ट्रान मुक्त होते समय एक और कण भी स्वतन्त्र होता है जो आवेशरहित है और जिसका भार शून्य ही है। इस कण का नाम न्यूट्रिनो रखा गया। अब यह ज्ञात है कि नाभिक में इलेक्ट्रान स्वतन्त्र अवस्था में उपस्थित नहीं रहते, वरन् एक प्रतिक्रिया द्वारा उत्पन्न होते हैं और उसी क्षण मुक्त हो जाते हैं। यह क्रिया निम्नरूप से लिखी जा सकती है :—

न्यूट्रान → प्रोटान + इलेक्ट्रान + न्यूट्रिनो

पाउली ने यह अनुमान किया कि इस प्रतिक्रिया द्वारा उदित ऊर्जा इलेक्ट्रान तथा न्यूट्रिनो में विभाजित रहती है। प्रत्येक परमाणु में दोनों का योग स्थिर रहता है, परन्तु अनुपात भिन्न-भिन्न रहता है। इसी कारण विभिन्न ऊर्जा-युक्त इलेक्ट्रान दृश्य होते हैं। इस सिद्धान्त के अनुसार न्यूट्रिनो कण आवेशरहित होगा और उसका भार शून्य होगा। इसको देखना या इसके द्वारा प्रतिक्रिया करना अत्यन्त कठिन होना चाहिए।

परमाणु-विखण्डन प्रयोगों द्वारा ऐसे अनेक रेडिय समस्थानिक बनाये गये हैं जो पाजिट्रान (धन इलेक्ट्रान) को मुक्त करते हैं। इस ओर अन्वेषण करने पर ज्ञात हुआ है कि मुक्त पाजिट्रान भी बीटा कणों की भाँति समान ऊर्जाशील नहीं होते हैं। इस कारण यह अनुमान है कि इन क्रियाओं द्वारा भी न्यूट्रिनो मुक्त होंगे।

न्यूट्रिनो की पहचान करने के अनेक प्रयत्न किये गये। १९४२ में ऐलेन ने बेरीलियम समस्थानिक पर प्रयोग किये जिनके द्वारा अवैयक्तिक विधि से न्यूट्रिनो की उपस्थिति का आभास हो सकता था। १९५६ में सेवानाह नदी पर स्थित संयुक्त राष्ट्र अमेरिका के परमाणु ऊर्जा आयोग की

औद्योगिक प्रयोगशाला के प्रतिकारी पर प्रयोग किये गये। इन प्रयोगों में मुक्त न्यूट्रिनो की प्रोटान पर हुई प्रतिक्रिया देखी गयी। उसी के आधार पर न्यूट्रान और पाजिट्रान का निर्माण हो सका। इन प्रयोगों द्वारा इस कण की खोज की सर्वप्रथम पुष्टि हुई।

अब अनेक कणों के प्रतिकणों की खोज हो चुकी है। इलेक्ट्रान, प्रोटान, न्यूट्रान तीनों के प्रतिकण ज्ञात हैं। इनका जीवन काल हमारे ब्रह्माण्ड में अत्यन्त क्षणिक होता है। इस कारण वैज्ञानिकों के सामने यह प्रश्न आया कि क्या न्यूट्रिनो के साथ प्रति-न्यूट्रिनो भी उपस्थित रहते हैं? वैज्ञानिकों की वर्तमान विचारधारा के अनुसार प्रति-न्यूट्रिनो का अस्तित्व मान्य है। वास्तव में रेडियतत्त्वों से जब इलेक्ट्रान मुक्त होते हैं तब उनका प्रतिकण (प्रति-न्यूट्रिनो) भी स्वतन्त्र हो जाता है। इसी प्रकार कुछ अन्य रेडियतत्त्वों के द्वारा पाजिट्रान के मुक्त होते समय न्यूट्रिनो निकलता है। इस प्रकार अमेरिका के १९५६ के अनुसन्धानों से प्रति-न्यूट्रिनो की ही पुष्टि हुई थी। परन्तु १९५७ में कोबाल्ट-५८ के अनुसन्धानों द्वारा न्यूट्रिनो की क्षणिक उपस्थिति का भी आभास हुआ।

इन कणों के न तो आवेश है और न संमात्रा। किसी दूसरे कण से इनकी प्रतिक्रिया की सम्भावना शून्य के निकट ही है। सूर्य में नाभिक प्रतिक्रिया द्वारा विशाल मात्रा में न्यूट्रिनो मुक्त होते हैं। न्यूट्रिनो के दण्ड पृथ्वी के आर-पार बिना प्रतिक्रिया किये चले जायेंगे। प्रतिक्षण अरबों न्यूट्रिनो हमारे शरीर को बेधते रहते हैं। दिन में सूर्य की ओर से वे कण-दण्ड सामने से आते हैं। रात्रि में जब सूर्य पृथ्वी की दूसरी ओर रहता है तो न्यूट्रिनो दण्ड पृथ्वी को पार करते हुए हमारे पास आ जाते हैं।

मेसान

१९३५ में जापानी भौतिक शास्त्री युकावा ने ऐसे कण की कल्पना की जिसका भार इलेक्ट्रान से लगभग २०० गुना अधिक होगा। यह कण नाभिक में उपस्थित प्रोटान न्यूट्रानों को स्थिर रखने में सहायक होगा।

१९३६-३७ में अमेरिका के एंडर्सन तथा उनके सहकार्यकर्ताओं ने अंतरिक्ष किरणों की बौछार के प्रयोगों में ऐसे कणों को पहचाना जिनका भार इलेक्ट्रॉन से २०७ गुना अधिक था। यह कण धनावेश एवं ऋणावेश अवस्था में पाये गये थे। इनका जीवनकाल अत्यन्त अल्प था। एंडर्सन ने इन कणों का नाम 'मेसोट्रॉन' प्रस्तावित किया। कुछ अन्य लोगों ने गुरु इलेक्ट्रॉन,^१ बेरिट्रॉन^२ तथा युकॉन^३ नाम भी प्रस्तावित किये। भारत के प्रसिद्ध भौतिकशास्त्री होमी जहाँगीर भाभा ने मेसान^४ नाम प्रस्तावित किया जिसे १९४७ में अंतर्राष्ट्रीय भौतिकी संघ ने सर्वसम्मति से स्वीकार किया। अब मेसान परिवार में अनेक कण खोजे जा चुके हैं। इस कारण इनका वर्गीकरण करना आवश्यक हो गया है। एंडर्सन द्वारा खोजे गये कणों को म्यू-मेसान^५ अथवा म्यूऑन^६ कहते हैं।

१९४७ में एक अन्य मेसान समूह कणों की खोज इंग्लैण्ड में पावेल तथा ओचियालिनी^७ ने की। ये कण इलेक्ट्रॉन से २७३ गुना भारी थे तथा धनावेश और ऋणावेश अवस्था में पाये गये। इनका नाम पाई-मेसान^८ अथवा पायान् रखा गया। ये कण अंतरिक्ष किरणों की प्रतिक्रिया द्वारा देखे गये थे। इनके अतिरिक्त एक आवेशरहित मेसान की भी खोज हुई जो इलेक्ट्रॉन से २६४ गुना भारी है। इसे निरावेश पाई-मेसान कहते हैं। ये समस्त कण अत्यन्त अस्थायी होते हैं। पाई-मेसान शीघ्रता से म्यू-मेसान में परिवर्तित होते हैं। तत्पश्चात् म्यू-मेसान इलेक्ट्रॉन अथवा पाज़िट्रॉन में परिवर्तित होकर ऊर्जा को मुक्त करते हैं।

1. Mesotron	2. Heavy electron
3. Barytron	4. Yukon
5. Meson	6. μ Meson
7. Muons	8. Powell and
9. π Meson; Pion	Occhialini

पाइ-मेसान → म्यू-मेसान → इलेक्ट्रान या पाज़िट्रान

निरावेश म्यू-मेसान की उपस्थिति की कोई पुष्टि अभी तक नहीं मिल सकी।

मेसान कणों को निम्न तालिका में दिया जा रहा है—

हल्के मेसान के गुण

कण का नाम	संकेत	भार	जीवन अवधि (सेकेंड)
ऋण पाइ-मेसान	π^-	२७३.८	2.4×10^{-6}
धन पाइ-मेसान	π^+	२७३.३	2.4×10^{-6}
शून्य पाइ-मेसान	π^0	२६४.३	4×10^{-14}
ऋण म्यू-मेसान	μ^-	२०६.७	2.14×10^{-6}
धन म्यू-मेसान	μ^+	२०६.७	2.14×10^{-6}

नोट—इस तालिका में इलेक्ट्रान का भार कणों के भार का मात्रक है।

गुरु मेसान अथवा के-मेसान

लगभग १९४७ से कुछ ऐसे कणों की खोज हुई है जो पाइ-मेसान से भारी है, परन्तु प्रोटान से हल्के है। इन कणों को के-मेसान कहा जाता है। ये घनावेशयुक्त, ऋणावेशयुक्त और निराविष्ट अवस्थाओं में पाये जाते हैं। इनकी पहचान अंतरिक्ष किरणों एवं अनुसन्धान शाखाओं में हो चुकी है। इन कणों की न्यूनतम संख्या १० मानी जाती है जिनमें चार घनावेशयुक्त, (थीटा⁺ θ^+ , टाऊ⁺ τ^+ , टाऊ⁺ τ^+ और कप्पा⁺ K^+) चार ऋणावेश युक्त (थीटा⁻ θ^- , टाऊ⁻ τ^- , टाऊ⁻ τ^- और कप्पा⁻ K^-) और दो निरावेश है। (के_१^० K_1^0 अथवा थीटा^० θ^0 और के_२^० K_2^0)

इन सारे कणों का भार इलेक्ट्रान से लगभग ९६६ गुना अधिक है। ये अत्यन्त अल्पजीवी हैं। ये शीघ्र ही पाइ या म्यू-मेसान में परिणत हो जाते हैं।

के-मेसान नाभिक पर वेगवान् प्रोटान या ऋणाविष्ट म्यू मेसान के आक्रमण से बनते हैं। कभी कभी ये नाभिक विच्छेदन द्वारा मुक्त होते

पाये गये हैं। इस कारण हम यह मान सकते हैं कि इनकी उत्पत्ति दो नाभिकीय प्रतिक्रियाओं द्वारा होती है। ऐसा सम्भव है कि अन्तर-नाभिकीय शक्तियों में इनका हाथ रहता हो। के-मेसानों के कुछ अद्भुत गुणों के कारण इन्हें 'विचित्र कणों' के परिवार में रखा जाता है। ऐसे अन्य कणों का जिन्हें हाइपेरान कहते हैं, आगे वर्णन किया जायगा।

के-मेसान समूह के कणों के गुणों का विवरण निम्नतालिका में दिया है :—

के-मेसान के गुण

कण का नाम	सकेत	भार	जीवन अवधि (सेकेड)
ऋण के-मेसान	K^-	९६६.५	1.2×10^{-6}
धन के-मेसान	K^+	९६६.५	1.2×10^{-6}
शून्य के-मेसान-१	K_1^0	९६५	10^{-10}
शून्य के-मेसान-२	K_2^0	९६५	10^{-6}

नोट :—इलेक्ट्रान का भार इन कणों के दिये गये भार का मात्रक है।

हाइपेरान

सन् १९४९ से ही अभ्र कोष्ठक और प्रकाश-पायस प्रयोगों में कुछ ऐसे पथ दृष्टिगोचर हुए जो प्रोटान से भारी कणों द्वारा ही सम्भव थे। इनका सर्वप्रथम वर्णन ब्रिटेन में मेन्चेस्टर विश्वविद्यालय के कार्यकर्ता राचेस्टर एव बटलर ने किया था। इन्हीं कार्यकर्ताओं ने के-मेसान की भी खोज की। ये कण भी विचित्र कणों की श्रेणी में आते हैं। इन कण-समूहों को हाइपेरान कहा गया।

इन कणों की जीवन-अवधि 10^{-10} सेकेड के लगभग होती है। वर्तमान सिद्धान्त के अनुसार इन कणों की जीवन-अवधि 10^{-13} सेकेड होना चाहिए

1. Strange particles

थी। इस कारण इन कणों को विचित्र कण कहा गया। हाइपेरान के क्षय से प्रोटान या न्यूट्रान और पाई-मेसान उत्पन्न होते हैं।

इस परिवार में अब तक सात कणों की खोज हो चुकी है। सर्वप्रथम लैम्डा-कण की खोज हुई थी जो निरावेश है। १९५८ में इसके प्रतिकण प्रति-लैम्डा के पथ को प्रकाश-पायस द्वारा देखा गया था। १९५९ में इस कण को केलिफोर्निया विश्वविद्यालय की विकिरण प्रयोगशाला के बुदबुद कोष्ठक में एल्वेरेज ने भी देखा था। लैम्डा कण शीघ्र ही तत्वांतरित होकर प्रोटान और ऋण पाई-मेसान उत्पन्न करता है। इसके विपरीत प्रति-लैम्डा के क्षय द्वारा प्रति-प्रोटान और धन पाई-मेसान उत्पन्न होते हैं।

इस परिवार में दूसरा समूह सिगमा-कणों का है। ये कण धन, ऋणा-विष्ट एवं निराविष्ट अवस्था में भी पाये जाते हैं। धन सिगमा-कण का विच्छेदन दो प्रकार से सम्भव है। एक के द्वारा प्रोटान और निराविष्ट पाई-मेसान उत्पन्न होते हैं। दूसरी संभावना के अनुसार न्यूट्रान और धन पाई-मेसान उत्पन्न हो सकते हैं। इसके विपरीत ऋण सिगमा-कण के विच्छेदन से न्यूट्रान और ऋण पाई-मेसान उत्पन्न होते हैं। निराविष्ट सिगमा-कण विच्छेदित हो लैम्डा और गामा-विकिरण उत्पन्न करता है।

तीसरे जाई-समूह में अभी तक दो कणों की खोज हो सकी है। इन्हें प्रपात हाइपेरान भी कहते हैं। १९५२ में मैनचेस्टर विश्वविद्यालय की प्रयोगशाला में अंतरिक्ष विकिरण अनुसन्धानकर्ताओं ने ऋण जाई-कण की खोज की थी। तत्पश्चात् जापानी भौतिक शास्त्री ने जाई-शून्य कण के बारे में भविष्यवाणी की। १९५९ में केलीफोर्निया विश्वविद्यालय के बुदबुद कोष्ठक द्वारा एल्वेरेज ने जाई-शून्य कण की भी खोज की। ऋण जाई-कण के विच्छेदन से ऋण पाई-मेसान और लैम्डा-कणों की उत्पत्ति होगी। जाई-शून्य कण विच्छेदित हो निरावेश पाई-मेसान और लैम्डा-कण उत्पन्न करेगा।

हाइपेरान-कण मेसान-कण और नाभिक की प्रतिक्रिया द्वारा उत्पन्न होते हैं। इन्हें अन्तरिक्ष किरणों की प्रतिक्रिया तथा प्रयोगशाला की

कृत्रिम प्रतिक्रियाओं द्वारा उत्पन्न होते देखा गया है। नाभिक पर प्रतिक्रिया द्वारा उत्पन्न होने के कारण इन्हें उत्तेजित नाभिक समझा जा सकता है। जिस प्रकार सामान्य नाभिक उत्तेजित दशा में फोटॉन मुक्त करते हैं उसी प्रकार हाइपेरान उत्तेजित दशा में पाई-मेसान मुक्त करते हैं।

हाइपेरान-कणों के गुण निम्नलिखित तालिका में दिये गये हैं। इन कणों के भार का मात्रक इलेक्ट्रॉन रखा गया है।

कण का नाम	संकेत	भार	जीवन-अवधि (सेकेंड)
लैम्डा	Λ^0	२१८२	3×10^{-10}
प्रति लैम्डा	$\bar{\Lambda}^0$		
ऋण सिग्मा	Σ^-	२३४३	1.5×10^{-10}
धन सिग्मा	Σ^+	२३२७	0.7×10^{-10}
सिग्मा शून्य	Σ^0	लगभग २३२५	
ऋण जाई	Ξ^-	२५८५	लगभग 2×10^{-10}
शून्य जाई	Ξ^0		लगभग 10^{-10}

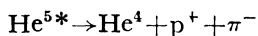
हाइपर-खण्ड

यह मूलभूत कण नहीं है, परन्तु नवीनतम विचित्र कण है जिसकी सर्व-प्रथम पहचान अतरिक्ष किरणों के प्रकाश-पायस पर बने पथ द्वारा हुई थी। १९५३ में पोलैण्ड के दो वैज्ञानिकों डैनिस एव न्यूविस्की^१ ने अपने अनुसन्धानों द्वारा इन कणों की उपस्थिति का अनुमान किया था।

ऋण मेसान या हाइपेरान द्वारा फोटोग्राफी पायस पर क्रिया करने से प्लेट पर तारिकाओं के आकार के चिन्ह बन जाते हैं। इन नाभिक तारिकाओं के अध्ययन से यह ज्ञात हुआ कि इस क्रिया द्वारा हाइपर-खण्डों का निर्माण होता है।

यह हाइपर-खण्ड क्या है ? ऐसा अनुमान है कि किसी तत्त्व के सामान्य नाभिक में हाइपेरान (अधिकतर लैम्डा कण) का कण-जुड़ने से हाइपर खण्ड बनते हैं। इस रूप के अनेक तत्त्व-भार वाले हाइपर-खण्ड बने हैं जिनमें हाइड्रोजन-२, ३, ४, हीलियम-४, ५, लीथियम-६, ८, बेरिलियम-७, ८, ९, और कार्बन-११ मुख्य हैं। इन हाइपर-खण्डों के वास्तविक भार की निकटतम पूर्ण संख्या ऊपर अंकित है। हाइपर-खण्ड में जुड़े हाइपेरान की बन्धन ऊर्जा न्यूट्रान अथवा प्रोटान की बन्धन ऊर्जा से कम होती है, जिस कारण हाइपर-खण्ड अस्थिर कण होते हैं। हाइपर खण्डों का दो प्रकार से विच्छेदन हो सकता है। पहले के अनुसार एक पाई-मेसान मुक्त होता है जिसके साथ एक कण भी स्वतन्त्र हो सकता है —

हीलियम हाइपर खण्ड^{५*} → हीलियम^४ + प्रोटान⁺ + ऋण पाई-मेसान



यह मार्ग दो मात्रक नाभिक आवेश के कणों तक सीमित रहता है। उससे अधिक आवेशयुक्त कणों द्वारा लैम्डा और कोई अन्य स्थिर कण (जैसे प्रोटान, न्यूट्रान) मुक्त होंगे।

उक्त विचित्र कणों की खोज ने वैज्ञानिकों के समक्ष अनेक समस्याएँ उपस्थित की हैं। अभी इन कणों का समुचित ज्ञान नहीं प्राप्त हो सका है और इसमें भी सन्देह है कि ये सारे कण वास्तव में मूलभूत कण हैं। इन समस्याओं का समाधान भविष्य के गर्भ में है।

अध्याय ४

परमाणु-संरचना

नाभिक

ब्रिटेन में उन्नीसवीं शताब्दी के प्रसिद्ध विद्वान् डाल्टन ने परमाणु-सिद्धान्त की स्थापना की। उसने कल्पना की थी कि परमाणु अविच्छेद्य हैं। उसके तथा उसके पश्चात् अनेक वैज्ञानिकों ने समझा कि परमाणु द्रव्य के मूल कण हैं, जिनका विच्छेदन नहीं हो सकता। ये विचार उन्नीसवीं शताब्दी में पूर्णतया मान्य थे। शताब्दी के अन्त में कुछ प्रयोग हुए, जिनके कारण यह धारणा एकाएक नष्ट हो गयी।

विज्ञान की परम्परा रही है कि समय-समय पर बड़े-बड़े आविष्कार तथा खोजें हुई हैं। पिछली शताब्दी के अन्त में तथा इस शताब्दी के प्रारम्भ में किये गये प्रयोगों से सिद्ध हो गया है कि डाल्टन के परमाणु-सिद्धान्त में कुछ त्रुटियाँ हैं। सन् १८९६ में हेनरी बेक्वरेल ने फ्रांस में रेडियधर्मिता की खोज की। पहली बार यह ज्ञात हुआ कि परमाणु भी खण्डित हो सकता है। प्रकृति में कुछ परमाणुओं का सर्वदा विच्छेदन होता रहा है। विच्छेदन के साथ-साथ कुछ किरणें भी निकलती हैं। इस निरीक्षण से अटूट परमाणु-सिद्धान्त छिन्न-भिन्न हो गया। इस सिद्धान्त को छिन्न करने में और भी निरीक्षण सहायक हुए हैं। अन्त में परमाणु-संरचना का नया सिद्धान्त निर्मित हुआ जिसमें नाभिक तथा इलेक्ट्रॉन सम्मिलित हुए। परमाणु-संरचना के नये सिद्धान्त में एक नाभिक की कल्पना की गयी जिसमें लगभग सारी संमात्रा स्थित थी। इस नाभिक पर घन विद्युत का आवेश था और

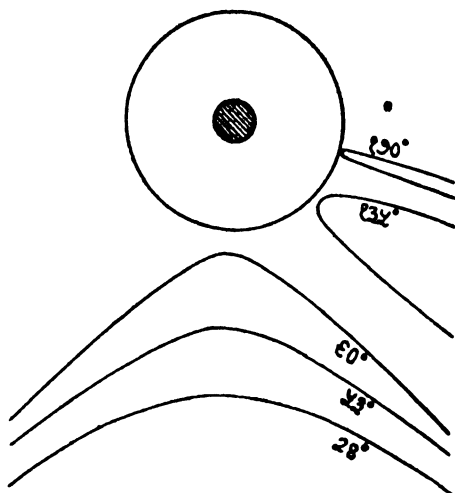
ऋणाविष्ट इलेक्ट्रान चारों ओर परिक्रमा करते थे। इलेक्ट्रानों में बहुत न्यून संमात्रा स्थित थी।

नाभिकीय परमाणु का सिद्धान्त एकाएक नहीं बना, वरन् उसका विकास धीरे-धीरे हुआ। रदरफोर्ड के एक छोटे प्रयोग से इसका समारम्भ हुआ। रदरफोर्ड अल्फा-कण के गुणों का अध्ययन कर रहे थे। उन्होंने एक अल्फा किरण-दण्ड को पतले छिद्र में से प्रवाहित किया। तत्पश्चात् उस दण्ड का बिम्ब फोटोग्राफी के प्लेट पर गिरने दिया गया जिससे उसका चित्र खिच गया। इस प्रयोग में देखा गया कि विभिन्न अवस्थाओं में भिन्न प्रकार के चित्र खिचे। जब अल्फा-किरण के स्रोत और प्लेट के बीच वायु उपस्थित थी उस समय एक प्रकार का चित्र आया और वायु की अनुपस्थिति में दूसरी प्रकार का चित्र खिचा। सारी वायु निकाल देने पर छिद्र का चित्र साफ़ उतरा। जब वायु उपस्थित थी उस समय का चित्र धुंधला था तथा अल्फा-किरण के कण छिद्र की सीमा के बाहर भी पहुँच गये।

इस अन्तर का कारण रदरफोर्ड को सरलता से मालूम हो गया। अल्फा कण-दण्ड वायु की अनुपस्थिति में सीधा जाकर प्लेट पर पड़ा। उसने छिद्र से प्लेट तक सीधी रेखाएँ बनायीं। इस कारण चित्र साफ़ आया। इसके विपरीत वायु की उपस्थिति में, अल्फा-कण वायु के कणों से टकराकर अपने सीधे रास्ते से विचलित हो गये और चित्र धुंधला हो गया। रदरफोर्ड ने इस प्रभाव का नाम प्रकीर्णता रखा। इस प्रयोग में विभिन्न अल्फा-कण भिन्न-भिन्न प्रकार से टकराते हैं। परमाणुओं के साथ कुछ कणों का आयतन कोण कम और किन्हीं का अधिक होता है। इसीलिए कणों का विक्षेप अलग-अलग होता है। कम विक्षेपण वाले कण अपने मार्ग से कम हटते हैं। इनकी संख्या अधिक होती है। थोड़े-से कण 90° अंश तक विक्षेपित हो जाते हैं और बहुत न्यून संख्या के कण 180° अंश का कोण बनाते हैं। ऐसे कण, टकराकर जिस मार्ग से वे आये हैं उसी मार्ग से, वापस लौट जाते हैं।

इन निरीक्षणों पर ध्यान देना आवश्यक है। परमाणु से, निकलने वाले

अल्फा-कणों पर अधिक मात्रा में ऊर्जा रहती है। इन कणों का वेग लगभग दस सहस्र (१०,०००) किलोमीटर प्रति सेकेण्ड होता है। ऐसे कणों



चित्र संख्या ३—कणविक्षेप के विविध रूप

को अपने मार्ग से हटाना सरल कार्य नहीं है। इसके लिए प्रचुर ऊर्जा की आवश्यकता होती है। विक्षेप कोण जितना बड़ेगा उतना ही ऊर्जा की अधिक आवश्यकता होगी। किसी कण को अपने मार्ग से लौटाने के लिए तो वास्तव में भीमकाय शक्ति चाहिए। आखिर इतनी ऊर्जा या शक्ति कहाँ से आती है?

अल्फा कणों की प्रकीर्णता की खोज रदरफोर्ड ने सन् १९०६ में की। तत्पश्चात् अन्य बहुतेरे वैज्ञानिकों ने इस प्रकार के निरीक्षण किये। इस क्रिया से बहुत से प्रश्नों के उत्तर मिलने की आशा थी, इस कारण लोगों का ध्यान इस ओर गया।

इस दिशा में गाइगर तथा मार्ट्सन^१ ने विशेष कार्य किया, जिसमें अल्फा-कणों की प्रकीर्णता के अनुसन्धान वायु, धातुओं तथा अन्य वस्तुओं की चादरो के माध्यमों से किये गये। उन्होंने फोटोग्राफी प्लेट हटाकर उससे अधिक सवेदी^२ रीति का उपयोग किया। प्लेट के स्थान पर एक प्रतिदीप्ति पट का प्रयोग किया गया जिसमें अल्फा-कणों की उपस्थिति का पता चमक^३ द्वारा लगाया था।

उनके निरीक्षणों से मालूम हुआ कि अधिकतर अल्फा कण अपने मार्ग से थोड़ी मात्रा में विचलित होते हैं। कुछ कण अपने मार्ग से एक समकोण तक जाते हैं और कुछ अपने मार्ग से वापस लौट आते हैं। ये अनुसन्धान रदरफोर्ड के पुराने कार्यों की पुष्टि करते हैं। गाइगर व मार्ट्सन ने यह भी देखा कि 90° कोण से अधिक प्रकीर्णित होने वाले कणों की संख्या विभिन्न पदार्थों के साथ एक-सी नहीं रहती। एल्यूमिनियम, मैगनीशियम, बेरीलियम आदि कम परमाणु-भार वाली धातुएँ कम संख्या में अल्फा-कणों का प्रकीर्णन करती हैं, यदि एक तत्त्व की दो चादरे ली जायें जिनमें एक पतली तथा दूसरी मोटी हो, तो उस स्थिति में मोटी चादर के द्वारा प्रकीर्णन अधिक होगा।

अब हम यह समझने का प्रयत्न करें कि इस प्रकार का प्रकीर्णन क्यों होता है? हम जानते हैं कि अल्फा-कणों पर विद्युत-आवेश रहता है। विद्युत-आवेश पर विद्युत् क्षेत्र अपना प्रभाव डालता है। अल्फा-किरणों के प्रकीर्णन से सिद्ध होता है कि परमाणु में अत्यन्त शक्तिशाली विद्युत्-क्षेत्र केन्द्रित है। कूलों सिद्धान्त^४ के अनुसार दो आवेशयुक्त कणों के मध्य विद्युत् बल दो बातों पर निर्भर करता है। एक है दोनों कणों पर आवेश की मात्रा और दूसरी दोनों कणों के बीच की दूरी। आवेश की

1. Geiger and Mardsen

2. Sensitive

3. Scintillation

4. Coulomb's Law

मात्रा जितनी अधिक होगी उतना ही बल भी अधिक होगा, परन्तु दूरी के अधिक होने पर बल घट जायगा। अब हम अल्फा-कणों पर दृष्टि डालें।

पिछले प्रयोगों में कुछ कण ऐसे भी थे जो जिस मार्ग से निकले उसी से लौट भी आये। ऐसा प्रतीत होता था मानों दो गोलों की सर के बल मुठभेड़ हुई हो और एक गोला वापस चला आया हो। जो गोला वापस चला आया उसे स्वभावतः हलका होना चाहिए। साथ ही वह दूसरे गोले के, जिसमें धनावेश केन्द्रित है, बिल्कुल निकट अवश्य ही पहुँचा होगा, क्योंकि उसी स्थिति में वह वेग से वापस लौट सकेगा। यह दूरी जो प्रायः 10^{-12} सेमी० (सैण्टीमीटर) है, गणित द्वारा ज्ञात की गयी है। इसी प्रसंग में यह ध्यान देना आवश्यक है कि परमाणु का आकार लगभग 10^{-8} सेमी० माना जाता है। इस प्रकार परमाणु-संरचना में तीन बातें सामने आयी। एक यह कि धन विद्युत् आवेश का एक स्थान पर केन्द्रित होना आवश्यक है। दूसरी, यह कि इसी स्थान पर सम्पूर्ण संमात्रा भी केन्द्रित हो। तीसरी आवश्यक बात यह है कि इसको बहुत सूक्ष्म होना चाहिए। इसका व्यास 10^{-12} सेमी० के लगभग होगा। इस अवस्था में अल्फा-कण की टक्कर इस केन्द्र से उसी प्रकार होगी जैसे एक फुटबाल बड़े पत्थर से टकरा कर वापस चला आता है।

रदरफोर्ड, गाइगर एवं मार्टसन के अनुसन्धानों से बहुत-सी परमाणु संरचना की पुरानी कल्पनाएँ झूठी सिद्ध हुईं। उससे कुछ समय पूर्व टामसन ने परमाणु-संरचना सम्बन्धी अपना सिद्धान्त रखा था। उसके अनुसार परमाणु गोलाकार होता है जिसके सारे आयतन में द्रव्य भरा रहता है तथा इस पर चारों ओर धन विद्युत् आवेशित रहता है। यह आवेश किसी स्थान-विशेष पर केन्द्रित न होकर सारे द्रव्य पर समान रूप से वितरित रहता है। इस आवेश को न्यून करने के लिए इलेक्ट्रान सारे द्रव्य में तैरते रहते हैं। इलेक्ट्रान की संख्या इतनी होती है कि उनका पूरा ऋणावेश द्रव्य के धनावेश के बराबर होता है। हलके परमाणु पर कम इलेक्ट्रान तथा भारी पर अधिक इलेक्ट्रान रहते हैं।

टामसन के परमाणुवाद से पदार्थों के कुछ गुण भली-भाँति समझ में आने लगे थे जिससे अन्य अनेक भौतिक शास्त्रियों ने उसे स्वीकार भी किया। परन्तु धीरे-धीरे इस सिद्धान्त पर शंकाएँ होने लगी क्योंकि रेडिय-धर्मिता की विवेचना इस सिद्धान्त पर नहीं हो सकती थी। रदरफोर्ड के प्रकीर्णता के प्रयोगों के सामने यह सिद्धान्त बिलकुल न ठहर सका।

विद्युत् का प्रारम्भिक सिद्धान्त धन आवेश का ऋण आवेश के साथ आकर्षित होना तथा समान आवेश के साथ प्रतिकर्षण होना है। परमाणु-संरचना-सिद्धान्त के लिए यह आवश्यक था कि वह अल्फा-कण के प्रकीर्णन के प्रयोगों को समझा सके। इन सब को ध्यान में रखकर रदरफोर्ड ने अपना परमाणु संरचना-सिद्धान्त स्थापित किया। उसके अनुसार हम परमाणु को दो भागों में बाँट सकते हैं। एक भाग वह है जिसमें अधिकतम संमात्रा केन्द्रित है। यह केन्द्र अल्फा-कणों पर प्रतिकर्षण बल लगाता है जिससे वे अपने मार्ग से विचलित हो जाते हैं। अल्फा-किरणों पर धनावेश होता है। इस कारण इस केन्द्र पर भी धनावेश होना चाहिए। हमें यह भी ज्ञात है कि पहले के कुछ प्रयोगों में कुछ अल्फा-कण इस केन्द्र के बिलकुल पास पहुँच कर लौट आये। उस समय इस केन्द्र तथा अल्फा-कण की दूरी 10^{-12} मी० थी। फलतः इस धनावेश परमाणु केन्द्र का व्यास 10^{-12} से० मी० के लगभग होना चाहिए। ऐसे परमाणु केन्द्र को रदरफोर्ड ने 'न्यूक्लियस' या नाभिक कहा। नाभिक का आयतन परमाणु के समूचे आयतन से बहुत कम है। नाभिक पर परमाणु का सारा धनावेश केन्द्रित रहता है।

परमाणु का दूसरा भाग वह है जो नाभिक के चारों ओर के अवकाश में विद्यमान है। इस अवकाश में इलेक्ट्रान रहते हैं जिन पर ऋणवेश रहता है। हर तत्त्व के परमाणु में रहने वाले इलेक्ट्रान नियत है। इसी प्रकार हर तत्त्व के नाभिकीय धनावेश भी नियत है। धनावेश की मात्रा तथा इलेक्ट्रानों की संख्या बराबर होती है। इलेक्ट्रान नाभिक की परिक्रमा उसी प्रकार करते हैं जैसे तमाम ग्रह सूर्य की परिक्रमा करते हैं।

रदरफोर्ड का परमाणु-प्रतिरूप एक क्रान्तिकारी सिद्धान्त था। बहुत-से वैज्ञानिक बड़ी तत्परता से इस ओर अनुसन्धान करने लगे और इस सिद्धान्त की जाँच-पड़ताल करने लगे। नाभिक पर वर्तमान धनावेश की मात्रा ज्ञात करने के लिए प्रयोग किये जाने लगे। गाइगर एवं मार्टिनसन ने अल्फा-कणों के प्रकीर्णन द्वारा कुछ तत्त्वों के नाभिकों के आवेश और उनकी मात्रा मालूम की।

नाभिकों के आवेश-मापन का कार्य मोजले^१ नामक अंग्रेज भौतिक शास्त्री ने बड़े सुचारु रूप से किया। उसने इस कार्य के लिए एक्स-रे का उपयोग किया। अनेक तत्त्वों द्वारा मुक्त एक्स-रे का उसने विश्लेषण किया। ये विश्लेषण एक्स-रे वर्णक्रम-मापी द्वारा किये गये।

जब कैथोड-किरणें किसी धातु या अन्य तत्त्व पर आघात करती हैं तो उनसे रंटगन किरणें अथवा एक्स-रे निकलती हैं। मोजले के अनुसन्धानों से मालूम हुआ कि प्रत्येक तत्त्व द्वारा निकले एक्स-रे का तरंग-दैर्घ्य भिन्न-भिन्न होता है। उदाहरणस्वरूप हम देखते हैं कि कैथोड-किरणें लौह पर आघात कर जो एक्स-रे उत्पन्न करेंगी उनका तरंग-दैर्घ्य एल्यूमिनियम या ताँबे से निकली किरणों से भिन्न होगा।

आइए अब हम एक ही तत्त्व से निकली सारी किरणों को वर्णक्रम-मापी द्वारा देखें। देखने पर हमें ज्ञात होगा कि ये किरणें एक ही तरंग-दैर्घ्य की नहीं होती। इनको तीन या चार मुख्य भागों में बाँटा जा सकता है। सबसे छोटी तरंग-दैर्घ्य वाली किरणों को के-विकिरण^२ कहते हैं। उससे बड़ी किरणों को क्रमशः एल-विकिरण^३ एम-विकिरण^४ तथा एन-विकिरण^५ कहते हैं।

1. Mosley
3. L-radiations
5. N-radiations

2. K-radiations
4. M-radiations

मोज़ले ने तत्त्वों के विकिरण का विस्तार से अध्ययन किया। इस विकिरण के तरंग-दैर्घ्य द्वारा परमाणु-संख्या सरलता से निकाली जा सकती है, जिसका समीकरण निम्नलिखित है—

$$\text{आवृत्ति}^4 = \text{स्थिरांक}_1 \times (\text{परमाणु संख्या} - 1)^2$$

$$\text{Frequency}^5 = \text{Constant}_1 (\text{atomic no.} - 1)^2$$

$$\text{अथवा } \frac{1}{\text{तरंग दैर्घ्य}^2} = \text{स्थिरांक}_2 \times (\text{परमाणु संख्या} - 1)^2$$

$$\frac{1}{\text{Wave length}^3} = \text{Constant}_2 (\text{atomic no.} - 1)^2$$

इस प्रकार मोज़ले ने विशद अनुसन्धान किया। उसने देखा कि इस प्रकार निकाली गयी परमाणु संख्या निश्चित क्रम से तत्त्वों में बढ़ती जाती है। यह परमाणु संख्या आवर्त-सारणी में तत्त्व की स्थिति की सूचिका है। इस प्रकार किसी भी तत्त्व की परमाणु संख्या एक्स-रे प्रयोग द्वारा निकाली जा सकती है और आवर्त-सारणी में उसके स्थान की पुष्टि की सकती है।

निएल बोर ने गणित द्वारा सिद्ध किया कि मोज़ले द्वारा परिगणित परमाणु संख्या ही उसके परमाणु के नाभिक पर धनावेश की मात्रा है। परमाणु संख्या तथा नाभिकीय आवेश परस्पर सम्बद्ध है। दोनों संख्याएँ तत्त्वों में निश्चित क्रमानुसार बढ़ती हैं। फलतः मोज़ले के प्रयोग से तत्त्व के नाभिक आवेश ज्ञात किये जा सकते हैं।

इस प्रकार मोज़ले के प्रयोग से रदरफोर्ड की परमाणु-संरचना की पुष्टि हुई। अब यह भली प्रकार ज्ञात है कि परमाणु में नाभिक तथा इलेक्ट्रॉन वर्तमान रहते हैं। परमाणु संख्या कोई कल्पनात्मक संख्या नहीं, वरन् तत्त्व की एक विशेष गुणात्मक संख्या है। विभिन्न तत्त्वों के परमाणुओं के

नाभिकों पर भिन्न-भिन्न आवेश रहता है। 'मेंडलीव' की आवर्त-सारणी में तत्त्व अपने नाभिक आवेश के अनुसार व्यवस्थित है। हाइड्रोजन के नाभिक पर आवेश की मात्रा एक (१) है। इस कारण उसको आवर्त सारणी में सर्वप्रथम स्थान दिया गया है। हीलियम के नाभिक पर आवेश की मात्रा दो (२) है अतः उसे आवर्त-सारणी में दूसरा स्थान प्राप्त है। इसी प्रकार आक्सीजन के नाभिक पर आवेश की मात्रा आठ (८) होने से उसको आठवाँ स्थान प्राप्त है। यूरेनियम के नाभिक पर बानबे (९२) मात्रक का आवेश है, फलतः आवर्त-सारणी में उसे बाइबेवाँ स्थान मिला है। इस प्रकार पड़ोसी तत्त्वों के आवेशों में एक का अन्तर रहता है।

इसी सिद्धान्त द्वारा परमाणु में इलेक्ट्रानों की संख्या ज्ञात की जा सकती है, क्योंकि नाभिक के आवेश की मात्रा इलेक्ट्रान की संख्या के बराबर होती है। उदाहरणस्वरूप, हम जानते हैं कि आक्सीजन के नाभिक का आवेश आठ (८) है। इसलिए उसके परमाणु में आठ (८) इलेक्ट्रान नाभिक की परिक्रमा करते हैं। क्लोरीन के नाभिक के चारों ओर सत्रह (१७) इलेक्ट्रान चक्कर लगाते हैं। लौह के परमाणु में छब्बीस (२६) इलेक्ट्रान परिक्रमा करते हैं तथा यूरेनियम के एक परमाणु में बानबे (९२) इलेक्ट्रान हैं।

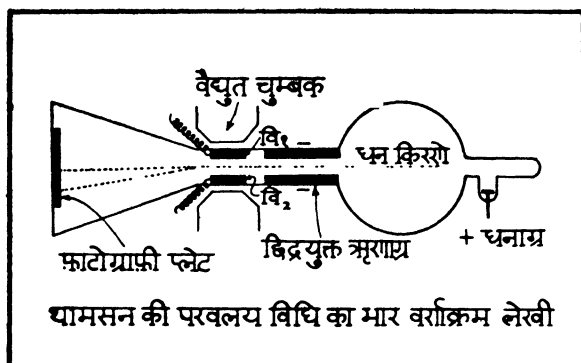
मोजले तथा अन्य वैज्ञानिकों के अनुसन्धानों से यह सिद्ध हो चुका था कि परमाणु में नाभिक होता है जिस पर धन विद्युत् का आवेश रहता है और उसकी समानता लगभग सारे परमाणु के भार के बराबर होती है। इस समय आवश्यकता इस बात की थी कि परमाणुओं के भार अत्यन्त सूक्ष्मता से ज्ञात किये जायें। परमाणु इतना सूक्ष्म होता है कि एक परमाणु का भार नहीं लिया जा सकता। परन्तु इसके भार निकालने की रासायनिक विधियाँ ज्ञात थी। दीर्घकाल से रासायनज्ञों ने परमाणु भार या समानता

का मात्रक हाइड्रोजन को माना था, अर्थात् हाइड्रोजन की संमात्रा एक (१) मानी गयी थी। हाइड्रोजन सबसे हलका तत्त्व है। इस कारण अन्य तत्त्वों का भार इससे अधिक होता है, यथा हीलियम का परमाणु भार चार (४) है। इसका अर्थ यह है कि हीलियम का परमाणु हाइड्रोजन के परमाणु से चार गुना है। कुछ समय पश्चात् रसायनज्ञों ने कुछ कारण से इस प्रतिमान में परिवर्तन किया। उन्होंने हाइड्रोजन के परमाणु भार को एक (१) न मान कर आक्सीजन के भार को सोलह पूर्ण मात्रक (१६.००) माना। इसके कारण हाइड्रोजन का भार १.००० से बदल कर १.००८ हुआ। आजकल रसायन में यही प्रतिमान स्वीकृत है। इस माप के अनुसार क्लोरीन का भार ३५.४६, लौह का भार ५५.८५, सीस का भार २०७.२ है। परमाणु भार की सारणी पुस्तक के अन्त में दी गयी है। परमाणु-भार ग्राम में व्यक्त न करके इसी प्रतिमान से अंकित किया जाता है।

२०वीं शताब्दी के प्रारम्भ के पूर्व परमाणु-भार निकालने की रासायनिक विधियाँ ज्ञात थी। आवश्यकता इस बात की थी कि कोई सूक्ष्म भौतिक विधि निकाली जाय। डाल्टन ने अपने परमाणुवाद में घोषित किया था कि एक तत्त्व के सारे परमाणुओं का भार समान होता है, यद्यपि इसकी प्रायोगिक पुष्टि नहीं हुई थी, परन्तु रेडियधर्मी तत्त्वों के प्रयोगों में एक ही तत्त्व के भिन्न-भिन्न भार वाले परमाणु मिल चुके थे जिन्हें समस्थानिक कहा गया था। इन रेडियसमस्थानिकों को किसी रासायनिक क्रिया द्वारा पृथक् नहीं किया जा सकता था। इस कारण रासायनिक क्रिया द्वारा यह जानना असम्भव था कि अरेडियधर्मी तत्त्वों में समस्थानिक है या नहीं। अतः इसके लिए कोई भौतिक प्रयोग ही सफल हो सकता था, जिसके द्वारा प्रथम परमाणुओं का भार सूक्ष्मता से ज्ञात हो सके।

इस आवश्यक कार्य को टामसन ने अपने प्रयोगों द्वारा प्रारम्भ किया। उसने विद्युच्चुम्बकीय विधि का उपयोग किया। इस विधि में किसी भी कण का $\frac{e}{m}$ अर्थात् आवेश और समात्रा का अनुपात निकाला जा सकता है। अतः यदि हमें उस आवेशयुक्त कण अथवा आयन के आवेश की मात्रा

ज्ञात हो तो उसकी संमात्रा निकाली जा सकती है। टामसन की इस विधि का नाम परवलय विधि है।



चित्र संख्या ४—टामसन की परवलय विधि का भार-वर्णा-क्रम लेखी

टामसन ने सर्वप्रथम नियन गैस पर परवलय विधि का प्रयोग किया। विसर्ग नली में नियन गैस भर कर उससे धन किरणें प्राप्त की गयीं। ये धन किरणें नियन के परमाणुओं से प्राप्त हुई थी। विसर्ग नली में विद्युत्-वेग के कारण नियन के परमाणु से एक इलेक्ट्रॉन हट गया और परमाणु पर एक धनावेश हो गया। इन धनावेश परमाणुओं की किरणें बनीं। जिन पर वैद्युत तथा चुम्बकीय क्षेत्र का एक साथ प्रभाव डाला गया। इस प्रभाव द्वारा विभिन्न संमात्रा वाले कण भिन्न-भिन्न मार्गों में चले गये। एक संमात्रा वाले कण एक परवलय के मार्ग में जाते थे। दूसरी संमात्रा वाले कण दूसरा परवलय बनाते थे। इस प्रकार जितनी प्रकार की संमात्राओं वाले कण उपस्थित होंगे उतने ही परवलय बनेंगे। यदि इनके मार्ग में एक फोटोग्राफी का प्लेट रख दिया जाय तो सारे परवलय उसमें चित्रित हो जायेंगे। विसर्ग नली में नियन के प्रयोग करने से २ परवलय दिखाई दिये। एक २० तथा दूसरा २२ e/m के कारण थे। टामसन ने यह निष्कर्ष निकाला कि

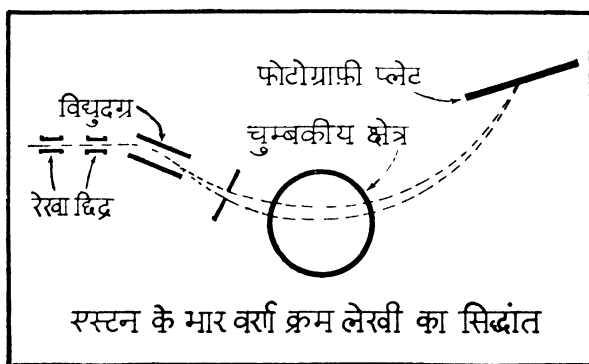
ये दोनों परवलय नियन के समस्थानिकों के कारण हैं। यद्यपि नियन की परमाणु संमात्रा २०.१८ है, परन्तु इसमें दो समस्थानिक संमिश्रित रहते हैं—एक की संमात्रा २० तथा दूसरे की २२ है। तत्पश्चात् अत्यन्त प्रमाणित प्रयोगों से मालूम हुआ कि एक २१ संमात्रा वाला समस्थानिक भी इनमें समिश्रित रहता है जो अत्यन्त सूक्ष्म मात्रा में उपस्थित पाया जाता है। रासायनिक विधियों से प्राप्त इस समिश्रित नियन का परमाणु भार २०.१८ आता है। जो एक माध्यम संख्या है। इससे टामसन इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि इस संमिश्रण में ९१ प्रतिशत Ne^{20} समस्थानिक तथा ९ प्रतिशत Ne^{22} समस्थानिक वर्तमान है। कुछ समय के पश्चात् प्रमाणित प्रयोगों द्वारा नियन की निम्नलिखित संरचना प्राप्त हुई—

नियन ^{२०}	(Ne^{20})	८०.५१%
नियन ^{२१}	(Ne^{21})	०.२८%
नियन ^{२२}	(Ne^{22})	१.२१%

नोट—सकेतों के ऊपर लिखित संख्याएँ समस्थानिक की परमाणु संमात्रा बताती हैं।

टामसन अपने प्रयोगों से इस नतीजे पर पहुँचे कि स्थिर तत्त्वों में भी समस्थानिक होते हैं तथा इन समस्थानिकों का भार प्रायः पूर्ण संख्या ही होती है। इस कार्य के पश्चात् एस्टन ने कुछ ऐसे भौतिक प्रयोग किये जिनके द्वारा समस्थानिकों को पृथक् किया जा सका। उसने विसरण विधि का प्रयोग किया। भारी तथा हल्के समस्थानिकों के विसरण में अन्तर होता है, इस कारण वे समान वेग से विसरित नहीं हो पाते। इस अन्तर का लाभ उठाकर एस्टन ने हल्के तथा भारी दोनों प्रकार के समस्थानिकों को पृथक् किया। इस प्रकार न केवल समस्थानिकों की उपस्थिति की पुष्टि हुई, वरन् उन्हें पृथक् भी कर दिया गया।

एस्टन ने एक दूसरी विधि द्वारा समस्थानिकों का विश्लेषण किया। इसका नाम एस्टन भार-वर्ण-क्रम-लेखी' है। यह टामसन की परवलय-विधि से अधिक सरल तथा उपयोगी था। इसका ठीक-ठीक अनुमान निम्न चित्र देखने से हो सकेगा।



चित्र संख्या ५—एस्टन के भार-वर्ण-क्रम लेखी का सिद्धान्त

इस उपकरण में किसी तत्व के धन आयनों के विकिरण पर विद्युत् तथा चुम्बकीय क्षेत्र का प्रभाव डाला जाता है। पहले विद्युत् क्षेत्र का प्रभाव पड़ता है, फिर कुछ अन्तर पर चुम्बकीय क्षेत्र का। इन दोनों प्रभावों को इस अनुपात में स्थिर किया जाता है कि एक विशिष्ट समस्थानिक के समस्त कण एक स्थान पर पहुँच जायें। आयनों में जितने समस्थानिकों का समिश्रण होगा उतने ही पृथक्-पृथक् बिन्दुओं पर समस्थानिक संकेन्द्रित होंगे। इस संकेन्द्र पर एक फोटोग्राफी-प्लेट रखने पर समस्त समस्थानिकों के

1. Aston's mass-spectroscope

चित्र स्वयं आ जायेंगे। विभिन्न समस्थानिकों द्वारा अंकित चिन्हों को देखकर उनकी भार संख्या की परिगणना की जा सकती है।

भार-वर्णक्रम-लेखी द्वारा एस्टन ने पता लगाया कि अधिकतर तत्त्व दो या दो से अधिक समस्थानिकों के संमिश्रण है। एस्टन के पश्चात् डेम्पस्टर^१ आदि वैज्ञानिकों ने और भी उपयोगी भार-वर्णक्रम-लेखी बनाये। इन सबके प्रयोगों द्वारा हमें प्रकृति में पाये जाने वाले तत्त्वों के लगभग ३०० से अधिक समस्थानिक ज्ञात हो चुके हैं। प्रकृति में निम्न तत्त्वों के केवल एक-एक समस्थानिक प्राप्त है जिनके सकेत तथा भार-संख्याएँ साथ में दी जा रही हैं। ये भार-संख्याएँ सकेत के ऊपर दाहिनी ओर चिन्हित हैं। यह ध्यान देने योग्य है कि इन सबके परमाणु-भार प्रायः पूर्ण संख्याएँ हैं।

बेरीलियम-९	Be ⁹
फ्लोरीन-१९	F ¹⁹
सोडियम-२३	Na ²³
एल्यूमिनियम-२७	Al ²⁷
फास्फोरस-३१	P ³¹
स्कोडियम-४५	Sc ⁴⁵
मैंगनीज़-५५	Mn ⁵⁵
कोबाल्ट-५९	Co ⁵⁹
आर्सनिक-७५	As ⁷⁵
इट्रियम-८९	Y ⁸⁹
नियोबियम-९३	Nb ⁹³
रोडियम-१०३	Rh ¹⁰³
आयोडीन-१२७	I ¹²⁷
सोजियम-१३३	Cs ¹³³

लेंथेनम-१३९	La ¹³⁹
प्रेज़ोडिमियम-१४१	Pr ¹⁴¹
टरबियम-१५९	Tb ¹⁵⁹
होलमियम-१६५	Ho ¹⁶⁵
थूलियम-१६९	Tm ¹⁶⁹
टेटलम-१८१	Ta ¹⁸¹
स्वर्ण-१९७	Au ¹⁹⁷
बिसमथ-२०९	Bi ²⁰⁹

आइए अब हम नाभिक-संरचना की ओर अग्रसर हो ।

उन्नीसवीं शताब्दी में लोगों को नाभिक तथा इलेक्ट्रॉन के बारे में कुछ भी ज्ञात न था । उस समय परमाणु प्रत्येक तत्त्व का सबसे छोटा कण माना जाता था । सन् १८१६ में प्राउट' ने एक सिद्धान्त रखा जिसमें कहा गया कि प्रकृति के सारे तत्त्व हाइड्रोजन के परमाणु से बने हैं । उस समय समग्र तत्त्वों के परमाणु-भार ठीक-ठीक ज्ञात न थे । आगे चल कर ही इनके परिमाणन सूक्ष्मता से किये गये, जिनसे पता चला कि अनेक तत्त्वों के परमाणु भार पूर्ण संख्याएँ नहीं हैं । क्लोरीन इसी प्रकार का एक तत्त्व है जिसका परमाणुभार लगभग ३५.५ था । इन प्रेक्षणों के फलस्वरूप लोगों ने प्राउट के सिद्धान्त की अवहेलना की और उसे शीघ्र ही भुला दिया ।

वीसवीं शताब्दी के प्रारम्भ में टामसन, एस्टन आदि के अनुसन्धानों से यह सिद्ध हो गया कि सारे समस्थानिकों की भार-संख्याएँ प्रायः पूर्ण संख्याएँ ही हैं । क्लोरीन जैसे तत्त्व, जिनका परमाणु-भार पूर्ण संख्यक नहीं है, वास्तव में दो समस्थानिकों के मिश्रण के कारण है । एक का भार ३५ तथा दूसरे का ३७ है । जहाँ परमाणु-भार पूर्ण संख्याएँ नहीं हैं, वहाँ ये सम-

स्थानिक ऐसे समानुपात में मिश्रित है कि उनका मध्यमान पूर्ण संख्यक नहीं हो पाता।

इन सौ वर्षों में परमाणु-विज्ञान इतना बढ़ चुका था कि प्राउट के सिद्धान्त की ओर वापस लौटा नहीं जा सकता था। हाँ, उसी प्रकार के और किसी सिद्धान्त के बनने की संभावना अवश्य हो गयी थी। इस दिशा में सर्वप्रथम वैज्ञानिकों ने नाभिक रचना की ओर ध्यान दिया। इनमें एक सिद्धान्त यह भी बना कि सब तत्वों के नाभिक हाइड्रोजन के नाभिक से बने होते हैं। इस नाभिक का नाम प्रोटान रखा जा चुका था। परन्तु प्रोटान पर समात्रा के साथ आवेश भी होता है। इस प्रसंग में हम हीलियम का उदाहरण ले सकते हैं। इसका परमाणु भार चार (४) है। यदि हम यह कहें कि इसका नाभिक चार (४) प्रोटान द्वारा बना है तो उसका भार तो चार (४) होगा, परन्तु उसका आवेश भी साथ-साथ चार (४) हो जायगा। हमें ज्ञात है कि हीलियम नाभिक पर दो मात्रक आवेश होता है। अतः हमारे समक्ष एक समस्या खड़ी होती है जिसे हल करने के लिए यह सुझाव रखा गया कि नाभिक में इलेक्ट्रान भी होते हैं। इन इलेक्ट्रानों का भार प्रायः नगण्य रहता है। हीलियम के नाभिक में चार (४) प्रोटान तथा दो (२) इलेक्ट्रान हैं। इस कारण उसका भार तो चार (४) रहेगा पर आवेश $4-2=2$ होगा। इसी प्रकार सोडियम के नाभिक पर तेईस (२३) प्रोटान तथा बारह (१२) इलेक्ट्रान हैं जिसके कारण उसका भार तेईस (२३) तथा आवेश $23-12$ अर्थात् ग्यारह (११) होगा। चूँकि रेडियधर्मी तत्वों से इलेक्ट्रान निकलते थे, अतः इससे इस सिद्धान्त की पुष्टि हो जाती है।

कुछ समय पश्चात् वैज्ञानिकों को इस सिद्धान्त में भी दोष दिखाई दिये। नाभिक के चुम्बकीय गुण तथा नाभिकीय भ्रमि के प्रेक्षण से यह स्पष्ट हो गया कि इलेक्ट्रान नाभिक में स्वतन्त्र अवस्था में नहीं रह सकते।

इसी समय न्यूट्रान की खोज हुई। इस आवेश रहित कण की खोज से नाभिक रचना का सारा सिद्धान्त बदल गया। वैज्ञानिक इस निष्कर्ष पर

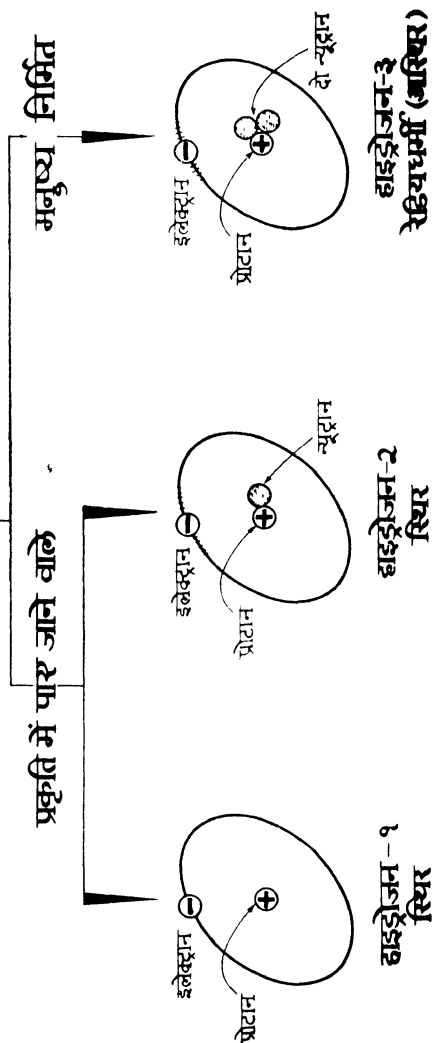
पहुँचे कि नाभिक की संरचना दो मूलभूत कणों से हुई है जिनमें एक प्रोटान तथा दूसरा न्यूट्रान है। हीलियम नाभिक में दो (२) प्रोटान तथा दो (२) न्यूट्रान है। सोडियम का नाभिक ग्यारह (११) प्रोटान तथा बारह (१२) न्यूट्रान से बना हुआ है।

समस्थानिकों में प्रोटान की संख्या समान रहती है, परन्तु न्यूट्रान की संख्या विभिन्न होती है। उदाहरणार्थ क्लोरीन के दो समस्थानिकों की रचना इसी प्रकार से हुई है। क्लोरीन-३५ में सत्रह (१७) प्रोटान तथा अठारह (१८) न्यूट्रान है और क्लोरीन-३७ में सत्रह (१७) प्रोटान तथा बीस (२०) न्यूट्रान है। इन्हे प्रदर्शित करने के लिए तत्त्व के सकेत के पूर्व नीचे की ओर प्रोटान संख्या तथा सकेत के ऊपर दाहिनी ओर भार-संख्या दी जाती है। कुछ परमाणुओं के समस्थानिकों की नाभिक रचना निम्न-लिखित है—

समस्थानिक	परमाणुभार, परमाणुसंख्या; प्रोटान; न्यूट्रान
1H^1 (हाइड्रोजन)	१ १ १ ०
1H^2 या 1D^2 (ड्यूटीरियम)	२ १ १ १
1H^3 या 1T^3 (ट्राइटियम)	३ १ १ २
6C^{12} (कार्बन)	१२ ६ ६ ६
6C^{13} (कार्बन)	१३ ६ ६ ७
8O^{16} (आक्सीजन)	१६ ८ ८ ८
8O^{17} (आक्सीजन)	१७ ८ ८ ९
8O^{18} (आक्सीजन)	१८ ८ ८ १०
92U^{235} (यूरेनियम)	२३५ ९२ ९२ १४३
92U^{238} (यूरेनियम)	२३८ ९२ ९२ १४६

परमाणु की रचना का यह सिद्धान्त आजकल सर्वमान्य है। परन्तु इसमें भी पाठकों को एक शका हो सकती है। हम पहले कह चुके हैं कि रेडियधर्मी तत्त्व-विच्छेदन द्वारा अल्फा-कण और बीटा-कण निकलते हैं। बीटा-कण इलेक्ट्रान का ही दूसरा नाम है। यदि नाभिक में केवल प्रोटान और न्यूट्रान

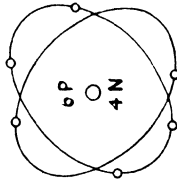
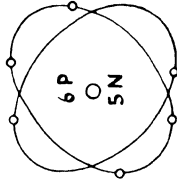
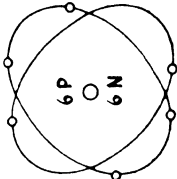
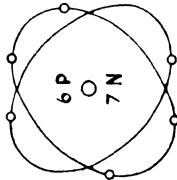
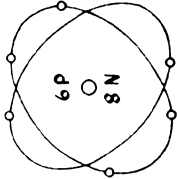
हाइड्रोजन परमाणु के अनेक रूप समस्थानिक कहलाते हैं



चित्र संख्या ६—परमाणु-कुटुम्ब

समस्थानिक क्या हैं ?

एक तत्व के विभिन्न भार वाले परमाणुओं को समस्थानिक कहते हैं

कार्बन १०	कार्बन ११	कार्बन १२	कार्बन १३	कार्बन १४
				
मनुष्य निर्मित रेडिय धर्मी	मनुष्य निर्मित रेडिय धर्मी	प्राकृतिक स्थिर	प्राकृतिक स्थिर	मनुष्य निर्मित रेडिय धर्मी

चित्र संख्या ७—समस्थानिकों का परिचय

होते हैं तो यह इलेक्ट्रान कहाँ से आते हैं। आगे हम देखेंगे कि कृत्रिम रेडिय-
धर्मिता में कभी-कभी पाजिट्रान भी निकलता है।

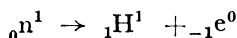
इलेक्ट्रान तथा पाजिट्रान नाभिक में स्वतन्त्र अवस्था में नहीं रहते।
अपितु नाभिक में हुए रूपान्तर के फलस्वरूप मुक्त होते हैं।

यूरेनियम - एक्स_१ → यूरेनियम - एक्स_२ + इलेक्ट्रान



वास्तव में इलेक्ट्रान निकलते समय नाभिक का एक न्यूट्रान प्रोटान
में परिणत हो जाता है। इस कारण उस नाभिक का भार तो उतना ही
रहता है, परन्तु आवेश में एक की वृद्धि हो जाती है।

न्यूट्रान → प्रोटान + इलेक्ट्रान



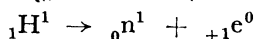
Ux_1 का परमाणु-भार दो सौ चौतीस (२३४) है तथा उसका आवेश
नब्बे (९०) मात्रक है। अतः उसमें नब्बे (९०) प्रोटान तथा एक सौ
चवालीस (१४४) न्यूट्रान हैं।

Ux_2 का परमाणु-भार दो सौ चौतीस (२३४) है और आवेश
इक्यानवे (९१) मात्रक है। अतः उसमें इक्यानवे (९१) प्रोटान तथा
एक सौ तैंतालीस (१४३) न्यूट्रान हैं।

Ux_1 के तत्त्वान्तरण से एक न्यूट्रान प्रोटान बन गया जिससे एक
इलेक्ट्रान मुक्त हुआ। फलतः Ux_1 बदलकर Ux_2 बन गया।

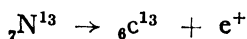
इस क्रिया के विपरीत प्रोटान के न्यूट्रान में रूपान्तरित होने से एक
पाजिट्रान मुक्त होता है।

प्रोटान → न्यूट्रान + पाजिट्रान



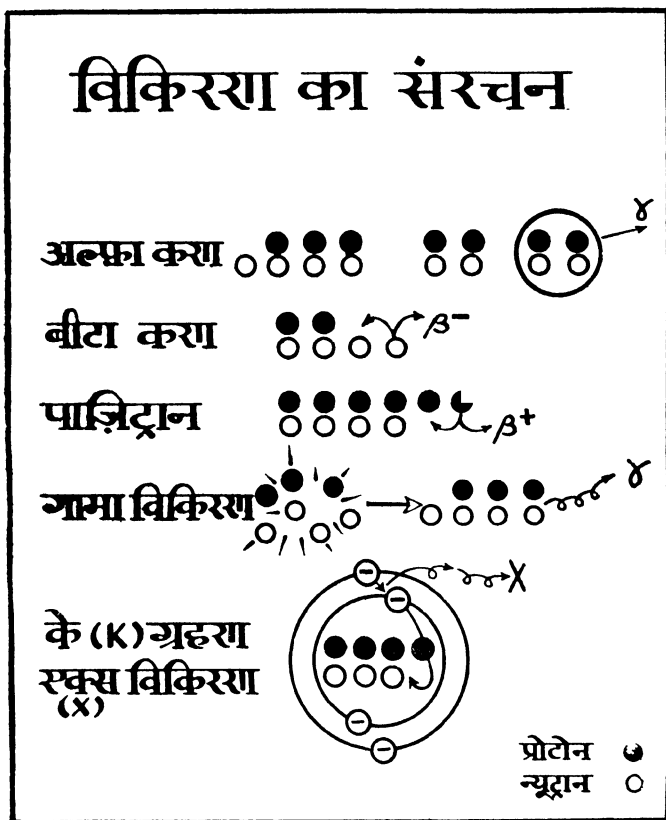
इस क्रिया के उदाहरण आगे चल कर कृत्रिम रेडियधर्मिता में दिये
गये हैं। ऐसी एक रूपान्तर क्रिया निम्नलिखित है :—

नाइट्रोजन^{१३} → कार्बन^{१३} + पाजिट्रान^०



यहाँ पर नाइट्रोजन का नाभिक कार्बन में परिणत हो जाता है, क्योंकि नाइट्रोजन के नाभिक का एक प्रोटान बदलकर न्यूट्रान बन गया।

नाभिक में प्रोटान तथा न्यूट्रान आपस में रूपान्तर कर सकते हैं। इसका अर्थ यह हुआ कि वे कण जिन्हें हम “मूलभूत कण” कहते हैं, अविनाशी नहीं हैं।



अध्याय ५

नाभिक की बन्धन-ऊर्जा

वृहत् भार-वर्णक्रम-मापी के निर्माण से परमाणुओं का भार बड़ी ही सूक्ष्मता से ज्ञात किया जा सकता है। इससे तत्त्वों के सब समस्थानिकों के भार निकालने में वैज्ञानिक सफल हुए, किन्तु समस्थानिकों के भार निकालते समय रासायनिक प्रतिमान नहीं प्रयुक्त किये गये। रासायनिक प्रतिमान में आक्सीजन के भार को सोलह मात्र (१६.००) माना जाता है, परन्तु आक्सीजन के तीन समस्थानिक १६, १७ तथा १८ ज्ञात हैं। साधारण आक्सीजन में तीनों का संमिश्रण रहता है, यद्यपि १७ व १८ समस्थानिक सूक्ष्म मात्रा में ही रहते हैं। इस कारण उसे प्रतिमान के रूप में व्यवहार करना ठीक न होता। अतः समस्थानिकों के भार निकालने के लिए भौतिक प्रतिमान लिये गये जिनमें आक्सीजन के समस्थानिक सोलह (१६) का भार १६.०० माना गया। इस प्रकार रासायनिक तथा भौतिक प्रतिमानों में सूक्ष्म अन्तर हैं। परमाणु-विखण्डन के सारे कार्यों में भौतिक प्रतिमान का ही व्यवहार किया जाता है।

भौतिक प्रतिमान के अनुसार कुछ समस्थानिकों के भार निम्नलिखित है (परमाणु भार दाहिनी ओर ऊपर तथा परमाणु-संख्या बाईं ओर नीचे दी जा रही है) —

तत्त्व	संकेत	समस्थानिक भार
हाइड्रोजन	${}_1\text{H}^1$	१.००८१४२
	${}_1\text{D}^2$	२.०१४७३५
हीलियम	${}_2\text{He}^4$	४.००३८७३
कार्बन	${}_6\text{C}^{12}$	१२.००३८०
	${}_6\text{C}^{13}$	१३.००७४७
आक्सीजन	${}_8\text{O}^{16}$	१६.००००
	${}_8\text{O}^{17}$	१७.००४५३३
	${}_8\text{O}^{18}$	१८.००४८७
नियन	${}_{10}\text{Ne}^{20}$	१९.९९८८६
न्यूट्रान	${}_0\text{n}^1$	१.००८९८२
प्रोटान	${}_1\text{p}^1$	१.००७५९३
इलेक्ट्रान	${}_{-1}\text{e}^0$	०.०००५४९

प्रत्येक समस्थानिक के नाभिक प्रोटान तथा न्यूट्रान द्वारा बने हैं। हीलियम के परमाणु में दो (२) प्रोटान, दो (२) न्यूट्रान होते हैं और दो (२) इलेक्ट्रान नाभिक के चारों ओर परिक्रमा करते हैं।

इसी प्रकार नियन के परमाणु में दस (१०) प्रोटान, दस (१०) न्यूट्रान हैं और दस (१०) इलेक्ट्रान परिक्रमा करते हैं।

आइए किसी परमाणु में उपस्थित कणों के भार को जोड़ कर देखें :
उदाहरण

${}_1\text{H}^2$ अथवा ड्यूटीरियम में एक (१) प्रोटान, एक (१) न्यूट्रान तथा एक (१) इलेक्ट्रान है।

१—१ प्रोटान का भार = १.००७५९३

२—१ न्यूट्रान का भार = १.००८९८२

३—१ इलेक्ट्रान का भार = ०.०००५४९

$$\begin{aligned}
 ४-१ \text{ ड्यूटीरियम के कणों का परिगणित योग } & १.००७५९३ + \\
 & १.००८९८२ + (१ + २ + ३) \quad ०.०००५४९ \\
 & = २.०१७१२४ \\
 ५-ड्यूटीरियम का प्रयोग द्वारा प्राप्त भार & = २.०१४७३५ \\
 \hline
 ६- \quad \quad \text{अन्तर (४-५)} & = ०.००२३८९
 \end{aligned}$$

कुछ समस्थानिकों के योग द्वारा प्राप्त भार तथा प्रयोगों द्वारा प्राप्त भार नीचे दिये जा रहे हैं।

समस्थानिक	परिगणित	प्रयोगात्मक	अन्तर
${}_1\text{H}^2$	२.०१७१२४	२.०१४७३५	०.००२३८९
${}_2\text{He}^4$	४.०३४२४८	४.००३८७३	०.०३०३७५
${}_8\text{O}^{16}$	१६.१३६९९२	१६.००००००	०.१३६९९२
${}_{92}\text{U}^{238}$	२४०.०६०४	२३८.१२४९	१.९३५५

इसी प्रकार प्रत्येक परमाणु के भार में अन्तर आता है। हम देखेंगे कि यूरेनियम के १.८३५५ मात्रा का अन्तर है जो एक हाइड्रोजन के परमाणु-भार से भी अधिक है। इस अन्तर को 'बन्धन ऊर्जा' कहते हैं। जितना बड़ा नाभिक होगा उतनी ही अधिक बन्धन ऊर्जा होगी। हीलियम के नाभिक बनने में दो (२) प्रोटॉन और दो (२) न्यूट्रॉन जुड़ते हैं। इनके जुड़ने में कुछ संमात्राओं का क्षय होता है। यह क्षय ऊर्जा में परिणित हो जाता है।

पाठक यह प्रश्न कर सकते हैं कि अन्तर तो संमात्रा में है, परन्तु हम उसे ऊर्जा क्यों कह रहे हैं? इसके समझने के लिए हमें संमात्रा तथा ऊर्जा के सम्बन्ध को देखना होगा। बहुत समय से ऊर्जा तथा संमात्रा की परिभाषा

अलग-अलग होती आयी है। लोग यह समझते हैं। कि ऊर्जा के कुछ और नियम हैं जबकि संमात्रा बिल्कुल भिन्न नियमों से बधी है। संमात्रा तथा ऊर्जा द्रव्य के अलग-अलग गुण माने गये हैं। इनमें आपस में कोई सम्बन्ध नहीं है। परन्तु आइन्सटीन के सापेक्षवाद से यह सिद्ध हो गया है कि संमात्रा एवम् ऊर्जा का विनिमय सम्भव है। यह सम्बन्ध निम्न प्रकार का है—

$$\text{ऊर्जा} = \text{समात्रा} \times (\text{प्रकाश वेग})^2$$

$$E = m C^2$$

इन सभी कारणों से हम समस्थानिक के अन्तर को ऊर्जा में परिणत कर सकते हैं। उदाहरण के लिए हम हीलियम लेते हैं। चार (४) ग्राम हीलियम बनाने के लिए लगभग दो (२) ग्राम हाइड्रोजन तथा दो (२) ग्राम न्यूट्रान का व्यय होगा। इसमें ०.०३०५ ग्राम संमात्रा का क्षय होगा। इतनी संमात्रा को ऊर्जा में परिणत करने पर लगभग ६.५×१०^{११} कैलरी ऊर्जा बनेगी। कोयले से इतनी ऊर्जा प्राप्त करने के लिए लगभग एक लाख कि० ग्रा० विशुद्ध कोयला लगेगा। यही विशाल ऊर्जा नाभिक की स्थिरता का मूल मंत्र है। इस ऊर्जा की उत्पत्ति संमात्रा के क्षय के कारण होती है। इसी कारण इसे नाभिक बन्धक ऊर्जा कहते हैं। इस ऊर्जा की विशेषता अन्यत्र दी गयी है।

अध्याय ६

तत्वांतरण

(परमाणु-विक्षण्डन का प्रथम चरण)

सन् १९१९ ई० तक नाभिक-विज्ञान में उन्नति हो चली थी। रदर-फोर्ड तथा अन्य अनुसन्धान-कर्त्ताओं द्वारा नाभिक की सत्ता की पुष्टि हो गयी थी और परमाणु संरचना में उसका विशेष स्थान स्वीकृत हो चुका था। रेडियधर्मिता द्वारा ही परमाणु-तत्वांतरण की प्रथम खोज हुई। इससे यह मालूम हुआ कि रेडियधर्मी तत्त्वों का रूपान्तर एक चरण में न होकर शृंखला रूप में होता है। इस शृंखला में कुछ तत्त्व अल्फा-कण मुक्त करते हैं तथा कुछ बीटा-कण। इस प्रकार वैज्ञानिक जान गये कि नाभिक की बनावट सरल न होकर अत्यन्त जटिल है। तत्त्वों की स्थिरता का सिद्धान्त असत्य सिद्ध हो चुका था। वैज्ञानिकों को ऐसा आभास होने लगा था कि प्रत्येक तत्त्व के नाभिक कुछ मूलभूत कणों द्वारा बने हैं। समस्थानिकों की खोज भी इसी समय हुई।

इसी समय (१९१९ में) कृत्रिम रूप से तत्वांतरण लाने में रदरफोर्ड सफल हुए।

रेडियधर्मी तत्त्वों से निकले अल्फा-कणों में प्रचुर मात्रा में ऊर्जा वर्तमान रहती है। इन कणों का वेग इतना अधिक है कि यदि किसी प्रकार की रूकावट न डाली जाय तो वे एक क्षण में सारी पृथ्वी का चक्कर लगा सकते हैं। रदरफोर्ड ने इन्हीं अल्फा कणों को तत्वांतरण के हेतु प्रयुक्त किया।

रदरफोर्ड के उपकरण अत्यन्त सरल थे। सर्वप्रथम प्रयोग में लाये जाने वाले उपकरण में एक कोष्ठक लिया गया जिसमें कोई भी गैस ऊपर

बनी दो नलियों द्वारा भरी या निकाली जा सकती थी। रेडियधर्मी स्रोत बीच स्थान पर रख दिया जाता था जिससे अल्फा-कण निकलते थे। अल्फा कण स्रोत से निकल कर एक जिक सल्फाइड पटल पर चमक पैदा करते थे जिसे एक सूक्ष्मदर्शी यंत्र द्वारा देखा जा सकता था। सामान्यतः गैस के अधिक दबाव तथा अन्य रुकावटों के कारण अल्फा-कण जिक सल्फाइड पटल तक नहीं पहुँच पाते।

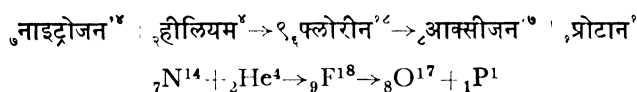
रदरफोर्ड ने अपने प्रयोग विभिन्न गैसों की उपस्थिति में किये। उपकरण में आक्सीजन या कार्बन डाइआक्साइड प्रयोग करने से पटल पर चमक नहीं दिखाई दी, परन्तु उसी दबाव पर नाइट्रोजन की उपस्थिति में तीव्र चमक दिखाई पड़ी। यह हम पहले ही बता चुके हैं कि ऐसी दशा में अल्फा-कणों का जिक सल्फाइड पटल तक पहुँचना असम्भव है, अतः यह चमक किन्हीं अन्य कणों द्वारा ही हुई होगी। जो कण चमक उत्पन्न करते थे वे नाइट्रोजन की उपस्थिति में ही उत्पन्न हुए होंगे।

रदरफोर्ड ने इन प्रयोगों की निम्न प्रकार से विवेचना की। अल्फा-कण नाइट्रोजन परमाणुओं पर क्रिया करते हैं। इस क्रिया द्वारा एक ऐसे नये कण की उत्पत्ति होती है जो अल्फा-कण से अधिक वेधी है।

ये कण क्या हैं और इनके गुण क्या हैं? इस प्रश्न को सुलझाने में रदरफोर्ड सफल भी हुए। उन्होंने उत्पन्न कणों पर विद्युत् तथा चुम्बकीय क्षेत्र के प्रभाव का प्रेक्षण किया। इन प्रयोगों द्वारा कणों के भार तथा आवेश की मात्रा ज्ञात हुई जिनसे यह सिद्ध हुआ कि यह प्रोटान ही हैं। पाठकों को याद होगा कि हाइड्रोजन के नाभिक को ही प्रोटान कहते हैं। रदरफोर्ड ने अपने उपकरण द्वारा प्रोटान उत्पन्न किये। इनकी उत्पत्ति नाइट्रोजन पर अल्फा-कण की क्रिया से हुई।

अल्फा-कण नाइट्रोजन परमाणु के नाभिक पर वेग से ठोकर मारते हैं। इस मुठभेड़ में नाइट्रोजन नाभिक से एक प्रोटान निकलता है। इस परिवर्तन के कारण नाइट्रोजन नाभिक पर आवेश की मात्रा और उसकी परमाणु-संख्या बदल जाती है। नाइट्रोजन नाभिक में अल्फा-कण के प्रवेश

करने से एक नये नाभिक का क्षणिक निर्माण होता है। यह नाभिक फ्लोरीन तत्त्व का समस्थानिक है और इसका भार अठारह (१८) तथा आवेश नौ (९) है। यह नाभिक प्रकृति में नहीं पाया जाता और अत्यन्त अस्थायी होने के कारण शीघ्र ही विखण्डित हो जाता है। इसके टूटने से एक शक्ति-शाली प्रोटान उत्पन्न होता है जो वेग से निकलकर पटल पर चमक देता है। बचे हुए कण का भार सत्रह (१७) होता है जो आक्सीजन तत्त्व का नाभिक है। इस क्रिया के विभिन्न रूप निम्नलिखित हैं:—



पाठक यह देखेगे कि क्रिया के दोनो ओर के नाभिको के भारो का योग समान है जो अठारह-अठारह है। इसी प्रकार दोनो ओर कणों पर आवेश का योग भी समान है जो नौ-नौ है।

नाइट्रोजन नाभिक पर सफलता मिलने के पश्चात् रदरफोर्ड ने अन्य तत्त्वो पर भी प्रयोग किये। फलतः अनेक तत्त्वो पर अल्फा-कणो द्वारा आक्रमण किया गया। बोरन, फ्लोरीन, सोडियम, एल्यूमिनियम तथा फ्रासफोरस पर इस आक्रमण से वेगवान् प्रोटानों की उत्पत्ति हुई।

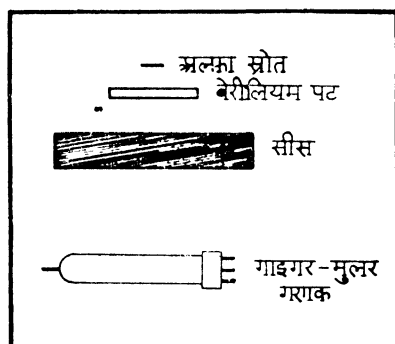
रदरफोर्ड एवम् चेड्विक ने एक अन्य उपकरण का भी निर्माण किया जिससे दूसरे तत्त्वो पर आक्रमण-क्रिया द्वारा उत्पन्न प्रोटान की खोज सम्भव हो सकी। इन तत्त्वों में नियन, मैगनीशियम, सिलिकन, गंधक, क्लोरीन, आर्गन, एवम् पोटैशियम थे। पोटैशियम से अधिक भार वाले तत्त्वो पर यह क्रिया असफल हुई क्योंकि परमाणुओ पर भार बढ़ने के साथ आवेश की मात्रा भी बढ़ती जाती है। अधिक आवेश वाले तत्त्व पर आक्रमण सफल होने के लिए अधिक वेग वाले कण की ही आवश्यकता होती है। रदरफोर्ड ने जिस अल्फा-कण का प्रयोग किया उसका वेग सीमित था, इस कारण भारी तत्त्वों पर वह सफल न हो सका।

रदरफोर्ड के शिष्य ब्लैकट ने अभ्र प्रकोष्ठ द्वारा तत्त्वांतरण का अध्ययन

किया। उसने बड़ी संख्या में चित्र लिये। केवल नाइट्रोजन के साथ ही लगभग तेईस सहस्र (२३०००) चित्र लिये गये। हर दस या पन्द्रह सेकेड के पश्चात् चित्र लिये जाने की योजना की गयी थी। इन तेईस सहस्र (२३०००) चित्रों में से आठ (८) चित्र ऐसे थे जिनमें नाइट्रोजन का तत्वांतरण हुआ था। ब्लैकेट ने अत्यन्त कठिन एवम् सूक्ष्म प्रयोग किये जिनसे रदरफोर्ड के पूर्व प्रयोगों की पुष्टि हुई।

न्यूट्रान की खोज

हम यह देख चुके हैं कि तत्वांतरण के कारण प्रोटान की उत्पत्ति हो सकती है। इन प्रयोगों के सूक्ष्म विश्लेषण से एक नये कण की भी खोज हुई। यह खोज अत्यन्त क्रांतिकारी थी। रदरफोर्ड के इन अल्फाकणीय प्रयोगों के पश्चात्, दस वर्षों तक इस दिशा में कोई नया कार्य न हुआ। यह पहले बताया जा चुका है कि कुछ ऐसे भी हलके तत्त्व थे जिनसे अल्फा-कण



चित्र संख्या ९—बेरिलियम पर अल्फाकणों का प्रयोग

द्वारा प्रोटान की उत्पत्ति नहीं होती थी। इनमें से एक तत्व, बेरिलियम भी है। इसका परमाणु-भार नौ (९) तथा परमाणु-संख्या अथवा आवेश चार

(४) है। जर्मन वैज्ञानिक बोथे तथा बेकर ने बेरिलियम पर अल्फा-कणों का प्रयोग किया। उनके प्रयोगों का अनुमान दिये हुए चित्र द्वारा हो सकता है। इसमें पोलोनियम अल्फा-कण का स्रोत था। एक रजत की प्लेट पर पोलोनियम तत्त्व की तह जमायी गयी जिससे अल्फा कण निकलते थे। इस स्रोत के निकट बेरिलियम या अन्य तत्त्व की प्लेट रखी गयी। स्रोत से निकले अल्फाकण बेरिलियम प्लेट से टकराते थे। यदि इस क्रिया द्वारा किसी प्रकार की किरणों की उत्पत्ति हो, तो उनकी पहचान एक गाइगर-मुलर गणक द्वारा की जा सकती है। यह यंत्र ऐसे स्थान पर रखा गया कि वे किरणें उस पर आकर पड़े। इस प्रयोग में गाइगर-मुलर गणक तथा बेरिलियम के बीच विभिन्न मोटाई की प्लेटों के रखने का प्रबन्ध था।

इस प्रयोग में उपकरण को इस प्रकार परिगणित करके रखा गया कि अल्फा-कण गाइगर-मुलर यंत्र तक सीधे न पहुँच पाये। पाठकों को यह जानना आवश्यक है कि विभिन्न स्रोतों से निकले अल्फा-कण भिन्न-भिन्न दूरी तक जा सकते हैं अर्थात् भिन्न-भिन्न स्रोतों के अल्फा-कणों की परिधि सीमित है। उस परिधि के बाद यह कण कोई प्रभाव नहीं डाल सकते; उदाहरणार्थ, पोलोनियम तत्त्व से निकले अल्फा-कण ३.७२ से० मी० की दूरी तक जा सकते हैं।

अब हम देखेंगे कि इन प्रयोगों से बोथे तथा बेकर ने क्या निष्कर्ष निकाला? यह ऊपर बताया जा चुका है कि स्रोत से निकले अल्फा-कण गणक तक सीधे नहीं पहुँच सकते और उनके द्वारा गाइगर यंत्र में कोई हलचल नहीं होती। परन्तु इन दोनों के बीच बेरिलियम या कुछ और तत्त्व (जैसे लीथियम, बोरान) रख दिये जायें तो उन तत्त्वों से कुछ नयी किरणें निकलती हैं। ये किरणें गाइगर-मुलर गणक में हलचल या विसर्जन करती हैं। इस विसर्जन की मात्रा नापी जा सकती है। विभिन्न तत्त्वों के प्रयोग से भिन्न-भिन्न मात्रा में विसर्जन उत्पन्न होता है। इन प्रयोगों में बेरिलियम द्वारा सबसे अधिक मात्रा में विसर्जन उत्पन्न हुआ।

रदरफोर्ड ने जब बेरिलियम का उपयोग अपने तत्वांतरण प्रयोगों में किया तो उन्हें उसमें सफलता नहीं मिली। इसका कारण यह था कि रदरफोर्ड अपने प्रयोगों में प्रोटान की उत्पत्ति ही देख रहे थे। उनके उपकरण इस प्रकार बने थे कि उनके द्वारा केवल प्रोटान या अन्य आवेशयुक्त कण की उत्पत्ति की ही पहचान हो सकती थी।

बोथे एवं बेकर के प्रयोगों द्वारा निकले विकिरण बहुत वेधक सिद्ध हुए। यह सीस आदि भारी तत्वों की मोटी तहों से सरलता से निकल जाते थे। पाठकों को हम पहले बता चुके हैं कि गामा-किरणें द्रव्य की मोटी तहों से आर-पार हो जाती हैं। इन वैज्ञानिकों ने इस समय यही विचार किया कि उनके प्रयोगों में गामा-किरणों की उत्पत्ति हो। इस तरह नये प्रकार के तत्वांतरण प्रयोगों की खोज हुई।

इसी समय फ्रांसीसी वैज्ञानिक जोलियेक्यूरी ने बोथे-बेकर के प्रयोगों को दोहराया। उन्होंने अपने निरीक्षणों में गाइगर-मुलर उपकरण का प्रयोग नहीं किया, वरन् उसके स्थान पर एक आयनीकरण कोष्ठक का उपयोग किया। इस उपकरण द्वारा आयनीकरण की माप की जा सकती थी। जोलियेक्यूरी ने अपने प्रयोगों द्वारा इन विकिरणों की जाँच की। ये विकिरण स्वतः बहुत कम आयनीकरण उत्पन्न करते थे। परन्तु आयनीकरण कोष्ठक में पैराफिन रखने पर आयनीकरण की मात्रा बहुत बढ़ जाती थी। पैराफिन के अतिरिक्त कोई और हाइड्रोजन युक्त पदार्थ भी आयनीकरण की मात्रा बढ़ा देता था।

जोलियेक्यूरी द्वारा किये गये निरीक्षणों से यह ज्ञात हुआ कि बेरिलियम पर अल्फा-कणों की क्रिया से जो विकिरण उत्पन्न होते हैं, वे पैराफिन पर क्रिया करते हैं। इस क्रिया के फलस्वरूप पैराफिन से प्रोटानों की उत्पत्ति होती है। इन प्रोटानों के निकलने से आयनीकरण की मात्रा बढ़ जाती है। इस क्रिया को निम्न प्रकार लिखा जा सकता है—

बेरिलियम + अल्फाकण → नया तत्व + विकिरण
विकिरण + पैराफिन → प्रोटान

दूसरे वैज्ञानिकों ने भी जोलियेक्यूरी एवं बोथे-वेकर के प्रयोगों की पुष्टि की। कुछ प्रयोग ऐसे भी हुए जिनमें उत्पन्न प्रोटानों के मार्ग चिह्न फोटोग्राफी प्लेट पर उतर आये।

इसी प्रकार के प्रयोग अंग्रेज वैज्ञानिक चेडविक (Chadwick) ने किये। उसने बेरिलियम से निकले विकिरणों का भलीभाँति निरीक्षण किया। इनमें बेरिलियम से उत्पन्न विकिरणोंके द्वारा नाइट्रोजन तथा हीलियम को प्रभावित किया गया। इन प्रयोगों का आश्चर्यजनक परिणाम मिले। नाइट्रोजन तथा हीलियम पर विकिरणों की क्रिया से वेगवान् कण निकले।

उस समय तक वैज्ञानिकों की धारणा थी कि बेरिलियम द्वारा उत्पन्न विकिरण स्वयम् गामा-किरणें हैं। इन गामा-किरणों की क्रिया द्वारा पैराफिन से प्रोटान निकलते हैं जिन्हें बोथे-वेकर एवं जोलियेक्यूरी ने देखा था। इसी प्रकार गामा-किरणों की क्रिया द्वारा अन्य हाइड्रोजन युक्त पदार्थों से भी प्रोटान निकले और अन्त में चेडविक द्वारा किये गये प्रयोगों से भी गामा-किरणों द्वारा वेगवान् कण उत्पन्न होना चाहिए। परन्तु इस धारणा में कुछ त्रुटियाँ थी जिस कारण इसे सत्य मानना कठिन था। उस समय तक गामा-किरणों पर भी प्रचुर कार्य हो चुका था। गामा-किरणों की ऊर्जा की माप भी बहुत-से प्रयोगों द्वारा हुई थी। यदि इन प्रयोगों की क्रिया गामाकिरणों से हुई होती तो उसकी ऊर्जा की मात्रा साधारणतः गामा-किरणों की ऊर्जा से कई सौ गुना अधिक होनी चाहिए थी। यह अनहोनी बात थी। उस समय तक इतनी ऊर्जायुक्त गामा किरणें किसी भी प्रयोग में न देखी गई थी।

चेडविक ने सर्वप्रथम इस गुत्थी को सुलझाने का प्रयत्न किया। उसने एक नया सिद्धान्त रखा। इसके अनुसार बेरिलियम पर अल्फा-कण की क्रिया द्वारा (और इसी प्रकार बोरान, लीथियम आदि पर अल्फा-कण की क्रिया द्वारा) गामा किरणें नहीं निकलती, वरन् नये कणों की किरणें उत्पन्न होती हैं। ये आवेश रहित कण थे। चेडविक ने इन कणों का नाम न्यूट्रान रखा। इन आवेशरहित कणों की खोज करना कठिन कार्य था।

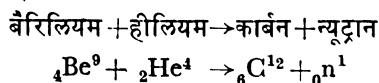
ये कणों के दण्ड विद्युत या चुम्बकीय क्षेत्र द्वारा प्रभावित नहीं हो सकते । ये कण आवेश रहित होने के कारण प्रोटान अथवा नाभिक के अत्यन्त निकट जा सकते हैं । इनका नाभिक से कोई प्रतिकर्षण न होगा । इस कारण यह सरलता से द्रव्य के बीच से निकल सकेंगे । इनको रोक कर रखना दुष्कर कार्य सिद्ध होगा ।

न्यूट्रान का चित्र लेना असम्भव-सा है क्योंकि वे आवेश रहित कण हैं । परन्तु न्यूट्रान दूसरे कणों से टकराकर उनको अपना वेग दे सकते हैं । इसके द्वारा दूसरे कणों के चित्र भी लिये जा सकते हैं । इस प्रकार न्यूट्रान अपनी उपस्थिति दूसरे कणों द्वारा प्रदर्शित करते हैं ।

चेडविक के न्यूट्रान-सिद्धान्त से बहुत-सी कठिनाइयाँ हल हो गयी । अब तो अनेक प्रयोगों द्वारा न्यूट्रान की उपस्थिति की पुष्टि हो चुकी है । न्यूट्रान परमाणु रचना का आवश्यक अंग है । हम आगे देखेंगे कि न्यूट्रान ने बड़ा ऐतिहासिक कार्य किया है ।

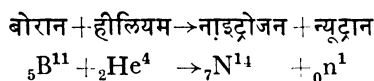
न्यूट्रान उत्पत्ति की क्रियाएँ

अब हम यह देखें कि किस प्रकार बोथे-बेकर तथा चेडविक के प्रयोगों द्वारा न्यूट्रान की उत्पत्ति हुई । इन वैज्ञानिकों ने बेरिलियम नाभिक पर अल्फा-कण द्वारा क्रिया की । बेरिलियम नाभिक का भार नौ (९) है और उसकी परमाणु-संख्या अथवा नाभिक आवेश चार (४) है । अल्फा-कण का भार चार (४) तथा आवेश दो (२) है । अल्फा-कण बेरिलियम के नाभिक से टकराकर सलग्न हो जाते हैं और बदले में एक न्यूट्रान कण बाहर निकल जाता है । इस क्रिया द्वारा एक नया तत्त्व बनता है जिसका भार $9+4-1=12$ (बारह) है तथा परमाणु संख्या $4+2=6$ (छः) है । यह तत्त्व कार्बन है । इस क्रिया को निम्नलिखित समीकरण द्वारा सूचित किया जा सकता है—

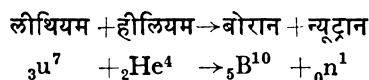


समीकरण में ऊपर के अंक परमाणु भार तथा नीचे के अंक परमाणु संख्या बताते हैं।

बोरान तथा लीथियम के परमाणुओं पर अल्फा-कण की क्रिया द्वारा भी न्यूट्रान निकलते हैं। बोरान पर क्रिया होने से नाइट्रोजन परमाणु की उत्पत्ति होती है—



इसी प्रकार अल्फा-कण द्वारा लीथियम पर क्रिया होने से बोरान परमाणु का निर्माण होता है।



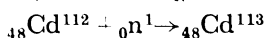
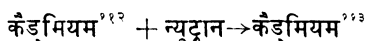
इस क्रिया द्वारा उत्पन्न बोरान के परमाणु का भार दस (१०) है। यह परमाणु बोरान^{११} (B^{11}) का समस्थानिक है।

न्यूट्रान द्वारा तत्वांतरण

तत्वांतरण प्रयोगों में न्यूट्रान अत्यन्त उपयोगी कण सिद्ध हुए हैं। आवेशरहित होने के कारण ये सरलता से नाभिक पर क्रिया करते हैं। इस समय परमाणु शक्ति की उत्पत्ति एवं प्रयोगों में न्यूट्रान का उपयोग हो रहा है और इस प्रकार न्यूट्रान उत्पन्न करने के सरल उपाय भी ज्ञात हो गये हैं। परमाणु शक्ति के उपयोगों से पहले भी वैज्ञानिकों ने न्यूट्रान-उत्पत्ति के उपाय ढूँढ़े थे। रदरफोर्ड ने भी न्यूट्रान बनाने का एक उपाय निकाला था जिसमें रेडियम के किसी लवण को बेरिलियम चूर्ण के साथ मिला दिया जाता था और इस संमिश्रण को पतले काच की बन्द नली में रख लिया जाता था। इस प्रकार रेडियम से निकले अल्फा-कण बेरिलियम पर क्रिया करके न्यूट्रान उत्पन्न करते थे। १०० मिलीग्राम रेडियमके प्रयोग करने पर लगभग ५ लाख न्यूट्रान प्रति सेकेंड उत्पन्न होते हैं जिनमें अधि-

कांश नली के पतले कांच को पार कर जाते हैं। रेडियम के स्थान पर रेडन^१ गैस का उपयोग करने पर न्यूट्रान अधिक मात्रा से मिले।

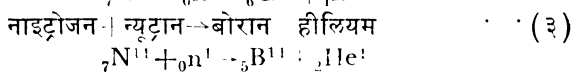
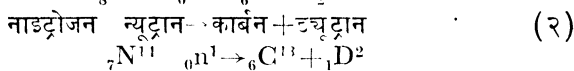
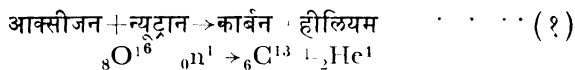
न्यूट्रान की उपस्थिति स्वयं नहीं ज्ञात हो सकती। परन्तु किसी दूसरे कण से टकराने पर उसका आभास हो जाता है। यदि हाइड्रोजन तत्त्व के बीच से न्यूट्रान का आवागमन हो तो निश्चय ही कुछ न्यूट्रान हाइड्रोजन कण से टकरायेगे। इस टक्कर द्वारा न्यूट्रान की ऊर्जा हाइड्रोजन नाभिक को प्राप्त हो जाती है जो वेग से आगे बढ़ती है। इन टकराये नाभिकों का चित्र अभ्र-कोष्ठक द्वारा सरलता से अंकित हो जाता है। तीव्र न्यूट्रान हाइड्रोजन अथवा हाइड्रोजन युक्त पदार्थ (जैसे पैराफिन, जल आदि) से निकलने पर मन्द पड़ जाते हैं। मन्द न्यूट्रान बनाने का यह उपाय बहुत प्रयोगों में उपयोगी सिद्ध हुआ है। मन्द न्यूट्रान लौह तथा सीसे की मोटी तहों को सरलता से पार कर लेते हैं और इस क्रिया में उनका अवशोषण बहुत कम होता है। परन्तु कुछ ऐसे तत्त्व हैं जो मन्द न्यूट्रान को सरलता से प्रचुर मात्रा में अवशोषित करते हैं। इनमें बोरान, कैडमियम तथा गोडोलिनियम मुख्य हैं। इन तत्त्वों द्वारा न्यूट्रान का अवशोषण उनके नाभिक के साथ न्यूट्रान की सलग्नता तथा उसके तत्वांतरण की भी सूचना देता है। इस सलग्नता द्वारा दो क्रियाएं सम्भव हैं। एक के अनुसार तत्त्व का केवल समस्थानिक बनेगा।



कैडमियम के एक सौ बारह (११२) भार वाले नाभिक पर न्यूट्रान ने क्रिया की जिसके द्वारा नाभिक से न्यूट्रान सलग्न हो गया। इस क्रिया द्वारा कैडमियम-११२ अपने समस्थानिक कैडमियम-११३ में परिणत हो गया। तत्त्व तो न बदला, परन्तु उसके भार में वृद्धि हो गयी।

1. Radon

दूसरी क्रिया द्वारा नाभिक अस्थिर हो कर दूसरे तत्त्व में परिणत हो सकता है। इस क्रिया में कोई कण बाहर निकल जाता है। इस कण के अनेक रूप सम्भव हैं। कुछ तत्त्वांतरणों के समीकरण निम्न प्रकार हैं—

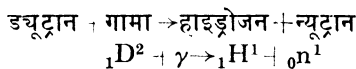


पहले समीकरण में आक्सीजन पर क्रिया द्वारा कार्बन बनता है तथा एक अल्फा-कण स्वतंत्र हो जाता है। नाइट्रोजन पर न्यूट्रॉन की क्रिया के दो रूप हैं। एक के द्वारा कार्बन एवं न्यूट्रॉन अथवा हाइड्रोजन का दो (२) भार वाला समस्थानिक बनता है और दूसरी क्रिया में बोरान-११ और अल्फा-कण बनते हैं। तत्त्वांतरण में मन्द न्यूट्रॉन अत्यधिक उपयोगी सिद्ध हुए हैं। कृत्रिम रेडियधर्मी तत्त्वों के निर्माण में इनका बहुत उपयोग हुआ है। इसका वर्णन आगे दिया जायगा।

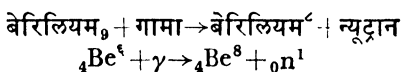
न्यूट्रॉन द्वारा परमाणु-खण्डन भी सम्भव हुआ है। यह अत्यन्त क्रांतिकारी खोज थी जिसने परमाणु ऊर्जा के द्वार खोल दिये। परमाणु-खण्डन की भी विवेचना आगे होगी।

गामा विकिरण द्वारा तत्त्वांतरण

गामा-विकिरणों द्वारा भी तत्त्वांतरण सम्भव हो सका है। चेडविक तथा उनके साथियों ने ड्यूट्रॉन (${}_1\text{D}^2$) अथवा हाइड्रोजन के दो (२) भार वाले समस्थानिक को गामा-किरणों द्वारा विलखण्डित किया है—



इसी प्रकार जीलार्ड ने बेरिलियम पर गामा विकिरण द्वारा क्रिया की—



अध्याय ७

परमाणु-विखण्डक यंत्र

पिछले अध्याय में परमाणु तत्त्वांतरण की विधियाँ बतायी गयी हैं। इनमें मुख्यतः अल्फा-कणों का उपयोग हुआ है। न्यूट्रॉन की उत्पत्ति भी अल्फा-कणों द्वारा ही हुई। परन्तु अल्फा-कण रेडियधर्मी तत्त्वों द्वारा उत्पन्न होते हैं। इन तत्त्वों में रेडियम का विशेष स्थान है। विश्व में रेडियम न्यून मात्रा में ही पाया जाता है और अत्यन्त मूल्यवान् तत्त्व है। इस कारण तत्त्वांतरण के प्रयोग सीमित मात्रा में हो सकते हैं और इनके द्वारा प्राप्त कणों का वेग भी सीमित है।

इन प्रयोगों के प्रारम्भ से ही वैज्ञानिकों का यह प्रयत्न रहा है कि रेडियधर्मी तत्त्वों से स्वतंत्र ऐसे कणों का उपयोग किया जाय जिन पर कृत्रिम उपायो द्वारा अधिक मात्रा में ऊर्जा या वेग प्रदान किया जा सके। अल्फा-कण द्वारा किये गये प्रयोगों से पता चल गया था कि तत्त्वांतरण प्रयोगों में, लाखों इलेक्ट्रॉन-वोल्ट-ऊर्जा-युक्त कणों की आवश्यकता पड़ती है। आगे चलकर तो करोड़ों इलेक्ट्रॉन-वोल्ट-ऊर्जा की आवश्यकता पड़ेगी।

अल्फा-कण या प्रोटॉन, ड्यूट्रॉन आदि आवेशयुक्त कण होते हैं। इन पर घन विद्युत का आवेश होता है। इस कारण इनका किसी परमाणु के नाभिक पर क्रिया करना तभी सम्भव हो सकता है जब वह अत्यन्त वेगवान् हो अन्यथा वह नाभिक के घन आवेश के प्रतिकर्षण को पार न कर सकेगा। इन कणों पर जितनी अधिक ऊर्जा होगी उनके नाभिक वेधन की उतनी ही अधिक सभावना होगी।

रेडियधर्मी तत्त्व सीमित मात्रा में अल्फा-कण उत्पन्न करते हैं और इनकी

मात्रा बढ़ायी नहीं जा सकती। मात्रा बढ़ने पर तत्त्वांतरण की सम्भावना बढ़ जाती है। इस कारण वह कृत्रिम उपाय अधिक उपयोगी सिद्ध होना चाहिए जिससे हम कणों की मात्रा इच्छानुसार बढ़ा या घटा सके।

इस कार्य के निमित्त बड़े-बड़े यंत्र बनाये गये हैं जिन्हें हम परमाणु विखण्डक यंत्र कह सकते हैं। इन यंत्रों द्वारा अनेक मूलभूत तथा अन्य कणों को शक्तिमान् बनाया जाता है। इसमें प्रोटान, ड्यूट्रान और अल्फा-कण मुख्य हैं। प्रोटान अल्फा-कण से हल्का है इस कारण उसको ऊर्जा देना सरल है और कृत्रिम प्रयोगों में अत्यंत उपयोगी सिद्ध हुआ है।

इन कणों का कृत्रिम तत्त्वांतरण के प्रयोगों में उपयोग करने के लिए अनेक विशालकाय परमाणु विखण्डक यंत्र बनाये गये हैं।

विभिन्न यंत्रों में अनेक सिद्धान्तों का उपयोग किया गया है। हाइड्रोजन या अन्य गैसों में विद्युद्विसर्जन द्वारा प्रोटान या अन्य आवेश-युक्त कण उत्पन्न किये जाते हैं। इस प्रकार इन कणों की पूर्ति तत्त्वांतरण प्रयोगों के निमित्त सरलता से की जा सकती है। इन कणों को अधिक वेग देने के लिये विद्युत् क्षेत्र में त्वरित करना आवश्यक है। इस कार्य के लिए अनेक प्रकार के यंत्र बनाये गये हैं जिनमें लाखों वोल्ट का विद्युत् आवेश रहता है। अमेरिका के प्रिंसटन विश्वविद्यालय में प्रसिद्ध भौतिक शास्त्री राबर्ट वान डी ग्राफ^१ ने स्थिरवैद्युत जनित्र बनाया था। यह एक विशाल पट्टी द्वारा चालित यंत्र था जिसमें उच्चस्तर का विद्युत् विभव उत्पन्न किया जा सकता था। केलिफोर्निया विश्वविद्यालय, अमेरिका के प्रोफेसर ई० लारेन्स^२ ने साइक्लोट्रान^३ नामक अद्भुत उपकरण का आविष्कार किया। इसके द्वारा आवेश युक्त कण गुणज दशाओं में त्वरित होते हैं।

इसी समय इंग्लैंड की केवेडिश प्रयोगशाला में रदरफोर्ड के दो शिष्य

1. Robert van de Graaff

2. E. Lawrence

3. Cyclotron

जान काकक्राफ्ट^१ और वाल्टन परमाणु-विखण्डन पर अनुसन्धान कर रहे थे। सर्वप्रथम इन दोनों ने ही पूर्णतया कृत्रिम तत्त्वांतरण के सफल प्रयोग किये।

१—काकक्राफ्ट-वाल्टन का जनित्र

काकक्राफ्ट-वाल्टन ने अपने उपकरण में विद्युत-त्वरण के सिद्धान्त का उपयोग किया। इस उपकरण के तीन मूल भाग थे।

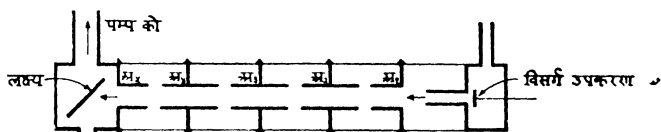
(१) आयन उत्पत्ति का स्रोत, जिससे आवेश युक्त कण उत्पन्न होते थे; उदाहरण के लिए हाइड्रोजन गैस से विद्युत चाप द्वारा प्रोटान उत्पन्न किये जाते थे।

(२) निर्वात नली जिसमें कण स्वतंत्रतापूर्वक यात्रा कर सकते थे। तथा (३) कणों को वेगवान बनाने का साधन।

काकक्राफ्ट-वाल्टन के उपकरण को समझने से पहले उसके सिद्धान्त पर दृष्टिपात करना उचित होगा। हम यह जानते हैं कि समान विद्युत् आवेश के कणों में प्रतिकर्षण होता है। इसके विपरीत विषम आवेशयुक्त कणों में आकर्षण होता है। वाल्टन तथा काकक्राफ्ट ने एक निर्वात नली के दो सिरों पर दो विद्युदग्र रखे जिनके बीच का विभव-अन्तर बहुत अधिक था। इस नली में कण स्वतंत्रता पूर्वक गतिज ऊर्जा से यात्रा कर सकते थे। काकक्राफ्ट-वाल्टन विभव-अन्तर के द्वारा कणों को इतना त्वरित कर सके कि वह परमाणु विखण्डन कर सके।

इस क्रिया को सफल करने के लिए कम से कम आठ लाख (8×10^4) वोल्ट विभव अन्तर की आवश्यकता थी। दिष्ट धारा में ही यह विभव-अन्तर होना चाहिए। उस समय केवल २०,००० वोल्ट विभव-अन्तर पैदा करने के उपकरण प्राप्त थे। काकक्राफ्ट तथा वाल्टन ने इन सीमाओं

का ध्यान रख कर अपना यंत्र संघटित किया। उनके यंत्र की रूप रेखा चित्र १० में दी गयी है।



चित्र संख्या १०—काकक्राफ्ट-वाल्टन यन्त्र

उन्होंने दो विद्युदग्रों के मध्य दो लाख (2×10^6) वोल्ट का विभव अन्तर रखा और अपने उपकरण में इस प्रकार के पाँच विद्युदग्र-युग्म रखे। इन पाँचों को शृंखलाबद्ध रखने पर प्रथम तथा अन्तिम विद्युदग्रों के मध्य दस लाख (10^7) वोल्ट का विभव अन्तर उत्पन्न हुआ। चित्र में (A_1 , A_2 , A_3 , A_4 , A_5) पाँच विद्युदग्र युग्म दिखाये गये हैं। प्रत्येक विद्युदग्र युग्म काँच नली में रखा गया और प्रत्येक नली दूसरे से जोड़ दी गयी। इन नलियों को सतर्कता से जोड़ा गया जिससे कहीं से वायु का प्रवेश न हो सके। प्रथम विद्युदग्र युग्म के ऊपर एक विशेष छिद्र था जिसके मध्य से प्रोटान निकल कर विद्युदग्रों में होकर यात्रा कर सकते थे। यह प्रोटान विसर्ग उपकरण में उत्पन्न होते थे। प्रोटान छिद्र से निकल कर प्रत्येक विद्युदग्र युग्म के मध्य में त्वरित होते थे। प्रत्येक विद्युदग्र युग्म के बीच दो लाख (2×10^6) वोल्ट का विभव-अन्तर था जिसके द्वारा प्रोटान ऊर्जा प्राप्त करते थे। पाँचों विद्युदग्र युग्म के मध्य यात्रा करने पर प्रोटान को दस लाख (10^7) वोल्ट की ऊर्जा मिली। इतनी विशाल ऊर्जा प्राप्त करने के पश्चात् प्रोटान लक्ष्य पर आक्रमण करते थे। लक्ष्य का स्थान चित्र में दिया है।

इन विद्युदग्रों को स्थायी विभव-अन्तर देना एक कठिन कार्य था। इस समस्या को काकक्राफ्ट-वाल्टन ने बड़ी कुशलता से सुलझाया। उनके

उपकरण में समान-विभव-अन्तर प्राप्त करने का केवल एक स्रोत था, परन्तु शीघ्र-परिवर्तित स्विच प्रणाली^१ द्वारा वह अनेक विद्युदग्रो को एक साथ सरलता से विभव-अन्तर प्रदान करता था।

लीथियम का विच्छेदन

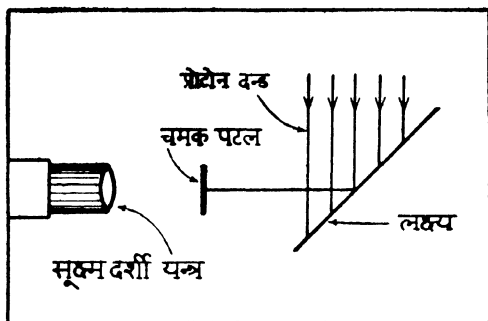
काकक्राफ्ट तथा वाल्टन ने सर्व-प्रथम लीथियम पर अपने प्रयोग किये। लीथियम एक हलका तत्त्व है। आवर्त-सारणी में उसका तीसरा स्थान है। उससे हल्के तत्व केवल हाइड्रोजन तथा हीलियम हैं। इस कारण इन वैज्ञानिकों का विचार था कि लीथियम के नाभिक पर प्रोटान का आक्रमण सरलता से हो सकेगा। लीथियम पर अल्फा-कणों का प्रभाव पहले ही देखा जा चुका है। अल्फा-कण हाइड्रोजन से भौगुने भारी है और उन पर आवेश की मात्रा दो (२) है जो प्रोटान के आवेश से दूनी है। इस कारण प्रोटान को अल्फा-कण से अधिक सरलता द्वारा ही हीलियम का विच्छेदन करना चाहिए। लीथियम पर आवेश की मात्रा तीन (३) है। अतः प्रोटान और लीथियम के नाभिक के बीच का प्रतिकर्षण अन्य भारी नाभिकों से कम होना चाहिए।

लीथियम का तत्त्वातरण एक पटल पर चमक की विधि द्वारा देखा गया। चित्र ११ में दिखाया गया है कि प्रोटान के पतले दण्ड त्वरित होने के पश्चात् एक लक्ष्य पर आक्रमण करते हैं। यह लक्ष्य दण्ड से 45° के कोण पर रखा गया। इसी प्रकार लक्ष्य पटल से भी 45° का कोण बनाता था। लक्ष्य तथा चमक-पटल की दूरी इतनी रखी गयी कि प्रोटान प्रकीर्णन द्वारा पटल तक न पहुँच सके क्योंकि प्रकीर्ण-प्रोटानों की परिधि से यह दूरी अधिक रखी गयी।

काकक्राफ्ट-वाल्टन ने अपने प्रयोग में लक्ष्य के स्थान पर लीथियम

1. Rapidly changing switches

रखा। इस क्रिया से पटल पर उन्हे चमक दिखाई दी। यह पहले बताया जा चुका है कि प्रोटानों का स्वतः पटल पर पहुँचना असम्भव था। यह



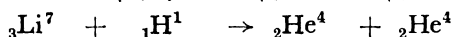
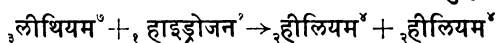
चित्र संख्या ११—प्रोटान दण्ड लक्ष्य पर अनुसरण करते हैं

चमक अन्य कणों द्वारा ही हुई होगी। यह चमक प्रोटान की लीथियम पर हुई क्रिया से ही पटल पर उत्पन्न होती थी और वह उतने काल तक ही वर्तमान रहती थी जब तक प्रोटान का दण्ड लीथियम पर पड़ता था। जिस समय इन कणों का आक्रमण बन्द हो जाता था, चमक भी उसी समय बन्द हो जाती थी।

काकक्राफ्ट तथा वाल्टन ने इन कणों की भली प्रकार विवेचना की। उन्होंने इनकी परिधि अपने प्रयोगों द्वारा ज्ञात की। इसे ज्ञात करने के लिये लक्ष्य और पटल के बीच भिन्न-भिन्न मोटाई की अभ्रक प्लेटें रखी गयीं। जैसे-जैसे अभ्रक प्लेट की मुटाही बढ़ायी गयी, चमक भी बन्द होती गयी। इस प्रकार चमक पैदा करने वाले कणों की ऊर्जा तथा उनकी परिधि ज्ञात की गयी। यह परिधि वायु में ८.४ से० मी० के तुल्य थी। प्रोटानों की इतनी अधिक परिधि असम्भव थी।

काकक्राफ्ट-वाल्टन ने इसकी विवेचना इस प्रकार की—चमक पैदा

करने वाले ये कण प्रोटान न होकर प्रोटान द्वारा बेरीलियम पर हुई क्रिया के फलस्वरूप अल्फा-कण थे जो निम्न प्रकार से उत्पन्न हुए—



लीथियम का नाभिक एक प्रोटान अवशोषित करके हीलियम के दो नाभिकों में विखण्डित हो जाता है। दोनों वैज्ञानिकों ने यह घोषणा सर्वप्रथम १६ अप्रैल, १९३२ में की।

ऊपर बतायी हुई प्रतिक्रिया द्वारा निकले हुए हीलियम के दोनो नाभिक बड़े वेगवान् थे। इनके साथ संलग्न ऊर्जा प्रयुक्त प्रोटान से कही अधिक थी। काकक्राफ्ट-वाल्टन ने अपने प्रयोगों द्वारा इनकी ऊर्जा की मात्रा निकाली। प्रत्येक कण के साथ अस्सी लाख (8×10^6) इलेक्ट्रान वोल्ट ऊर्जा संलग्न थी। प्रायोगिक प्रोटान के साथ केवल दस लाख (10^6) इलेक्ट्रान-वोल्ट ऊर्जा थी। यह अधिक ऊर्जा कहां से आयी? इसको समझने के लिए हमे आइंस्टीन के सिद्धान्त का प्रयोग करना होगा। हम पहले देख चुके हैं कि इस महान् वैज्ञानिक ने ऊर्जा तथा संमात्रा का सम्बन्ध निकाला जो निम्न है—

$$E = M \cdot C^2$$

$$\text{अथवा ऊर्जा} = \text{संमात्रा} \times (\text{प्रकाश का वेग})^2$$

काकक्राफ्ट-वाल्टन के समीकरण मे बायी ओर लीथियम तथा प्रोटान हैं और दाहिनी ओर दो हीलियम के कण हैं। दोनों ओर की संमात्राओं का योग इस प्रकार है—

लीथियम ^७	(Li^7) =	७.०१८२२
प्रोटान	(H^1) =	१.००८१४
योग		८.०२६३६
हीलियम ^४	(He^4) =	४.००३८७
हीलियम ^४	(He^4) =	४.००३८७
योग		८.००७७४

$$\text{अन्तर } ८.०२६३६ - ८.००७७४ = ०.०१८६२$$

दो अल्फा-कण बनने की प्रतिक्रिया में 0.01×10^{12} संमात्रा का क्षय होता है। आइंस्टीन सिद्धान्त के अनुसार यह संमात्रा एक सौ चौहत्तर लाख (१७४,००,०००) इवो० के तुल्य है। काकक्राफ्ट-वाल्टन के प्रयोग में आठ लाख (८,००,००० इवो०) इलेक्ट्रान वोल्ट ऊर्जा वाले प्रोटान ने क्रिया की। इस प्रकार इस क्रिया में कुल मिला कर एक सौ बयासी लाख इलेक्ट्रान वोल्ट (१७४,००,००० + ८,००,००० = 1.82×10^8 इवो०) ऊर्जा का क्षय हुआ। यह पहले बताया गया है कि काकक्राफ्ट-वाल्टन ने अभ्रक प्लेट द्वारा निरीक्षण से ज्ञात किया कि प्रत्येक अल्फा कण के साथ अस्सी लाख इलेक्ट्रान वोल्ट (८०,००,००० इवो०) ऊर्जा सलग्न रहती है। और इस कारण दो अल्फा-कणों के साथ सलग्न एक सौ साठ लाख इलेक्ट्रान वोल्ट (1.6×10^8 इवो०) ऊर्जा थी। बाद में सम्यक् रीति से किये गये प्रयोगों से ज्ञात हुआ कि दोनों अल्फा-कणों के साथ कुल एक सौ छिहत्तर लाख इलेक्ट्रान वोल्ट (1.76×10^8 इवो०) ऊर्जा रहती है।

संक्षेपतः हम कह सकते हैं कि लीथियम पर प्रोटान की प्रतिक्रिया से संमात्रा ऊर्जा में परिणत होती है। संमात्रा से परिणत ऊर्जा तथा प्रयुक्त प्रोटान की ऊर्जा का योग एक सौ चौरासी लाख इलेक्ट्रान वोल्ट (1.84×10^8 इवो०) है। इसके विपरीत उत्पन्न अल्फा-कणों के साथ सलग्न ऊर्जा की मात्रा लगभग एक सौ छियत्तर लाख इलेक्ट्रान वोल्ट (1.76×10^8 इवो०) है। इसके निरीक्षण द्वारा प्राप्त दूसरी संख्या तथा आइंस्टीन समीकरण द्वारा प्राप्त पहली संख्या में कुछ अन्तर अवश्य है, परन्तु इन प्रयोगों की त्रुटियों पर ध्यान देने पर यह अन्तर अधिक नहीं माना जायगा। इस प्रकार इन प्रयोगों द्वारा आइंस्टीन समीकरण की पुष्टि होती है।

काकक्राफ्ट तथा वाल्टन ने अपने निरीक्षणों की घोषणा अप्रैल, १९३२ में की। इनमें कृत्रिम क्रिया द्वारा तत्त्वांतरण सम्भव हो सका था।

इन प्रयोगों की पुष्टि अभ्रकोष्ठक प्रयोगों द्वारा हुई। डी तथा वाल्टन ने ये निरीक्षण बड़ी सफलतापूर्वक किये। उन्होंने अल्फा-कणों की परिधि को नापा जिससे उनके साथ संलग्न ऊर्जा की माप सम्यक् रीति से हो सकी।

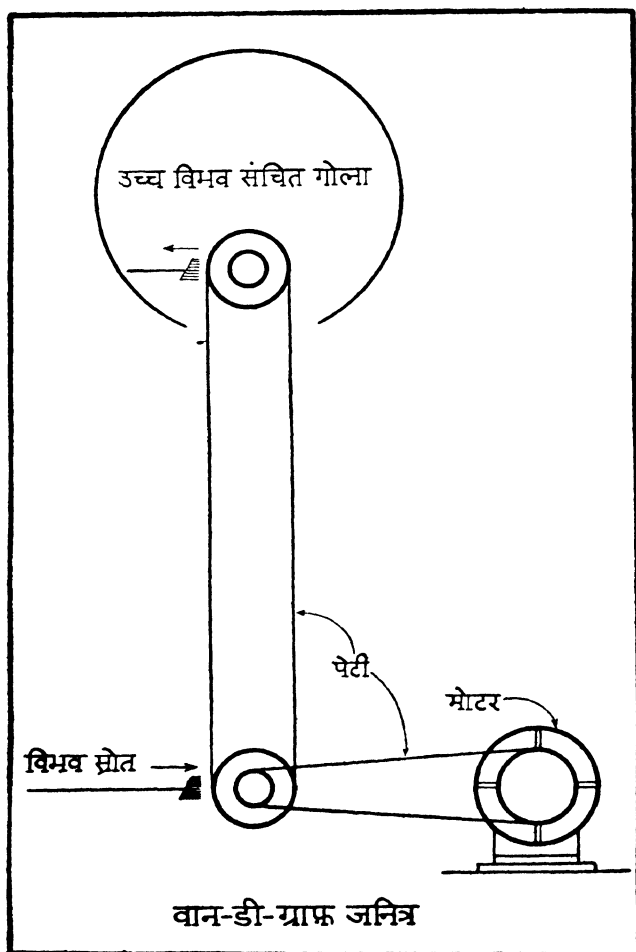
वान डी ग्राफ का जनित्र

अमेरिका के प्रिसटन विश्वविद्यालय में सन् १९३१ में प्रसिद्ध भौतिक शास्त्री वान डी ग्राम ने स्थिर वैद्युत जनित्र' बनाया। यह जनित्र परमाणु-बिखण्डन में अत्यन्त उपयोगी सिद्ध हुआ है। इस उपकरण में उन्ही सिद्धान्तों का उपयोग हुआ है जिनका स्थिर विद्युत् उत्पन्न करने के लिए वैज्ञानिक भौतिकी में करते हैं। इनमें मुख्य सिद्धान्त यह है कि एक चालक-गोला^१ विद्युत् आवेश को ग्रहण कर सकता है, इसका विभव चाहे जो कुछ भी हो। इस गुण के द्वारा गोले पर विभव बढ़ाया जा सकता है। यह आवश्यक है कि गोला बहुत चिकना और मुडौल हो तथा उस पर नोकीले कोने आदि न हो क्योंकि उनके कारण विसर्ग^३ हो सकता है।

वान डी ग्राफ के जनित्र का अनुमान चित्र १२ द्वारा हो सकता है। इस उपकरण में एक मोटर द्वारा दो गिरियों पर एक पेटी घूमती है। यह पेटी किसी अचालक पदार्थ (कागज, रेशम, रेयान आदि) की बनी रहती है। इसमें नीचे की गिरी के पास ५,००० से २०,००० वोल्ट की दिष्ट-धारा^२ का विभव रहता है जो पेटी को इसी विभव का धन आवेश देती रहती है। यह पेटी धन आवेश लेकर ऊपर जाती है और इस आवेश को धातु के गोले पर संचित करती रहती है। यह गोला एक पृथक्कृत स्तम्भ पर सधा रहता है जिससे उसके आवेश का क्षय न हो। पेटी के बार-बार घूमने से आवेश ऊपर के गोले पर संचित होता रहता है। बाद के बने उपकरणों में पेटी द्वारा गोले से ऋण आवेश के नीचे प्रेषित करने का भी प्रबन्ध रहता था जो अतत नीचे पृथ्वी पर चला जाता था।

जनित्र के चलाने से गोले पर आवेश संचित होने लगता है जो समय बढ़ने के पश्चात् एक तल पर स्थिर हो जाता है। इस अवस्था में आवेश

1. Electrostatic generator	2. Conducting Sphere
3. Discharge	4. D. C.



चित्र संख्या १२—वान डी ग्राफ़ जनित्र

के संचित होने की मात्रा उसके क्षरण की मात्रा के बराबर होती है। यदि हम इस तल को बढ़ाना चाहें तो हमें क्षरण की मात्रा घटानी पड़ेगी। क्षरण को घटाने के कई उपाय किये गये हैं। पूर्ण जनित्र को अधिक दबाव की वायु या अन्य गैसों में रखने पर क्षरण घट जाता है। वायु के स्थान पर विशुद्ध नाइट्रोजन, मीथेन, या उससे व्युत्पन्न डाइक्लोरो-फ्लोरोमीथेन अधिक उपयोगी सिद्ध हुए हैं।

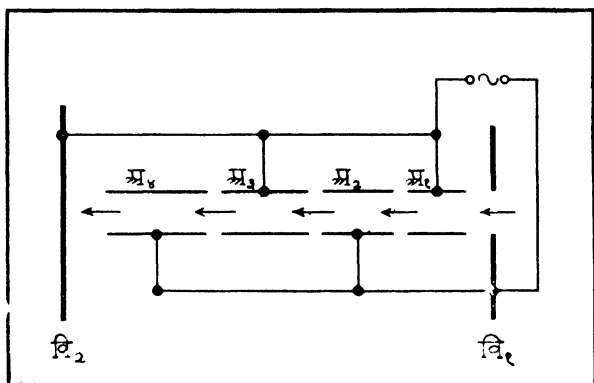
कणों को त्वरित करने के हेतु गोले से एक नली जोड़ी जाती है जिसमें से कण प्रवाहित होते हैं। जनित्र के आवेश के कारण कण अत्यंत वेगवान् तथा ऊर्जाशील हो जाते हैं।

वान डी ग्राफ के सर्वप्रथम जनित्र से केवल अस्सी हजार वोल्ट (८०,००० वो०) आवेश उत्पन्न हुआ था। अगले उपकरण में वह पन्द्रह लाख वोल्ट (१५,००,००० वो०) तक विभव ले जाने में सफल हुए थे। यह स्थिति १९३१ में थी। इसके पश्चात् उन्होंने पचास लाख वोल्ट (५०,००,००० वो०) का विभव भी उत्पन्न किया। इस आविष्कार से लोगों में बहुत उत्साह बढ़ा और अन्य स्थानों में बड़े-बड़े जनित्रों की स्थापनाएँ हुईं। आजकल परमाणु-विखण्डन प्रयोगों में प्रायः सर्वत्र वान डी ग्राफ के जनित्र ही प्रचलित हो गये हैं। इनके द्वारा कणों पर पचास लाख वोल्ट (५०,००,००० वो०) का विभव उत्पन्न किया जा सकता है और विखण्डन प्रयोगों के लिए कणों के निरन्तर दण्ड उत्पन्न किये जा सकते हैं। इन कणों पर विभव स्थिर रूप से रहता है और उसे इच्छानुसार घटाया-बढ़ाया जा सकता है। इन जनित्रों के द्वारा धन विद्युत् अथवा ऋण विद्युत् दोनों प्रकार के आवेश उत्पन्न हो सकते हैं। इस कारण इसके द्वारा न केवल धन आवेश वाले कण त्वरित किये जा सकते हैं, बल्कि इलेक्ट्रान (जिन पर ऋण आवेश रहता है) के भी वेगवान् दण्ड उत्पन्न हो सकते हैं। इलेक्ट्रानों को त्वरित करने में इस उपकरण का उपयोग बहुत स्थानों में हुआ है। उच्च ऊर्जाशील एक्स-विकिरण भी इसके द्वारा उत्पन्न किये गये जो उपचार तथा अन्य औद्योगिक कार्यों में अत्यंत लाभ-दायक सिद्ध हुए हैं।

साइक्लोट्रान

अमेरिका में केलिफोर्निया विश्वविद्यालय के भौतिक शास्त्री अर्नेस्ट लॉरेन्स ने १९२९ से कुछ प्रयोग प्रारम्भ किये जिनके फलस्वरूप साइक्लो-ट्रान का आविष्कार हुआ। इस आविष्कार के कारण लॉरेन्स को विश्व का प्रसिद्ध नोबेल पुरस्कार भी मिला।

काकक्राफ्ट और वान डी ग्राफ के उपकरणों में कणों को एक ही बार में सारी ऊर्जा दे दी जाती है। इसके विपरीत लॉरेन्स ने यह सोचा कि ऊर्जा को छोटी-छोटी मात्राओं में अनेक बार दिया जाय। आइए, यहाँ उसके इस सिद्धान्त को समझाने का प्रयत्न करें।



चित्र संख्या १३—लॉरेन्स का साइक्लोट्रान सिद्धान्त

यदि हम शृंखला में कुछ सिलिंडर ले जिन्हें इस प्रकार प्रत्यावर्ती धारा के स्रोत से जोड़ा जाय जैसा कि चित्र १३ में दिखाया गया है। तो इस प्रकार

1. Ernest Lawrence

2. Alternating current

दो पार्श्ववर्ती सिलिंडर विलोम ध्रुव के होंगे। फिर एक ओर से सिलिंडर में कणों का दण्ड प्रविष्ट करते समय ऐसा प्रबन्ध किया जाय कि क्षेत्र द्वारा उनको आगे बढ़ने के लिए ऊर्जा मिलती रहे। जिस समय कण सिलिंडर के अन्दर होंगे उस समय उन पर कोई क्षेत्र न होगा, प्रत्युत वे प्रवेश करने से पहले दी हुई ऊर्जा के वेग से ही चलेगे। ज्योंही वे एक सिलिंडर से निकल कर अगले सिलिंडर में प्रवेश करने वाले होंगे उसी समय उन्हें फिर धक्का देना चाहिए। इस प्रकार कणों को सिलिंडर के बीच के स्थान में ऊर्जा मिलेगी। प्रत्यावर्ती धारा इस प्रकार बदलेगी कि हर धक्के की दिशा आगे की ओर ही होगी। हर धक्के के पश्चात् कणों का वेग बढ़ेगा और वह अधिक चुतिमान होते जायेंगे। धारा की दिशा बदलने का समय समान होगा जिसके कारण धक्को की आवृत्ति समान होगी और प्रत्येक अन्त समय के बीच में वे कण अधिक दूरी तय करते रहेंगे। इस कारण प्रत्येक सिलिंडर की लम्बाई को शृंखला से बड़ी रखना आवश्यक होगा। हर सिलिंडर के पार करने का समय भी समान होगा। यदि प्रत्येक समय कण-दण्डों को बीस सहस्र वोल्ट (२०,००० वो०) की ऊर्जा दी जाय और इस प्रकार के १० सिलिंडर शृंखला में लगे हो तो अन्त में उन पर दो लाख वोल्ट (२,००,००० वो०) की ऊर्जा होगी।

इस प्रकार के उपकरण को सरल-त्वरक कहते हैं। लारेस ने ऐसे उपकरण से बारह लाख साठ हजार इलेक्ट्रान वोल्ट (१२,६०,००० वो०) की ऊर्जा वाले कण उत्पन्न किये थे। इस प्रयोग में सिलिंडर के आकार के इक्कीस (३१) विद्युदग्रों का उपयोग किया गया था और प्रत्येक दो विद्युदग्रों के बीच बयालीस सहस्र वोल्ट (४२,००० वो०) का विभव रखा गया। इस निरीक्षण में लारेस ने पारे के आयन का त्वरण किया। प्रत्यावर्ती वोल्टता रखने के हेतु लघु तरंग रेडियो जनित्र का उपयोग किया गया

1. Linear accelerator

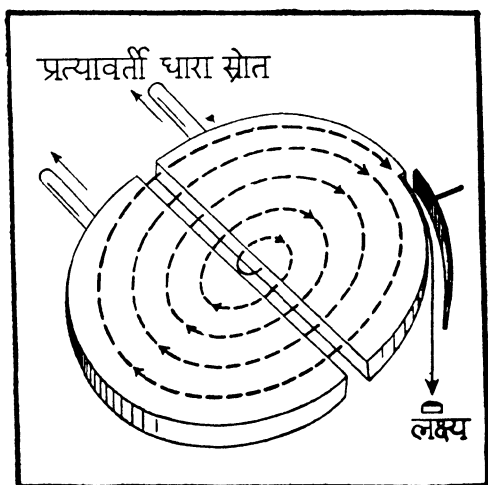
इससे वोल्टता बदलने की आवृत्ति दो करोड़ (२,००,००,०००) प्रति सेकेंड के लगभग थी। उस समय इस उपकरण की उपयोगिता सीमित थी क्योंकि अधिक त्वरण के लिए बहुत लम्बे सिलिंडर के आकार के विद्युदग्रों की आवश्यकता पड़ती और उपकरण बहुत जटिल तथा असाधारण-तया बड़ा हो जाता। कुछ समय के लिए इस प्रकार के त्वरको सम्बन्धी कार्य रुक गया। पिछले दस वर्षों से फिर ऐसे उपकरण बने हैं। इनका वर्णन हम आगे करेंगे।

लारेंस ने ऊपर बतायी कठिनाइयों का हल बड़ी सुन्दरता से निकाला और साइक्लोट्रान नामक उपकरण का आविष्कार किया। यह उपकरण उसी सिद्धान्त पर कार्य करता है जिस पर लारेस ने सरल त्वरक बनाया था। इसे हम सर्पिल त्वरक^१ कह सकते हैं। सरल त्वरक में अनेक धातु-नलियों का प्रयोग होता है। साइक्लोट्रान में केवल दो नलियों का प्रयोग होता है। इन नलियों की बनावट भी सरल त्वरक की नलियों से भिन्न रहती है। प्रत्येक नली (D) के स्वरूप की रहती है और बीच से खोखली रहती है। दोनों नलियों का मुख आमने सामने (DD) के समान रहता है। इसीलिए परमाणु शब्दावली में ऐसे विखण्डक यंत्रों को डीज़^२ कहा जाता है। चित्र १४ द्वारा इनका अनुमान ठीक प्रकार से हो सकेगा।

इन नलियों के अन्दर किसी प्रकार का विद्युत् क्षेत्र नहीं रहता। वह केवल दोनों विद्युदग्रों के बीच के स्थान में स्थित है जिससे कणों को वेग देने में उसका उपयोग हो सके।

लारेंस ने इन विद्युदग्रों के बीच दोलित विद्युत् क्षेत्र स्थापित किया जिससे दोनों विद्युदग्र ऋण तथा धन विद्युदग्र होते रहें। आवेश युक्त कण इन दोनों विद्युदग्रों के बीच चक्कर काटते हैं। एक विद्युदग्र से निकल कर दूसरे में प्रवेश करते समय उन्हें विद्युत् धारा द्वारा वेग अथवा धक्का

दिया जाता है। फिर क्षेत्र को इस प्रकार से प्रत्यावर्तित करते हैं कि धक्के की दिशा कण की दिशा के समान रहती है। इस प्रकार कण जितनी बार



चित्र संख्या १४—सर्पिल त्वरक की बनावट

एक विद्युदग्र से निकल कर दूसरे में प्रवेश करता है उसके वेग में कुछ योग हो जाता है। कण गोलाकार परिधि में चक्कर लगाते हैं। जिस समय कण अर्ध परिधि बनाकर एक विद्युदग्र से निकलते हैं उस समय विद्युदग्रों की ध्रुवीयता इस प्रकार की होती है कि उन कणों को आगे बढ़ने के लिए और वेग दिया जा सके। अब वह कण अधिक वेग से दूसरे खोखले विद्युदग्र के अन्दर प्रवेश करते हैं और अर्ध परिधि बनाकर दूसरी ओर से फिर निकल आते हैं। ज्योंही वह दूसरे विद्युदग्र से निकल कर पहले विद्युदग्र के अन्दर प्रवेश करते हैं त्योंही इन विद्युदग्रों की ध्रुवीयता उलट जाती है जिससे कणों को पहले विद्युदग्र में घुसते समय आगे बढ़ने के लिए धक्का दिया जा सके। इससे पाठक समझ गये होंगे कि विद्युदग्रों की ध्रुवीयता का परस्पर विनिमय

शीघ्रता से होता रहता है। इसका समय नियत रहता है और यह कार्य बहुत शीघ्रता के साथ नियमित रूप से होता है। वस्तुतः कणों का मार्ग सर्पिल गति से बढ़ता जाता है। चित्र को देखने से पाठको को यह विदित हो जायगा।

ज्यो-ज्यो कणों को वेग मिलता है वे अधिक गति से घूमते हैं। वेग द्वारा गति बढ़ने पर उनका परिधि-व्यास भी बढ़ जाता है। इस कारण वे कण क्रमशः बढ़ते हुए व्यास की परिधि में घूमते हैं। वे एक नियम का पालन करते हैं जिसके अनुसार उन्हें प्रत्येक विद्युदग्र के अन्दर अर्ध परिधि बनाने में समान समय लगता है, चाहे उसका व्यास कम हो या अधिक। प्रारम्भ में ये कण छोटी परिधि में घूमते हैं। धीरे-धीरे परिधि का व्यास बढ़ता जाता है, परन्तु घूर्णन काल समान रहता है। यद्यपि उनका मार्ग बढ़ जाता है, परन्तु समान समय लगने के कारण उनके वेग में वृद्धि हो जाती है। अन्त में ये वेगवान् कण एक विक्षेप पट्टिका द्वारा विक्षेपित होकर एक गवाक्ष द्वारा बाहर निकल जाते हैं। यह उपकरण, जो साइक्लोट्रॉन के नाम से प्रसिद्ध है तथा जिसमें कणों को अधिक वेगवान् बनाने के लिए बड़े-बड़े विद्युदग्रों का उपयोग किया गया, अत्यन्त उपयोगी सिद्ध हुआ। इसमें आवेशयुक्त कणों पर भिन्न-भिन्न मात्रा की ऊर्जा प्रयोजित होती है। उदाहरण के लिए एक उपकरण द्वारा उत्पन्न ड्यूटीरियम की अपेक्षा हाइड्रोजन के नाभिक अधिक वेगवान् होंगे क्योंकि हाइड्रोजन परमाणु से ड्यूटीरियम परमाणु का भार दुगुना होता है, यद्यपि दोनों के नाभिक में समान आवेश केन्द्रित रहता है। इसी संदर्भ में यह बताना भी आवश्यक है कि आवेश की मात्रा का कण के वेग पर प्रभाव पड़ता है। कम आवेशयुक्त कण शीघ्र वेगवान् हो जाते हैं। इसके विपरीत अधिक आवेशयुक्त कण देर में वेगवान् होते हैं। उनके लिए बड़े उपकरण की आवश्यकता होती है।

साइक्लोट्रॉन को साधारणतः एक गोलाकार टंकी के मध्य में रखा जाता है। बड़े उपकरणों में इस टंकी का भार इतना अधिक होता है कि उसे खोलने के लिए क्रेन की आवश्यकता पड़ती है। दोनों अर्धगोलाकार

विद्युदग्रों पर आवेश देने के लिए बहुत लम्बा तार लगता है। विद्युदग्रों पर दोलित विद्युत् क्षेत्र स्थापित करने का कार्य बड़ा जटिल है। इस परिवर्तन की आवृत्ति एक करोड़ (१,००,००,०००) प्रति सेकंड से अधिक होती है जो रेडियो विधि द्वारा ही सम्भव है। इतने परिवर्तन के लिए आवश्यक रेडियो तरंग का दैर्घ्य २५ मिनट के लगभग होगा। इस कारण वैज्ञानिकों को सतर्क रहना पड़ता है कि ये तरंगे प्रयोगशाला तक ही सीमित रहें अन्यथा रेडियो की ध्वनि में गड़बड़ी पैदा करेंगी।

त्वरित होने वाले कण दोनो विद्युदग्रो के मध्य मे उत्पन्न होते है। इन्हें हम आवेशयुक्त परमाणु भी कह सकते है।

जिस तत्त्व के कण उत्पन्न करने होते है उसके वाष्प का प्रवाह करने पर उसके कुछ परमाणु आवेशयुक्त कणो मे परिणत हो जाते है। इस परिवर्तन के लिए एक इलेक्ट्रान-दण्ड का उपयोग किया जाता है। यह इलेक्ट्रान-दण्ड एक गर्म तन्तु से निकलता है जो दोनो विद्युदग्रो के मध्य से नीचे की ओर स्थित रहता है। इलेक्ट्रान-दण्ड नीचे से उत्पन्न होकर ऊपर की दिशा मे वेग से जाता है। इस दण्ड को दोनो विद्युदग्रो के बीच सरलता से देख सकते है। ये इलेक्ट्रान उपयुक्त तत्त्व के परमाणुओं से टकरा कर इन्हें आवेशयुक्त बना देते है। इस टकराहट से परमाणु मे स्थित बाहरी इलेक्ट्रान निकल जाता है जिसके फलस्वरूप परमाणु आवेशयुक्त कण मे परिणत हो जाता है। उदाहरणार्थ यदि हाइड्रोजन परमाणुओं का उपयोग किया जाय तो टकराहट से परमाणु मे स्थित इलेक्ट्रान निकल जाने पर हाइड्रोजन परमाणु प्रोटान मे परिणत हो जायगा। इसी प्रकार की अवस्था ड्यूटीरियम की भी हो जायगी जिससे ड्यूट्रान की उत्पत्ति होगी।

साइक्लोट्रान मे उत्पन्न आवेशयुक्त कणो के दण्ड का ठीक प्रकार से संकेन्द्रित होना आवश्यक है नही तो कण इधर-उधर फैल कर अपनी ऊर्जा खो देगे। अन्त मे इस प्रकार से उत्पन्न ये दण्ड विद्युदग्रों के मध्य से निकल कर विखण्डन के प्रयोगों में उपयुक्त होते है। प्रभावशाली बनने के लिए इन दण्डों का छोटे लक्ष्य पर संकेन्द्रित होना आवश्यक है।

कणों को बड़ी मात्रा में ऊर्जा देने के निमित्त बड़े साइक्लोट्रानों का निर्माण अत्यन्त आवश्यक हो गया। बड़े यंत्रों में लक्ष्य को टंकी के बाहर स्थापित कर दिया गया। इसमें अनेक कठिनाइयाँ सामने आयी जिनमें विशेषकर अति निर्वात की समस्या थी। परन्तु वैज्ञानिकों ने अन्ततः उपयोगी यंत्रों का निर्माण किया जिनसे अनेक तत्त्वों का विखण्डन जो पहले किसी भी विधि से नहीं किया जा सकता था, संभव हो सका।

साइक्लोट्रान के सिद्धान्त को एक सरल उदाहरण द्वारा व्यक्त किया जा सकता है। एक गेद को धागे से बाँधा जाय। धागे के सिरे को हाथ से स्थिर रखकर गेद को धक्का दिया जाय। जिस समय गेद अर्ध गोलाकार परिधि पूरी कर ले उसे फिर एक धक्का दिया जाय। इस प्रकार उसकी परिधि की लम्बाई बढ़ती जायगी। अतः जिस समय गेद अत्यन्त वेग से घूम रही हो धागे को छोड़ देने पर वह उसी प्रकार वेग से छूट जायगा जैसे आवेशयुक्त कण वेग से विद्युदग्रों से निकल कर विखण्डन के लिए उपलब्ध होते हैं।

सिनक्रोट्रान

साइक्लोट्रान की उपयोगिता सीमित है। उसके द्वारा हम कणों को एक सीमा तक ऊर्जा दे सकते हैं, उससे अधिक नहीं। साइक्लोट्रान में कणों को एक चक्कर लगाने में समान समय लगता है चाहे उसकी परिधि छोटी हो अथवा बड़ी। परन्तु यह नियम समान भार वाले कणों पर ही लागू होता है। इस प्रकार समान भार वाले कण साइक्लोट्रान के डी के मध्य निरन्तर समान समय में बढ़ती हुई परिधि वाले चक्कर लगाते रहते हैं जिससे उसका वेग भी निरन्तर बढ़ता जाता है। सामान्यतः हम भार को एक नियत मात्रा समझते हैं। परन्तु यदि सूक्ष्मता से देखें तो यह सत्य न उतरेगा। आइंस्टाइन ने अपने सापेक्षवाद में यह बताया है कि किसी भी वस्तु का भार उसकी अवस्थानुसार बदल सकता है। ऊर्जा की मात्रा बढ़ने पर उसका भार भी बढ़ जाता है। आइंस्टाइन ने यह भी बताया कि प्रकाश के वेग से

किसी वस्तु का वेग अधिक नहीं हो सकता अर्थात् प्रकाश वेग की मात्रा को वेग की उच्चतर सीमा समझना चाहिए।

दैनिक जीवन में यह सिद्धान्त सत्य उतरता प्रतीत नहीं होता। आजकल तीव्र गति वाले विमान अथवा राकेट पृथ्वी, चन्द्रमा तथा सूर्य के चारों ओर परिक्रमा करने के लिये छोड़े जाते हैं। इनका वेग हमें बहुत अधिक ज्ञात होता है, परन्तु वस्तुतः इनका वेग प्रकाश के वेग का एक सूक्ष्म भाग ही है (लगभग एक लाखवे भाग से भी कम)। अतः इतने वेग के कारण किसी वस्तु के भार में बहुत न्यून अन्तर आयेगा। उदाहरणार्थ हम एक लाख किलोग्राम भार के राकेट को लें जो ४०,००० किलोमीटर प्रति घंटे के वेग से जा रहा हो। इस वेग के कारण उसके भार में लगभग आधे ग्राम की वृद्धि होगी जो अत्यल्प मात्रा है।

परन्तु त्वरको में कणों का वेग ऊपर बताये वेग से कहीं अधिक पहुँच जाता है। यदि यह वेग प्रकाश के वेग के निकट पहुँच जाय तो उसके भार में बड़ी मात्रा में वृद्धि होगी। यदि हम एक प्रोटॉन (हाइड्रोजन नाभिक) को चौरानवे करोड इलेक्ट्रॉन वोल्ट (९४,००,००,००० इवो०) की गतिज ऊर्जा प्रदान करें तो उसका भार स्थिर भार से दुगुना हो जायगा।

इस विवरण से पाठको को विदित हो जायगा कि एक सीमा से अधिक ऊर्जा प्राप्त करने के बाद कणों के भार में विशेष अन्तर आ जाता है। जब तक यह अन्तर न्यून रहता है उस समय तक साइक्लोट्रॉन का उपयोग सफलता से हो सकता है। परन्तु जब यह अन्तर पर्याप्त हो जाता है उस समय से कणों को साइक्लोट्रॉन द्वारा ऊर्जा नहीं दी जा सकती। इसका कारण यह है कि साइक्लोट्रॉन के विद्युद्ग्रों में समान आवृत्ति से ध्रुवीयता बदलती है। यह आवृत्ति उतनी रखी जाती है जितना समय कणों को अर्धपरिधि बनाने में लगता है। परन्तु एक सीमा के पश्चात् कणों का भार इतना बढ़ जाता है कि उस समय अर्ध परिधि बनाने का समय बदल जाता है। इस प्रकार विद्युद्ग्रों की ध्रुवीयता बदलने की आवृत्ति और कणों के अर्ध परिधि काल भिन्न-भिन्न हो जाते हैं और हम यह कह सकते हैं कि कण आवृत्ति के परे हैं।

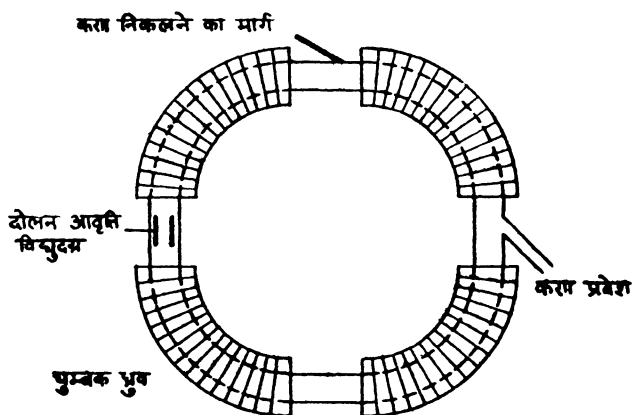
फलतः वे दोनों विद्युदग्रों के मध्य में ठीक समय पर नहीं पहुँच पाते। एक विद्युदग्र से निकल कर दूसरे विद्युदग्र में प्रवेश करने के समय उनको ठीक दिशा की ओर धक्का लगाना चाहिए। परन्तु ऐसी अवस्था में वह धक्का उलटी दिशा की ओर लगता है, अतः उनके वेग में वृद्धि नहीं होती, वरन् कमी आ जाती है। इन सब कारणों से वैज्ञानिक इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि प्रोटान को साइक्लोट्रान द्वारा दो करोड़ इलेक्ट्रान वोल्ट (२,००,००,००० इ० वो०) से अधिक ऊर्जा नहीं दी जा सकती।

इस समस्या को द्वितीय महायुद्ध के पश्चात् दो वैज्ञानिकों ने एक ही साथ हल किया। इनमें एक वैज्ञानिक केलीफोर्निया विश्वविद्यालय के एडवर्ड मैकमिलन थे तथा दूसरे सोवियत संघ के वेक्सलर। उनके अनुसन्धानों से एक दूसरे उपकरण 'सिन्क्रोसाइक्लोट्रान' अथवा आवृत्ति मूर्च्छक सिन्क्रोसाइक्लोट्रान का जन्म हुआ। कणों का भार बढ़ने के कारण उनको परिधि बनाने में अधिक समय लगता है। इस उपकरण में समयानुसार विद्युदग्रों के बीच प्रत्यावर्ती आवृत्ति के बदलने का प्रबन्ध था। यह नियन्त्रण एक समस्वरण-घुंड़ी द्वारा होता था। विभव और कण अनुनाद में रखे जाते थे जिससे कणों को सर्वदा समुचित ऊर्जा मिलती रहे।

संसार में सबसे बड़ा सिन्क्रोसाइक्लोट्रान केलीफोर्निया विश्वविद्यालय में है। इसमें पचहत्तर करोड़ इलेक्ट्रान वोल्ट (७५,००,००,००० इ० वो०) तक की ऊर्जा देने का प्रबन्ध है। इस उपकरण में प्रयुक्त चुम्बक का भार तीन सहस्र (३,०००) टन है और प्रत्येक ध्रुव का व्यास ४.५ मीटर है। इसी प्रकार और बड़े उपकरण बनाये जा सकते हैं। परन्तु इनका आकार तथा लागत इतनी अधिक बढ़ जायगी कि उन्हें बनाना असम्भव-सा हो जायगा। इस कारण एक दूसरे उपकरण का आविष्कार किया गया है जिसे

1. Synchrocyclotron
2. Frequency modulated synchrocyclotron

सिनक्रोट्रान कहते हैं। इसमें यंत्र में स्थिर परिधि के अन्दर घूमते हुए कणों को ऊर्जा दी जाती है। इस उपकरण के दो भाग होते हैं। प्रथम भाग में कणों को एक सरल त्वरक द्वारा ऊर्जा प्रदान की जाती है। यह त्वरक वाल्टन-काकक्राफ्ट या अन्य इसी प्रकार का उपकरण रहता है। जब कण इस त्वरक द्वारा वेगवान् हो जाते हैं तब उन्हें सिनक्रोट्रान में प्रविष्ट किया जाता है। यहाँ पर वे एक गोलाकार निर्वात की हुई नली में प्रवेश कर घूमते हैं, जैसा चित्र १५ में दिखाया गया है। इस नली के दोनों ओर इसी



चित्र संख्या १५—कण गोलाकार निर्वात नलीमें घूमते हैं

रूप के खोखले चुम्बक के दो ध्रुव रहते हैं जो कणों की दिशा ठीक रखते हैं और उन्हें इधर-उधर भटकने से रोकते हैं। इस समय इन पर दोलन-क्षेत्र के प्रभाव द्वारा उसी प्रकार ऊर्जा दी जाती है जैसे साइक्लोट्रान में दी जाती है। इस उपकरण में दोलन आवृत्ति और परिक्रमण अवधि को समान रखने का प्रबन्ध रहता है जिससे दोनों कला में रहें। धीरे-धीरे एक अवस्था आती है जब समान परिधि में कण स्थिर समय से परिक्रमा करते हैं। उनको अधिक ऊर्जा देने से इसमें अन्तर नहीं आता, वरन् कणों का भार बढ़ता जाता

है। यह अवस्था उस समय आती है जब उनका वेग प्रकाश वेग के निकट पहुँच जाता है।

सिनक्रोट्रान कई प्रकार के हो सकते हैं। इनमें से एक बलवान् सकेन्द्रक होता है जो थोड़ी संख्या के कणों को बड़े वेग से त्वरित करता है। ऐसे सिनक्रोट्रान, जिनमें कणों को क्रमशः तीस और अट्ठाईस अरब इलेक्ट्रान वोल्ट (२८,००,००,००,००० इ० वो०) की ऊर्जा देने का प्रबंध है, ब्रुक-हैवन राष्ट्रीय अनुसन्धानशाला में जुलाई, १९६० में और जेनीवा, स्विट्जरलैंड में फरवरी, १९६० में तैयार हो चुके हैं। लेनिनग्राद, सोवियत संघ में पचास अरब इ० वो० का सिनक्रोट्रान बनाया जा रहा है। ब्रुकहैवन त्वरक द्वारा कणों को लगभग प्रकाश-वेग तक त्वरित कर सकते हैं।

दूसरे प्रकार के सिनक्रोट्रान को दुर्बल सकेन्द्रक सिनक्रोट्रान कहते हैं। इसमें चुम्बकों के बीच में अधिक स्थान रहता है जिससे अधिक संख्या में कणों को वेगवान् बनाया जा सकता है। केलिफोर्निया विश्वविद्यालय की अनुसन्धानशाला का बीवाट्रान^१ इसी प्रकार का है। इसमें कणों को छः अरब इलेक्ट्रान वोल्ट (६,००,००,००,०००) से अधिक ऊर्जा प्रदान की जा सकती है। इसका व्यास लगभग चालीस मीटर है और वलयाकार चुम्बक के इस्पात का भार नौ सहस्र सात सौ टन (९,७०० टन) है।

इसी प्रकार का दूसरा उपकरण सोवियत संघ में दुबना नामक स्थान पर है। इसमें दस अरब इ०वो० (१०,००,००,००,००० इ०वो०) की ऊर्जा देने का प्रबंध है। इसके उपकरण का व्यास ६० मीटर है। इसके चुम्बक में लगे इस्पात का भार छत्तीस सहस्र टन (३६,०००) है। इसकी त्वरक नली में नब्बे लाख इलेक्ट्रान वोल्ट (९०,००,००० इ० वो०) ऊर्जा सहित कण प्रविष्ट किये जाते हैं। इस उपकरण में एक लाख चालीस सहस्र

किलोवाट (१,४०,०००) की विद्युत् ऊर्जा व्यय होती है। नली को निर्वात करने के लिए छप्पन निर्वात पम्पों का उपयोग होता है।

तीसरे प्रकार के सिनक्रोट्रान को 'शून्य-प्रवणता-सिनक्रोट्रान' कहते हैं। इसमें समस्त स्थानों का चुम्बक क्षेत्र समान रहता है। ऐसा एक उपकरण 'ओरेगान' राष्ट्रीय अनुसन्धानशाला, अमेरिका में बन रहा है। इसका व्यास ६० मीटर होगा। इसके चुम्बक में कम इस्पात का प्रयोग होगा (केवल चार सहस्र टन और साढ़े बारह अरब इलेक्ट्रान वोल्ट (१२,५०,००,००,००० इ० वो०) ऊर्जा का प्रबन्ध रहेगा।

सरल त्वरक

साइक्लोट्रान का वर्णन करते समय पाठको को बताया जा चुका है कि उसके आविष्कारक लारेस ने सरल त्वरक का सफलता से उपयोग किया था। कुछ कठिनाइयों के कारण उस समय (१९३४) इस उपकरण का कार्य स्थगित करना पड़ा था। द्वितीय महायुद्ध के समय रेडार का प्रथम बार उपयोग हुआ। इससे उच्च आकृति सांकेतिक शक्ति का उपयोग सम्भव हो सका जिससे सरल त्वरक की नलियों में अधिक ऊर्जा उत्पन्न हो सकी। केलीफोर्निया विश्वविद्यालय में ऐसा सरल त्वरक स्थापित किया गया है जिसमें लगभग बारह मीटर लम्बी ताम्र नली का उपयोग हुआ है। इस नली में ७ रेडार दोलकों का उपयोग हुआ है। वान डी ग्राफ जनित्र द्वारा चालीस लाख इलेक्ट्रान वोल्ट (४०,००,००० इ० वो०) ऊर्जा-प्राप्त प्रोटान नली के एक सिरे में प्रवेश किये जाते हैं। नली के एक सिरे से दूसरे तक छियालीस (४६) नलियाँ लगायी गयी हैं जिनसे प्रोटान कणों को ४६ बार ऊर्जा प्राप्त होती है। अन्त में तीन करोड़ बीस लाख इलेक्ट्रान वोल्ट (३,२०,००,००० इ० वो०) ऊर्जायुक्त प्रोटान प्राप्त होते हैं।

1. Zero-gradient synchrotron

सन् १९५२ में स्टैनफर्ड विश्वविद्यालय, अमेरिका में एक सरल त्वरक तैयार किया गया जो लगभग ६६ मीटर लम्बा है और जिसके द्वारा कणों को सत्तर करोड़ इलेक्ट्रान वोल्ट (७०,००,००,००० इ० वो०) ऊर्जा दी जा सकती है।

अब अमेरिका में एक और सरल त्वरक बनाने की तैयारी हो रही है जो संभवतः स्टैनफर्ड विश्वविद्यालय में बनेगा। इस त्वरक के कार्य हेतु दो समानांतर सुरंगें बनायी जायेगी। प्रत्येक सुरंग की लम्बाई ३.२ किलोमीटर होगी और ये सुरंगें १०.५ मीटर भूमि से दबी रहेंगी जिससे प्रयोगों द्वारा आसपास कोई हानि न पहुँच सके। इस उपकरण को बनाने में ६ वर्ष लगेंगे। संभवतः यह संसार का सबसे बड़ा वैज्ञानिक उपकरण होगा।

अध्याय ८

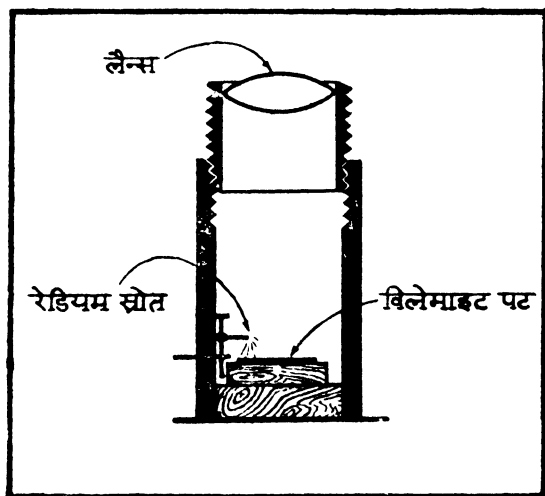
कण एवं विकिरण-सूचक यन्त्र

रेडियधर्मिता की खोज के पश्चात् वैज्ञानिकों ने रेडियधर्मी तत्त्वों द्वारा निकलने वाले विकिरणों का अध्ययन करना आरम्भ किया। पाठक पहले ही जान चुके हैं कि इन तत्त्वों से तीन प्रकार के विकिरण निकलते हैं—अल्फा, बीटा तथा गामा विकिरण। इनमें अल्फा तथा बीटा-विकिरण तो कणों के दण्डस्वरूप होते हैं और गामा-विकिरण तरंगस्वरूप। इनके अध्ययन के निमित्त अनेक उपकरण बनाये गये हैं। कृत्रिम रेडियधर्मिता, तत्त्वांतरण तथा अन्य परमाणु ऊर्जा सबधी प्रयोगों के अध्ययन में इन उपकरणों को और परिवर्तित किया गया और इस समय अनेक प्रकार के नवीन उपकरण प्रयोग में लाये जाते हैं। इनके द्वारा भौतिक विज्ञान में अनेक मूलभूत सिद्धान्तों की विवेचना सम्भव हो सकी है और अनेक नये कणों की खोज हुई है।

स्पिन्थेरिस्कोप—इंग्लैंड के वैज्ञानिक विलियम (William Crookes) क्रुक्स ने सर्वप्रथम अल्फाकणों को देखने तथा गिनने का एक उपकरण बनाया जिसका नाम स्पिन्थेरिस्कोप रखा गया। इसका अनुमान चित्र द्वारा हो जायेगा। इसमें एक धातु का बर्तन लिया गया जिसमें एक ओर एक सुई पर अत्यल्प मात्रा में रेडियम जमा किया गया। रेडियम का उपयोग अल्फा-कण के स्रोत के रूप में हुआ। रेडियम से निकले अल्फा-

1. Spinthariscopes

कण चारों ओर फैलते रहते हैं। इनमें से कुछ कण एक विलेमाइट पट पर भी पड़ते हैं, जिससे इनके द्वारा चमक पैदा होती है। इस पट को



चित्र संख्या १६—स्पिन्येरिस्कोप

संकेन्द्रित कर एक लेंस द्वारा, जो इसी कार्य के लिए बर्तन के ऊपर की ओर लगा है, देखा जा सकता है।

अँधेरा होने पर लेंस द्वारा पट को देखने पर एक आश्चर्यजनक दृश्य दिखाई देता है। प्रत्येक अल्फा-कण पट पर गिरकर चमक पैदा करता है। यह चमक अल्प समय के लिए रहती है। इस प्रकार पट पर सितारों-जैसी चमक पैदा होती है और अदृश्य हो जाती है। हर बार नयी चमक उत्पन्न होती रहती है इस दृश्य की हम ऐसे काल्पनिक आकाश मंडल से तुलना कर सकते हैं जिसमें हर क्षण नवीन नक्षत्र उत्पन्न होते और पुराने अदृश्य होते रहते हों। इस उपकरण से प्रत्येक अल्फा-कण द्वारा उत्पन्न

चमक अलग अलग देखी जा सकती है। अतः यह अल्फा-कणों को गिनने का अच्छा साधन सिद्ध हुआ है।

गाइगरमूलक-गणक^१

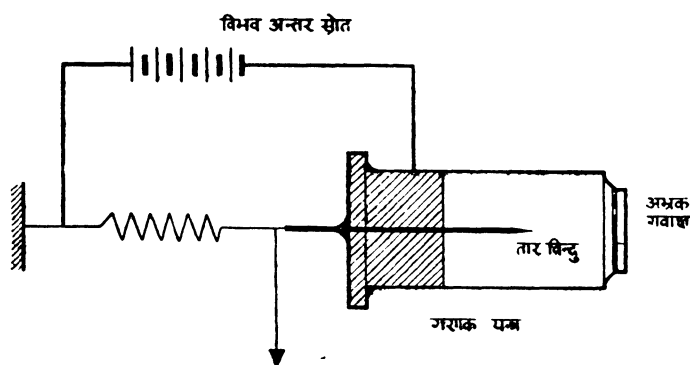
रेडियधर्मी तत्त्वों से निकले कणों एवं विकिरणों में यह गुण होता है कि वे यात्रा करते समय वायु का आयनीकरण करते हैं। अल्फा-कणों द्वारा बड़ी मात्रा में आयनीकरण होता है क्योंकि वे भारी कण हैं और उन पर आवेश की मात्रा भी अधिक होती है। बीटा-कण कम आयनीकरण उत्पन्न करते हैं, क्योंकि वे बहुत हलके कण हैं। गामा-विकिरण और भी कम आयनीकरण उत्पन्न करते हैं। जिस मार्ग से ये कण जाते हैं उसमें आयन-युग्म बनते हैं। प्रत्येक आयन-युग्म को एक धन तथा ऋण आयन की जोड़ी समझना चाहिए। गाइगर-मुलर गणक में आयन-युग्म का उपयोग किया जाता है।

यदि उत्पन्न आयन-युग्म को विद्युत् क्षेत्र में रखा जाय तो इन युग्मों से धन आवेशयुक्त कण तो ऋण विद्युदग्र की ओर चलेगे और ऋणावेशयुक्त कण धन विद्युदग्र की ओर अग्रसर होंगे। आवेशयुक्त कणों के चलायमान होने से विद्युत्-धारा उत्पन्न हो जायगी।

इस प्रकार अल्फा-कण या अन्य कोई भी आवेशयुक्त कण आयनीकरण के गुण द्वारा विद्युत्-धारा उत्पन्न किया करते हैं। वास्तव में यह विद्युत्-धारा अत्यन्त ही न्यून स्तर में उत्पन्न होती है। इतनी न्यून स्तर की धारा का मापना अत्यन्त कठिन कार्य है। इसको मापने के लिए विशेष प्रकार के उपकरण बनाये गये हैं जिसमें इलेक्ट्रानिक वाल्वों का उपयोग होता है और इस न्यून धारा का प्रवर्द्धन किया जाता है।

गाइगर ने आवेशयुक्त कणों को पहचानने के लिए सर्वप्रथम इस

विद्युत्-धारा का उपयोग किया। उसके उपकरण से केवल एक अल्फा-कण तक की पहचान हो सकती थी। उसने विशेष प्रकार के आयनीकरण कोष्ठकों का आविष्कार किया। इन कोष्ठकों में वायु या किसी विशेष गैस को कम दाब पर रखा जाता है और उन पर विद्युद्ग्रों द्वारा विद्युत् क्षेत्र उत्पन्न किया जाता है। यदि इस कोष्ठक में अल्फा-कण प्रवेश करेगा तो उसके द्वारा आयन-युग्म उत्पन्न होंगे। आयन-युग्म विद्युत्-क्षेत्र के प्रभाव से विद्युद्ग्रों की ओर जायेंगे और इस गति द्वारा गतिज ऊर्जा प्राप्त करेंगे। ये आयन अपने मार्ग में अन्य परमाणुओं से टक्कर खाकर नये आयन युग्म उत्पन्न करेंगे। इस प्रकार हर आयन युग्म द्वारा नये आयनों की सृष्टि होगी और अत्यन्त सूक्ष्म काल में इतने अधिक आयन उत्पन्न होंगे कि उनसे उत्पन्न विद्युत्-धारा की मात्रा बढ़ जायगी और वह सरलता से यंत्रों द्वारा मापी जा सकेगी।



चित्र संख्या १७—गाइगर गणक प्रकोष्ठ

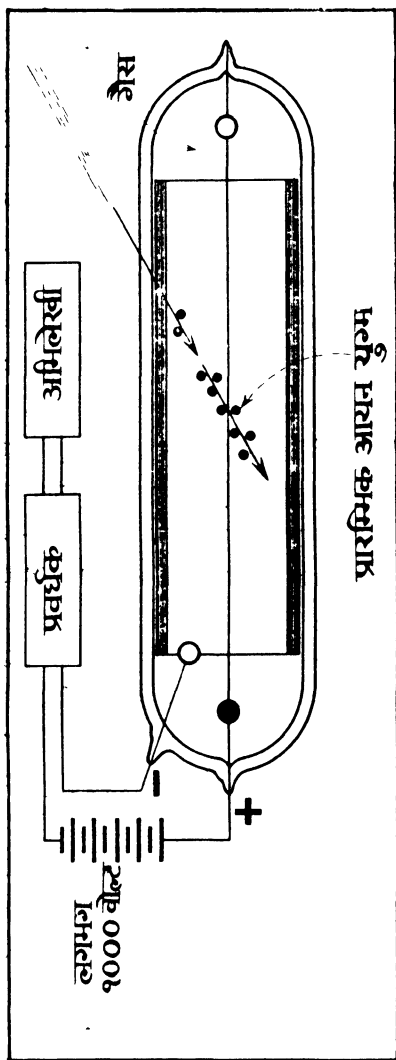
यह प्रकोष्ठ गाइगर गणक के नाम से प्रसिद्ध हुआ। इस का परिचय चित्र १७ से हो जायेगा। इसमें २ सेन्टीमीटर व्यासवाला और लगभग ३ सेन्टीमीटर लम्बा बेलन रहता है। इस बेलन में न्यून दाब की गैस भरी

रहती है। इसके बीच से एक बिन्दुवाला तार लगा रहता है जो बेलन की दीवार से पृथक्कृत रहता है। बेलन के एक ओर अभ्रक का एक पतला गवाक्ष लगा रहता है जिसे अल्फा-कण सरलता से पार कर सकते हैं। इस तार के बिन्दु और बेलन की दीवार के बीच कई सहस्र वोल्ट का विभव-अन्तर रहता है। विद्युत्-धारा के परिपथ में एक उच्च प्रतिरोधक रखा जाता है। इस अवस्था में केवल एक अल्फा-कण के प्रवेश से ही बड़ी मात्रा में विद्युत्-धारा उत्पन्न हो जाती है। प्रतिरोधक के कारण यह धारा अल्पायु रहती है अथवा हम यह कह सकते हैं कि एक अल्फा-कण द्वारा एक अल्पावधि स्पन्द की उत्पत्ति होती है। यह स्पन्द (पल्स) अल्पायु होने के साथ ही अत्यन्त वेगवान् भी होता है जिससे यत्र द्वारा इसे सरलतापूर्वक अंकित किया जा सकता है।

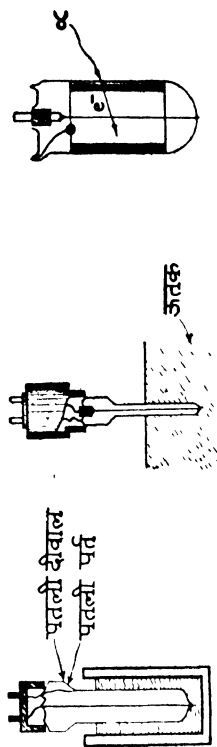
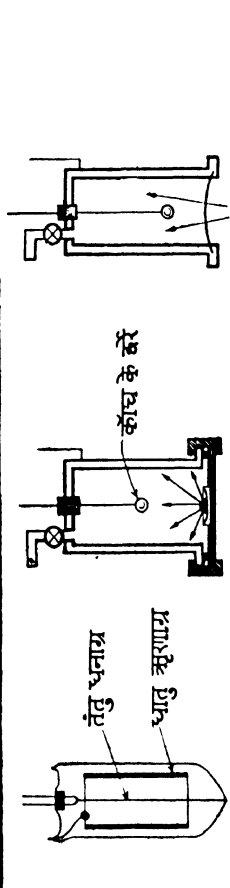
धीरे-धीरे इस गणक में कई परिवर्द्धन हुए जिनमें वैज्ञानिक मुलर का प्रमुख हाथ रहा। उनके द्वारा हुए परिवर्द्धनों से उसकी सवेदनशीलता कई गुनी बढ़ गयी। आजकल इस उपकरण को गाइगर-मुलर गणक के नाम से पुकारते हैं। इसके द्वारा बीटा-कण और गामा-विकिरण की भी पहचान हो सकती है।

गणक द्वारा उत्पन्न विद्युत्-धारा को इलेक्ट्रानिक वाल्व द्वारा प्रवर्द्धित किया जाता है। इसमें उत्पन्न स्पन्दन को गिनने का भी प्रबन्ध रहता है। कुछ उपकरणों में प्रत्येक स्पन्दन के उत्पन्न होने पर विशेष प्रकार की ध्वनि होने लगती है। आधुनिक यंत्रों में अधिकतर एक पट्टिका रहती है जिसके पीछे टेलीविजन नलिका लगी रहती है। इस नलिका द्वारा उत्पन्न इलेक्ट्रान दण्ड पट्टिका पर प्रतिबिम्ब बनाते हैं। गणक में आयनीकरण होने पर इस दण्ड में हलचल पैदा होती है और इस दण्ड का मार्ग ऊपर-नीचे की ओर जाता है। इस प्रकार आवेशयुक्त कण अथवा विकिरण का प्रवेश बड़ी सुगमता से अंकित हो जाता है।

रेडिय-धर्मिता के आधुनिक प्रयोगों में ऐसे उपकरणों का निर्माण आवश्यक हो गया है जिनके द्वारा बड़ी मात्रा में कणों को गिना जा सके।



चित्र संख्या १८—गाइगर-मुलर गणक यन्त्र



चित्र संख्या १९—गाइगर-मुलर गणक यन्त्र के विभेद

इन यंत्रों में विशेष प्रकार के परिपथ बने होते हैं जिनके द्वारा बीस सहस्र कण प्रति मिनट से अधिक की गणना हो जाती है।

गाइगर-मुलर गणक वर्तमान परमाणु अनुसन्धानशाला का आवश्यक अंग हो गया है। परमाणु-विक्षणन-प्रयोगों में इसकी उपयोगिता अत्यधिक बढ़ गयी है।

चमक गणक यंत्र

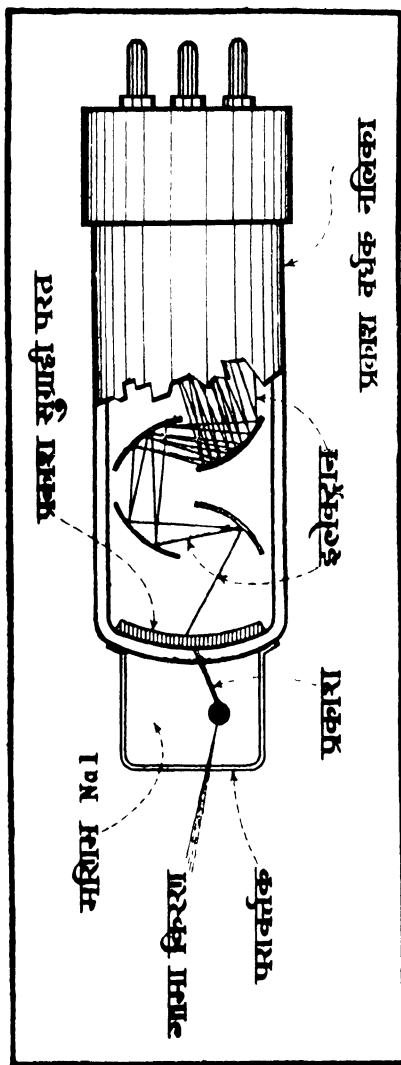
यह मुख्यतः गामा विकिरण—सूचक यंत्र है। इसमें मणिभ पर गामा विकिरण के प्रभाव द्वारा प्रकाश का उत्पादन होता है जो प्रकाश सुग्राही परत द्वारा इलेक्ट्रान को मुक्त करता है।

ये इलेक्ट्रान विशेष प्रणाली द्वारा गुणित होकर विकिरण की उपस्थिति की सूचना देते हैं।

विल्सन का अभ्र-कोष्ठक

स्काटलैंड के वैज्ञानिक सी० टी० आर० विल्सन ने एक अत्यन्त उपयोगी उपकरण बनाया जो क्लाउड चेम्बर अथवा अभ्र-कोष्ठक के नाम से प्रसिद्ध हुआ। नाभिकीय अनुसंधानों में इससे अधिक उपयोगी उपकरण ढूँढ़ना असम्भव होगा। गाइगर गणक द्वारा हम कण को सुन सकते हैं। परन्तु अभ्र-कोष्ठक की सहायता से हम उसे प्रत्यक्ष देख सकते हैं। अतः इस यंत्र द्वारा परमाणु-विक्षणन-अनुसन्धानों में वैज्ञानिकों को कण की उपस्थिति का प्रत्यक्ष प्रमाण मिलता रहता है।

वाष्प के प्रयोगों में विल्सन की अधिक रुचि थी। उसने बहुत-से प्रयोग किये जिनके द्वारा वाष्पों के सघनन होने की अवस्था पर प्रकाश पड़ा। उसने अपने अनुसंधानों से पता लगाया कि धूल के कणों की उपस्थिति



चित्र संख्या २०—वैद्युत गणक यंत्र

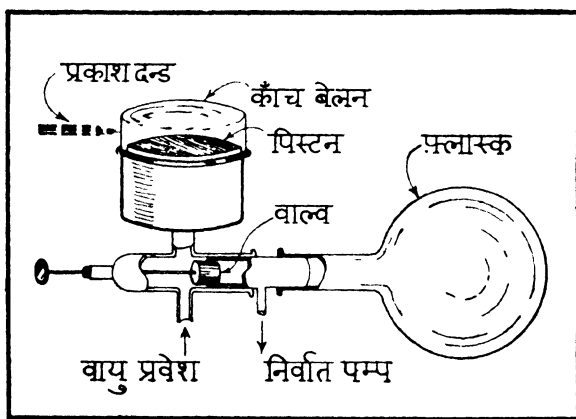
में अतिसंतृप्त वाष्प संघनित होता है। विल्सन के प्रयोगों का काल उन्नीसवीं शताब्दी का अंतिम चरण था। उसी समय जर्मनी के एक वैज्ञानिक ने रंटगन-किरण अथवा एक्स-किरण की खोज की थी। उसी समय रेडिय-धर्मिता का पता चला था। यूरेनियम अथवा थोरियम के अयस्कों से निकले रेडियधर्मी विकिरणों पर अनुसंधानों का प्रारम्भ भी तब हो चुका था।

विल्सन ने अपने अनुसन्धानों द्वारा पता लगाया कि एक्स-विकिरण और रेडियधर्मी विकिरण में भी वाष्प को संघनित करने का गुण वर्तमान था। यदि अल्फा-कणों के दण्ड को अभ्र-कोष्ठक में प्रविष्ट कराया जाय तो वे कण अपने मार्ग में आयन उत्पन्न करेंगे। उनके मार्ग में उत्पन्न आयनों की संख्या बहुत अधिक रहती है। उचित दशा में ये आयन वाष्प को संघनित कर सकते हैं क्योंकि प्रत्येक आयन वाष्प के कणों को संग्रह करने का नाभिक बन जाता है। इस प्रकार जिस मार्ग से एक अल्फा कण जायगा उसमें वाष्प के कण संघनित हो जायेंगे। इस मार्ग का चित्र फोटोग्राफी के कैमरे द्वारा लिया जा सकता है और हम किसी भी कण के मार्ग का पता सम्यक् रीति से लगा सकते हैं।

विल्सन ने इन प्रयोगों के निमित्त अनेक अभ्र-कोष्ठक बनाये। लगभग १९१२ में उसने एक नये कोष्ठक का आविष्कार किया जो आज भी प्रायः उतना ही उपयोगी है।

इसमें एक बेलनाकार काँच का कोष्ठक रहता है जिसका व्यास लगभग एक फुट होता है। इस कोष्ठक का आयतन घटाया-बढ़ाया जा सकता है। इस बेलन में नीचे की ओर एक पिस्टन लगा रहता है जिसके ऊपर-नीचे आने से आयतन घटता-बढ़ता रहता है। बेलन के अन्दर वाष्प भरा जाता है। एकाएक वाष्प का आयतन बढ़ाने से उसका ताप कम हो जाता है। यह आवश्यक है कि आयतन एकाएक बढ़ाया जाय, अन्यथा बेलन फिर गर्म हो जायगा और प्रयोग ठीक-ठीक न हो सकेंगे। विल्सन ने आयतन में एकाएक वृद्धि लाने का ऐसा नया ढंग निकाला जिसमें

पिस्टन के नीचे का स्थान निर्वात कर दिया जाता है। अतः बेलन शीघ्र ही नीचे आ जाता है और आयतन एकाएक बढ़ जाता है।



चित्र संख्या २१—विल्सन का नया अभ्र कोष्ठक।

बेलन के भीतर वाष्प का आयतन बढ़ने पर उसका ताप घटता है। ताप घटने पर वाष्प सरलता से अभ्र में परिवर्तित हो जाता है। इस वाष्प को परिवर्तित होने के लिए नाभिको की आवश्यकता होती है। ठीक इसी समय यदि अल्फा या अन्य आवेशयुक्त कण कोष्ठक में प्रवेश करे तो उनके मार्ग का चित्र बन जायगा। उसके मार्ग को दृश्य बनाने के लिए कोष्ठक को पारद चाप दीप द्वारा प्रकाशित करते हैं। कोष्ठक का पेदा काला कर दिया जाता है जिससे काली पृष्ठभूमि पर अभ्र-मार्ग सरलता से दिखाई पड़े। कोष्ठक के ऊपर कैमरा लगा रहता है जिससे समयानुसार चित्र लिये जा सके।

अभ्र-कोष्ठक के कार्य में यह आवश्यक है कि ठीक उसी समय चित्र लिया जाय जिस समय अभ्र-मार्ग पर कण एकत्रित हो क्योंकि यह मार्ग बहुत अल्पकाल के लिए बनता है और शीघ्र ही मिट जाता है। कोष्ठक

का ठंडा रहना भी बहुत आवश्यक है। उसका ताप घटकर शीघ्र बढ़ भी जाता है। लगभग एक सेकेंड के पचासवे भाग ($\frac{1}{20}$ से०) के लिए ही उसका ताप नीचे जाता है। इसलिए यह अत्यन्त आवश्यक है कि इतनी अवधि में ही आवेशयुक्त कण कोष्ठक में प्रवेश करे तथा उनका चित्र भी ले लिया जाय। प्रयोग करते तथा चित्र लेते समय इसकी बड़ी आवश्यकता है कि आसपास से कोई कण या विकिरण कोष्ठक में प्रवेश न करे, अन्यथा चित्र के बिगड़ जाने की सम्भावना रहती है।

विल्सन ने इन सारी कठिनाइयों को दूर करने के उपाय निकाले। यह उसके लिए प्रशंसा की बात थी। उसके इन प्रयत्नों के कारण ही अभ्र-कोष्ठक परमाणु संबंधी अनुसंधान का आवश्यक अंग बन गया है। आजकल कोष्ठक के चित्र लेने के लिए दो कैमरों का एक साथ प्रयोग किया जाता है। दो चित्रों द्वारा कण के मार्ग का सही अनुमान हो जाता है और उन्हें मिलाकर देखने से चित्र उभरे हुए भी दिखाई देते हैं।

परमाणु-विखण्डन के लगभग सारे प्रयोगों का निरीक्षण अभ्र-कोष्ठक द्वारा हुआ है। परमाणु नाभिक क्रियाओं की खोज भी इसी उपकरण द्वारा संभव हुई है। रदरफोर्ड के समय से लेकर आजतक भी विल्सन का अभ्र-कोष्ठक परमाणु-विज्ञान का एक उपयोगी उपकरण बना हुआ है। परमाणु-विखण्डन के प्रयोगों का विवेचन उसी के द्वारा सम्भव हो सका है।

फोटोग्राफी द्वारा कण की सूचना

बहुत पहले से ही वैज्ञानिकों को ज्ञात था कि अनेक विकिरण मनुष्य की आँख के लिए अदृश्य होने पर भी फोटोग्राफी के प्लेट को प्रभावित करते हैं। इन्हीं प्लेटों द्वारा एक्स और गामा-विकिरणों की खोज हुई।

फोटोग्राफी की प्लेट पर प्रकाश-संवेदनशील इमल्शन होता है। इस इमल्शन में सिलवर ब्रोमाइड प्रधानतः रहता है। यह यौगिक श्लिषीकरण द्वारा प्लेट अथवा फिल्म पर जमाया जाता है। यदि इस प्लेट अथवा फिल्म पर प्रकाश या विकिरण प्रभाव न डालें तो सिलवर ब्रोमाइड यौगिक

अप्रभावित रहता है। और इसको डेवेलपर में डालने से भी प्लेट पर कोई छाया नहीं बनती और वह प्लेट साफ पारदर्शी दिखाई देती है। इसका कारण यह है कि यौगिक में सिल्वर और ब्रोमीन के परमाणु इलेक्ट्रान द्वारा एक दूसरे से जुड़े रहते हैं। यह यौगिक डेवेलपर विलयन में घुल जाता है और प्लेट अथवा फिल्म पारदर्शी रह जाता है।

इसके विपरीत फोटोग्राफी प्लेट पर प्रकाश का प्रभाव पड़ने के कारण सिल्वर और ब्रोमीन के मध्य के इलेक्ट्रान निकल जाते हैं। ये इलेक्ट्रान सिल्वर और ब्रोमीन को संयुक्त कर यौगिक बनाते हैं। प्रकाश के द्वारा इलेक्ट्रान निकल जाने पर सिल्वर परमाणु स्वतंत्र हो जाते हैं। डेवेलपर में डालने पर यही सिल्वर परमाणु प्लेट पर काला चित्र बनाते हैं। इसी प्रकार गामा-विकिरण या आवेशयुक्त कण भी सिल्वर ब्रोमाइड के मध्य स्थित इलेक्ट्रान निकाल कर सिल्वर परमाणु स्वतंत्र करते हैं।

१९१० के लगभग खोजों द्वारा ज्ञात हो गया था कि अल्फा-कण फोटोग्राफी प्लेट पर अपने गुप्त प्रतिबिम्ब बना देते हैं। जिस मार्ग द्वारा कोई अल्फा कण यात्रा करता है उस मार्ग का चित्र प्लेटपर खिच जाता है। इस मार्ग को अणुवीक्षणयंत्र द्वारा सरलता से देखा जा सकता है। यदि अल्फा-कण स्रोत फोटोग्राफी प्लेट पर रखा जाय तो उससे निकले अल्फा-कणों के चित्र प्लेट पर खिच जाते हैं।

साधारण प्लेट पर सिल्वर ब्रोमाइड की पतली तह जमायी जाती है। अल्फा-कणों की परिधि इस तह से अधिक हो सकती है। ऐसी अवस्था में अल्फा कण का सम्पूर्ण मार्ग प्लेट पर नहीं दिखाई देगा। इस कठिनाई को दूर करने के लिए विशेष प्रकार की प्लेटें बनायी गयी हैं जिनपर सवेदनशील पदार्थ की मोटी तह रहती है। इस प्रकार की प्लेटें अन्तरित किरणों के चित्र उतारने में बड़ी उपयोगी सिद्ध हुई है। इन मोटी तह वाली प्लेटों द्वारा कणों का सम्पूर्ण मार्ग चित्रित हो सकता है। इन चित्रों को उतारने की दूसरी विधि भी उपयोगी हुई है। इस विधि में मोटी तह वाली प्लेट का प्रयोग नहीं होता, वरन् पतली सतह पर सिल्वर ब्रोमाइड की तह जमायी

जाती है जो कणों को आर-पार जाने से नहीं रोकती। इस प्रकार की दस या अधिक सतहों को एक दूसरे पर रख कर मोटी तह तैयार की जाती है। ये दोनों ही विधियाँ परमाणु अनुसंधानों में प्रयुक्त होती हैं।

फोटोग्राफी द्वारा कणों को अंकित करने की विधि सरल तथा बहुत उपयोगी सिद्ध हुई है। एक चित्र में अनेक कणों के चित्र उतारे जा सकते हैं। इस प्रकार एक प्लेट सैकड़ों अभ्र कोष्ठक चित्रों का स्थान ले सकती है। अब ऐसी परिष्कृत विधियाँ प्रयुक्त होती हैं जिनसे कणों की ऊर्जा, आयनीकरण-क्षमता और उनके वेग ज्ञात किये जा सकते हैं। इन्हीं प्रयोगों द्वारा कणों का भार भी ज्ञात किया गया है। यद्यपि यह आवश्यक है कि इन प्रयोगों की पुष्टि अन्य प्रयोगों (अभ्र कोष्ठक आदि) द्वारा की जाय।

बुद्बुद कोष्ठक

यह एक अत्यन्त नवीन उपकरण है। इसका आविष्कार भौतिकशास्त्री डी० ग्लेजर^१ ने किया। मूलभूत कणों के अनुसंधानों के लिए बुद्बुद कोष्ठक अत्यन्त उपयोगी सिद्ध हुआ है। इस उपकरण में एक कोष्ठक रहता है जिसमें तरल हाइड्रोजन भरा रहता है। यह हाइड्रोजन दो प्रकार से उपयोगी होता है। प्रथम तो यह प्रोटान स्रोत का कार्य करता है और दूसरे कणों की पहचान में सहायक होता है। अधिकांश प्रयोगों में प्रोटान दण्ड को बुद्बुद कोष्ठक में प्रविष्ट कराया जाता है। दण्ड के प्रोटान तरल हाइड्रोजन में स्थित प्रोटानों से टकराते हैं। इस क्रिया द्वारा उत्पन्न आवेशयुक्त कण तरल हाइड्रोजन का आयनीकरण करते हैं। इस आयनीकरण से हाइड्रोजन का ताप बढ़ता जाता है और स्थानीय वाष्पीकरण से उस कण के मार्ग में नन्हें बुद्बुद उत्पन्न होते हैं। यदि क्रिया द्वारा उत्पन्न कण आवेशरहित हों तो वे या तो अन्य क्रिया द्वारा आवेशयुक्त कणों में परिणत हो जाते हैं अन्यथा

आवेशयुक्त कण उत्पन्न करते हैं। दोनों ही रूप में कण द्वारा तै किये मार्ग में बुद्बुदों का पथ बन जाता है। हाइड्रोजन-ग्राहक कोष्ठक पर प्रकाश डालकर बुद्बुदों द्वारा बने मार्गों का चित्र लिया जाता है। कणों के आवेश का स्वभाव तथा मात्रा ज्ञात करने के लिए विशेष प्रकार के चुम्बक के दोनों ध्रुवों के बीच में कोष्ठक को रखते हैं। इस चुम्बक क्षेत्र के प्रभाव से कणों का मार्ग विचलित हो जाता है। इस विचलन की दिशा से उनके आवेशों की जाँच हो जाती है। इन अनुसंधानों से कणों के भार तथा वेग भी मालूम किये गये हैं।

केलीफोर्निया विश्वविद्यालय की विकिरण प्रयोगशाला में ३८ से० मी० व्यास का बुद्बुद कोष्ठक बनाया गया है। यह मूलभूत कणों के अनुसंधानों में अत्यंत उपयोगी सिद्ध हुआ है। इस उपकरण के द्वारा ही १५५९ में मूलभूत कण 'जाइ-सून्य' की खोज सम्भव हो सकी है। इसी विश्वविद्यालय में अभी एक दूसरा १०८ मीटर व्यास का बुद्बुद कोष्ठक बनाया गया है। नये बुद्बुद कोष्ठक से प्रति लैम्डा^१ कण की खोज भी की गयी है जिसकी घोषणा अमेरिकीय वैज्ञानिकों ने १९५९ में उच्च ऊर्जा भौतिकी की अंतर्राष्ट्रीय कान्फ्रेन्स में की थी। यह कान्फ्रेन्स सोवियटसंघ के कीव नगर में हुई थी।

अध्याय ९

कृत्रिम रेडियधर्मिता

बीसवी शताब्दी के प्रारम्भ में रदरफोर्ड ने तत्त्वांतरण के प्रयोग किये जिनसे यह सिद्ध हो गया कि तत्त्वों के नाभिक का विखण्डन वेगवान कणों द्वारा सम्भव है। इसके अतिरिक्त वैज्ञानिकों को ज्ञात था कि कुछ भारी तत्त्वों के नाभिक, रेडियधर्मी क्रियाओं द्वारा विखण्डित होते रहते हैं। इन क्रियाओं को किसी भौतिक या रासायनिक विधि से रोका या बदला नहीं जा सकता। ये ही क्रियाएँ एक गति विशेष से, जिसके नियमों का अध्ययन हो चुका है, हुआ करती है।

रेडियधर्मिता और कृत्रिम तत्त्वांतरण दोनों ही परमाणु नाभिक की क्रियाएँ हैं। दोनों में नाभिक का विखण्डन होकर नये नाभिक की उत्पत्ति होती है। परन्तु दोनों क्रियाओं में बहुत बड़ा अन्तर प्रतीत होता है। रेडियधर्मी क्रिया स्वतः होती है और अनवरत रूप से चलती रहती है। इसके विपरीत कृत्रिम तत्त्वांतरण क्रिया वेगयुक्त कणों की टकराहट से होती है। जितने समय तक वेगयुक्त कण-दण्ड निकलता रहता है, तत्त्वांतरण चलता रहता है। जिस समय यह दण्ड रोक दिया जाता है, तत्त्वांतरण क्रिया भी बन्द हो जाती है। तत्त्वांतरण सम्बन्धी प्रयोग केवल हलके तत्त्वों (परमाणु संख्या से कम) पर ही हो सकते थे। जबकि रेडियधर्मिता केवल भारी तत्त्वों में ही जिनकी परमाणु संख्या ८० से अधिक थी देखी गयी थी।

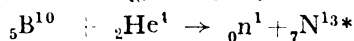
ऐसा प्रतीत होता था कि इन क्रियाओं का समन्वय कभी सम्भव न हो सकेगा और इन हलके तथा भारी तत्त्वों के बीच के तत्त्व इन क्रियाओं से परे ही रहेंगे।

ऐसे समय में, १९३३ में, दो आश्चर्यजनक कणों की खोज हुई जिनसे सारी विचार धारा पलट गयी। इनमें से एक तो न्यूट्रान की खोज की घटना थी जिसका वर्णन तत्त्वांतरण के सम्बन्ध में किया जा चुका है, और दूसरी थी पाजिट्रान कण का अन्वेषण। इस कण को हम धन इलेक्ट्रान भी कह सकते हैं। दोनों कणों का वर्णन हम मूलभूत कणों के साथ कर चुके हैं। पाजिट्रान की सर्वप्रथम खोज अन्तरिक्ष विकिरण सम्बन्धी प्रयोगों के समय हुई थी। उसके पश्चात् पाजिट्रान कृत्रिम तत्त्वांतरण प्रयोगों में भी देखे गये।

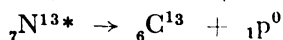
इसी वर्ष फ्रांस के वैज्ञानिक जोलिये एव उनकी पत्नी इरीन क्यूरी (मैडम क्यूरी की पुत्री) ने अपने अनुसंधानों द्वारा दिखाया कि कृत्रिम तत्त्वांतरण प्रयोगों द्वारा ऐसे तत्त्वों का निर्माण हो सकता है जो स्वतः रेडियधर्मी थे। इन तत्त्वों को कृत्रिम रेडियधर्मी तत्त्व भी कहा जाता है। यह खोज इन वैज्ञानिकों ने बोरान तथा एल्युमिनियम पर अल्फा-कण से आक्रमण द्वारा की थी। इन प्रयोगों को निम्न सूत्रों द्वारा प्रदर्शित किया जा सकता है—

(अ) बोरान पर अल्फा-कण की क्रिया

‘बोरान’^० हीलियम^४ → न्यूट्रान^० + नाइट्रोजन^३ (रेडियधर्मी)

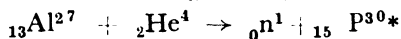


नाइट्रोजन^३ (रेडियधर्मी) → कार्बन^३ + पाजिट्रान^०

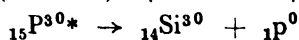


(आ) एल्युमिनियम पर अल्फा कण की क्रिया

एल्युमिनियम^० हीलियम^४ → न्यूट्रान^० + फासफोरस^३ (रेडियधर्मी)



फासफोरस^३ (रेडियधर्मी) → सिलिकन^३ + पाजिट्रान^०



इन दोनों क्रियाओं के समीकरण में संकेतों के ऊपर दाहिनी ओर परमाणु-भार और नीचे बायी ओर परमाणु-संख्या दी गयी है। दोनों क्रियाएं दो समीकरणों में विभाजित की गयी है।

उदाहरण के लिए हम पहली क्रिया को लें। इसमें बोरान परमाणु पर अल्फा-कण का आक्रमण किया गया है। इस आक्रमण द्वारा होने वाली क्रिया दो भागों में विभाजित है। पहले बोरान पर हीलियम नाभिक की टकराहट से नाइट्रोजन नाभिक बनता है और एक न्यूट्रान स्वतंत्र हो जाता है। इस नवजात नाइट्रोजन के नाभिक का परमाणु-भार १३ है और परमाणु-संख्या ७ है। यदि हम परमाणु-सारणी पर दृष्टि डालें तो हमें इस भार का स्थिर नाइट्रोजन समस्थानिक न मिलेगा ? यह नाइट्रोजन नाभिक अस्थिर है।

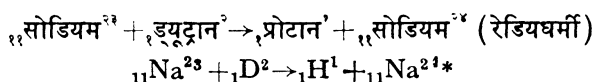
यह अस्थिर नाइट्रोजन परमाणु रेडियधर्मी है और स्वतः तत्त्वांतरण क्रिया द्वारा कार्बन में परिणत हो जाता है। इस क्रिया में एक पाजिट्रान स्वतंत्र हो जाता है। यह क्रिया दूसरे समीकरण के द्वारा दिखायी गयी है। पाजिट्रान का भार न्यून रहता है और उसपर धन आवेश १ मात्रा में स्थित रहता है। इस कारण इस कण के स्वतंत्र होने पर रेडियधर्मी नाइट्रोजन परमाणु संख्या १ मात्रा में कम हो जाती है जबकि उसका भार उतना ही रहता है। इस क्रिया द्वारा उत्पन्न कार्बन परमाणु का भार १२ है। यह कार्बन-१२ का समस्थानिक है।

दूसरी क्रिया में एल्यूमिनियम नाभिक पर अल्फा-कण का आक्रमण किया गया है। इस प्रतिक्रिया से कृत्रिम रेडियधर्मी फासफोरस उत्पन्न होता है जो स्वतः सिलिकन में परिणत हो जाता है।

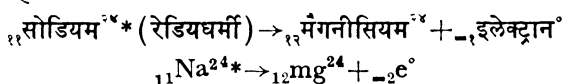
पाठको को याद होगा कि रेडियधर्मी तत्त्व स्वतः तत्त्वांतरित होते रहते हैं। इनकी विघटन-गति एक नियम द्वारा संचालित है। जितने काल में किसी तत्त्व के आधे परमाणु विघटित होते हैं उसे उस तत्त्व की अर्धजीवन अवधि कहते हैं। हर रेडियधर्मी तत्त्व की अर्धजीवन अवधि नियत रहती है और इसके द्वारा उस तत्त्व को पहचाना जा सकता है।

इसी प्रकार प्रत्येक कृत्रिम रेडियधर्मी तत्त्व की अर्धजीवन अवधि नियत रहती है। रेडियधर्मिता सम्बन्धी सब नियम कृत्रिम रेडियधर्मिता पर भी लागू होते हैं। इस क्रिया को किसी रासायनिक अथवा भौतिक प्रतिक्रिया द्वारा रोका अथवा बदला नहीं जा सकता।

जोलिये-क्यूरी की खोज के पश्चात् अन्य कृत्रिम रेडियधर्मी तत्त्वों की खोज की गयी। इन्हें बनाने के अनेक उपाय किये गये और इस कार्य में अनेक कणों का उपयोग किया गया तथा अनेक तत्त्वों के रेडियधर्मी समस्थानिक बनाये गये। इनमें सोडियम-२४ बड़ा उपयोगी सिद्ध हुआ है। इस समस्थानिक को पहले पहल सोडियम नाभिक पर ड्यूट्रान आक्रमण द्वारा बनाया गया था।



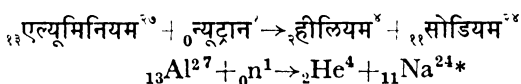
सोडियम-२४ रेडियधर्मी है। इसकी अर्धजीवन अवधि १५ घंटे है। इसके विघटन से मैंगनीशियम -२४ उत्पन्न होता है और एक इलेक्ट्रान स्वतंत्र होता है।



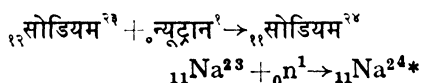
रेडियधर्मी तत्त्व कई विधियों से बनाया जा सकता है।

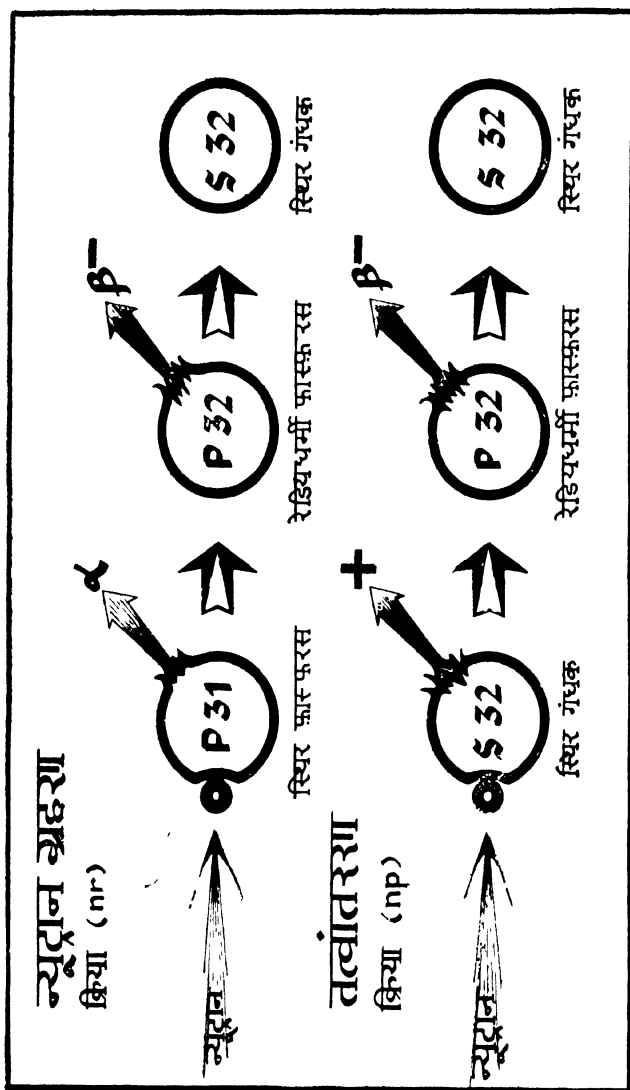
उदाहरणार्थ, सोडियम-२४ निम्नलिखित विधियों से बनाया जा सकता है।

१-एल्यूमिनियम पर न्यूट्रान के आक्रमण द्वारा



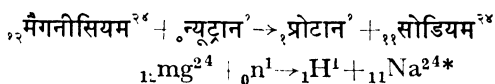
२-सोडियम पर न्यूट्रान की प्रतिक्रिया द्वारा





चित्र संख्या २२—रेडिय समस्थानिकों का निर्माण

३-मैगनीशियम पर न्यूट्रान के आक्रमण से



इन सारी क्रियाओं से उत्पन्न सोडियम-२४ के गुण समान होते हैं तथा उसके परमाणु एक ही विधि से विघटित होते हैं।

कृत्रिम रेडियधर्मिता में न्यूट्रान की उपयोगिता

अल्फाकण, प्रोटान और ड्यूट्रान हलके तत्त्वों के रेडियधर्मी समस्थानिक बनाने में उपयोगी हुए हैं। परन्तु वे माध्यमिक तथा भारी तत्त्वों के लिए उपयुक्त नहीं हैं। प्रसिद्ध वैज्ञानिक फर्मी ने यह विचार किया कि इन तत्त्वों के साथ न्यूट्रान बहुत उपयोगी हो सकता है। फर्मी तथा उसके साथियों के प्रयोगों से स्पष्ट हो गया कि आवर्त-सारणी के लगभग सभी तत्त्वों के रेडियधर्मी समस्थानिक बन सकते हैं। न्यूट्रान आवेशरहित कण है। इस कारण उसे किसी परमाणु के नाभिक के बहुत निकट पहुँचने में कठिनाई नहीं होती और वह सरलता से क्रिया कर सकता है। विकर्षण के न रहने के कारण भारी तत्त्वों के रेडियधर्मी समस्थानिकों का बनाना सरल हो गया है। वैज्ञानिकों ने इन रेडियधर्मी तत्त्वों के बनने की पुष्टि रासायनिक विधियों द्वारा भी कर ली है जो अत्यन्त महत्वपूर्ण कार्य है क्योंकि ये बहुत न्यून मात्रा में उत्पन्न होते हैं और इतनी कम मात्रा द्वारा रासायनिक प्रतिक्रियाएँ करना बड़ा कठिन कार्य था।

फर्मी के कुछ प्रयोगों से पता चला कि बहुत कम ऊर्जा वाले न्यूट्रान बड़े उपयोगी होते हैं। इन्हें हम मन्द न्यूट्रान कह सकते हैं। उसने न्यूट्रानों को उत्पन्न किया, तत्पश्चात् ऐसे माध्यम से प्रवाहित किया जिसमें वह अन्य कणों से टकरा कर मन्द पड़ जाये। साधारण अवस्था में प्रोटान और न्यूट्रान की टकराहट से कोई नया समस्थानिक नहीं बनता। इस कारण ऐसा माध्यम जिसमें प्रोटान की मात्रा बहुत अधिक हो न्यूट्रान को मन्द करने में

उपयुक्त हो सकता है। यदि इसमें न्यूट्रानों का प्रवाह किया जाय तो वे प्रोटान से टकरायेंगे। इस टकराहट से नाभिक क्रिया की संभावना बहुत कम है, भले ही न्यूट्रान अपनी गति-ऊर्जा खोकर मन्द हो जाते हैं।

मन्द न्यूट्रान किसी परमाणु के नाभिक के बहुत पास तक पहुँच जाते हैं और उनके कुछ समय तक वहाँ रहने की सम्भावना रहती है। कम गतिज ऊर्जा के कारण उनकी नाभिक से टकराहट मृदु होती है। इस टकराहट से नाभिक द्वारा कोई दूसरा कण मुक्त नहीं हो पाता। वरन् इसकी संभावना रहती है कि नाभिक मन्द न्यूट्रान को अपने अन्दर अवशोषित कर ले। न्यूट्रान के भार की मात्रा १ और आवेश की मात्रा शून्य है। इस कारण अवशोषण द्वारा उस परमाणु के नाभिक के भार में १ की वृद्धि हो जाती है, परन्तु उसका आवेश समान रहता है। आवेश की मात्रा बदलने के कारण तत्त्व नहीं बदलता, केवल उसका समस्थानिक बन जाता है जिसका भार प्रारम्भिक तत्त्व के परमाणु से १ इकाई अधिक होता है।

यह आवश्यक नहीं है कि नया समस्थानिक रेडियधर्मी हो, परन्तु अधिकांश तत्त्वों से बने समस्थानिक कृत्रिम रेडियधर्मी परमाणु होते हैं। बोरान, इट्रियम, इरीडियम ऐसे तत्त्वों में से है जो मन्द न्यूट्रान के अवशोषण पर रेडियधर्मी समस्थानिक नहीं बनाते। कुछ उपयोगी कृत्रिम रेडियधर्मी समस्थानिकों की सूची नीचे दी जा रही है।

कृत्रिम रेडियधर्मी समस्थानिक

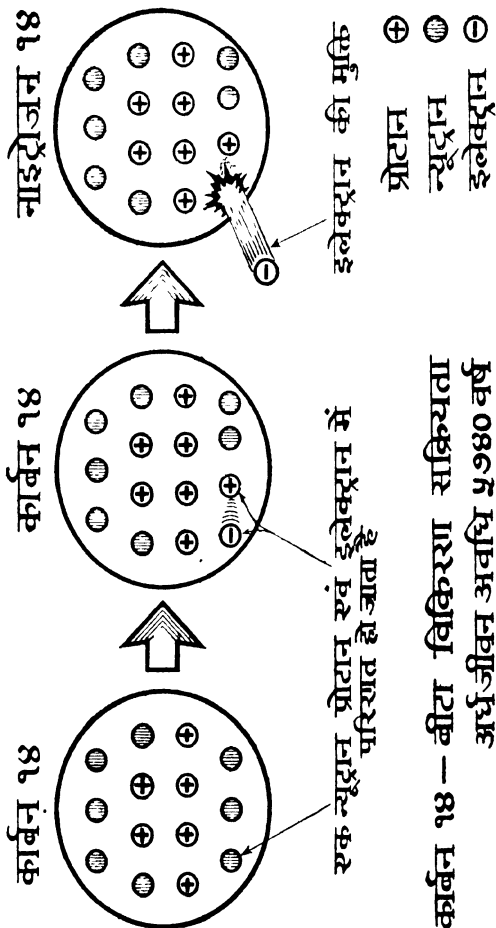
नाम	परमाणुभार	अर्धजीवन अवधि	विकिरण ऊर्जा (लाख इ० वो० मे)
		इलेक्ट्रान	गामा-विकिरण
आर्सेनिक	७६	२६.८ घ०	४,१४,२५.६, ३१.२ ५.७, १२. ५ १८, २१
आर्सेनिक	७७	४० घं०	७
कार्बन	१४	५,७४० वर्ष	१.५५

कृत्रिम रेडियधर्मी समस्थानिक

नाम	परमाणुभार	अर्धजीवन अवधि	विकिरण उर्जा (लाख इ० वो० में)	
		इलेक्ट्रान	गामा-विकिरण	
सोडियम	२४	१५. ० घ०	१३.८०, २७.५८	
फ़ास्फ़ोरस	३२	१४. ३ दिन	१७.१८	
सल्फर (गंधक)	३५	८७.१ दिन	१.६७	
केल्सियम	४५	१५२ दिन	२.५५	
लौह	५५	२.९१ वर्ष	K बंधन अथवा ग्रहण	
"	५९	४६.३ दिन	३.६, ४.६	११, १३
कोबल्ट	५६	८० दिन	१५.० (पाजिट्रान)	८.५, १३, २६, ३३
"	६०	५.२६ दिन	३.१	११.७, १३.३
सिल्वर (रजत)	११०	२७० दिन	०.८७, ५.३	८.८५, ९.३५, १.३९ १५.१६
"	१११	७.५ दिन	१०.६	
गोल्ड (स्वर्ण)	१९८	२.६९ दिन	९.८	४.११
"	१९९	३.३ दिन	३.२	२.४

यूरेनियम-खण्डन की खोज के पश्चात् न्यूट्रान द्वारा कृत्रिम रेडियधर्मी तत्त्व बनाना बहुत सरल हो गया है। परमाणु-प्रतिकारी मन्द न्यूट्रान की एक सुगम और बृहत् मात्रा का स्रोत है। इसके द्वारा आजकल रेडियधर्मी तत्त्व बनाये जाते हैं। अब इस प्रतिकारी द्वारा बहुत-से ऐसे तत्त्व बनाना सम्भव हो गया है जो प्रकृति में नहीं पाये जाते थे। इसके अतिरिक्त यूरेनियम से भारी तत्त्व भी जिन्हे पारयूरेनियम तत्त्व कहते हैं इसी भट्टी द्वारा बनाये गये हैं। इनका विवरण यूरेनियम-खण्डन के पश्चात् दिया जायगा।

कार्बन-१४ की रेडियधर्मिता



कार्बन १४ — बीटा विकिरण सक्रियता
अर्ध-जीवन अवधि ५७४० वर्ष

चित्र संख्या २३ — कार्बन-१४ को रेडिय धर्मिता

अध्याय १०

यूरेनियम-खण्डन

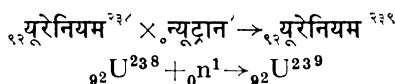
यूरेनियम-खण्डन मनुष्य की अभूतपूर्व उपलब्धि कही जा सकती है । इसकी खोज की कथा बड़ी विचित्र और रोमाचकारी है । विज्ञान की खोजों में प्रायः ऐसा हुआ है कि कोई वैज्ञानिक लगा तो रहा किसी अन्य खोज में और उसे मिली कोई दूसरी वस्तु । यूरेनियम-खण्डन के सम्बन्ध में भी कुछ ऐसा ही हुआ ।

१९३९ से पूर्व वैज्ञानिकों का यह विचार था कि निकट भविष्यमें परमाणु ऊर्जा का उपयोग न हो सकेगा । परमाणु अनुसंधान केवल कुछ वैज्ञानिकों का ही प्रिय विषय समझा जाता था । यह आशा न थी कि शीघ्र ही इसका आश्चर्यजनक उपयोग होगा ।

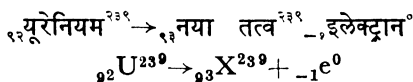
१९३९ में यूरेनियम-खण्डन की खोज के साथ ही परमाणु-ऊर्जा के उपयोग की सम्भाव्यता एकाएक सामने आ गयी । पाठकों को यह जानना आवश्यक है कि केवल खण्डन से परमाणु-ऊर्जा का उपयोग सम्भव न था यद्यपि खण्डन क्रिया में ऊर्जा उदय होती है । परन्तु सबसे अनोखी बात यह थी कि खण्डन क्रिया न्यूट्रान द्वारा प्रेरित होती है और साथ में न्यूट्रानों को स्वतंत्र भी करती है । इस प्रकार जो क्रिया प्रारम्भ की गयी वह अपने अभिकर्मकों द्वारा एक शृंखला में चल सकती है क्योंकि मुक्त न्यूट्रान नवीन क्रिया प्रारम्भ कर सकते हैं । इसकी तुलना हम कोयले या लकड़ी की आग से कर सकते हैं जो एक बार प्रारम्भ होने पर स्वयं जलती रहती है जबतक कि सारा ईंधन न समाप्त हो जाये ।

यूरेनियम-खण्डन की खोज पारयूरेनियम तत्त्वों के बनाने के प्रयत्न द्वारा

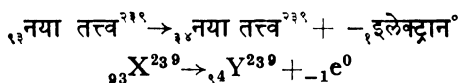
हुई। प्रसिद्ध भौतिक शास्त्री फर्मी इस ओर कार्य कर रहे थे। १९३४ में उन्होंने अपने परिणाम प्रकाशित किये। आवर्त-सरिणी में सबसे भारी तत्त्व यूरेनियम माना जाता था। प्रकृति में पाये जाने वाले तत्त्वों में इसका परमाणु-भार सबसे अधिक है। फर्मी ने यूरेनियम पर मन्द न्यूट्रानों का आक्रमण किया। उनका लक्ष्य यूरेनियम से भारी तत्त्व बनाना था। उन्होंने यह देखा कि इस क्रिया द्वारा चार प्रकार की ऊर्जा वाले बीटा-विकिरण अथवा इलेक्ट्रान उत्पन्न होते थे। इनमें एक बीटा-विकिरण यूरेनियम के उस समस्थानिक का हो सकता था जो न्यूट्रान आक्रमण द्वारा बना हो—



यह समस्थानिक प्राकृतिक अवस्था में नहीं पाया जाता है और सम्भवतः बीटा उत्सर्जन क्रिया द्वारा तत्वांतरित हो जायगा। इस तत्त्वांतरण द्वारा नये तत्त्व का परमाणु भार २३९ होगा, परन्तु परमाणु संख्या ९३ हो जायगी।



संभवतः नया तत्त्व (९३) भी बीटा-विकिरण उत्सर्जित कर दूसरा नया तत्त्व (परमाणु संख्या ९४) बनावे—



फर्मी का विचार था कि इसी प्रकार और ऊंची परमाणु संख्या के तत्त्व भी बनते हों। इन तत्त्वों को पारयूरेनियम तत्त्व के नाम से पुकारा गया।

कुछ वैज्ञानिकों ने इस विवेचन पर सन्देह किया। उनका कहना था कि यह दावा करने से पहले रासायनिक क्रिया द्वारा इसकी पुष्टि होनी चाहिए।

इसी समय जर्मनी के प्रसिद्ध वैज्ञानिक आटो हान' और उसके सहयोगी स्ट्रासमान् एवं माइटरने ने इन अनुसंधानों को दुहराया। इसी समय पेरिस में जोलिये-क्यूरी ने भी इन अनुसंधानों को दोहराया। उन्होंने रासायनिक क्रिया द्वारा न्यूट्रान आक्रमण से उत्पन्न नये तत्त्वों को पृथक् करने का प्रयत्न किया। यह कार्य बड़ा कठिन था। यूरेनियम पर मन्द न्यूट्रान प्रतिक्रिया से उत्पन्न तत्त्व बड़ी सूक्ष्म मात्रा में रहते हैं। उन्हें साधारण रासायनिक रीति से पृथक् करना असम्भव था। इस कार्य को सफल बनाने के लिए आटो-हान ने विशेष क्रिया का प्रयोग किया। इस क्रिया को संकेतक पद्धति^१ कहते हैं। इसके द्वारा अत्यन्त सूक्ष्म मात्रा का रेडियधर्मी तत्त्व दूसरे तत्त्व के साथ पृथक् किया जाता है। जो तत्त्व रेडियधर्मी तत्त्व को पृथक् करने में उपयुक्त होता है उसे वाहक तत्त्व^२ कहते हैं। इसके द्वारा यूरेनियम-न्यूट्रान प्रतिक्रिया का सही विवेचन किया गया।

हान के अनुसंधानों द्वारा यह ज्ञात हुआ कि इस क्रिया में १० से अधिक पृथक् ऊर्जा वाले विकिरण निकलते थे। हान ने रासायनिक क्रिया द्वारा अभिकर्मकों को तीन भागों में विभक्त किया।

उनके द्वारा तीन प्रकार की प्रतिक्रियाओं द्वारा पारयूरेनियम तत्त्व^४ बन रहे थे। ये तीनों क्रियाएं न्यूट्रान आक्रमण से आरम्भ होती थीं। परन्तु इस विवेचना में यह अचम्भे की बात थी कि यूरेनियम से आगे बनी श्रृंखला में दो या तीन सोपान के बाद स्थिर तत्त्व पाये जायें। यूरेनियम स्वतः अस्थिर तत्त्व है। उससे भारी किसी अन्य तत्त्व का स्थिर होना कठिन प्रतीत होता था।

इसी प्रकार पेरिस में जोलिये-क्यूरी के अनुसंधानों द्वारा ज्ञात हुआ कि इस क्रिया में कुछ और नये विकिरण भी निकलते हैं जिनको पहले हान

1. Otto Hahn

2. Tracer technique

3. Carrier elements

4. Transuranium elements.

पहचान न पाया था। इन अनुसंधानों को हान ने भी दोहराया और उसने उन्हें सही पाया। उन्होंने देखा कि रासायनिक क्रियाओं द्वारा पृथक् होने पर कुछ ऐसे रेडियधर्मी तत्त्व भी पाये गये जो लेंथेनम और उसके पास के तत्वों के गुण वाले थे। लेंथेनम एक हलका तत्त्व है। इसकी परमाणु-संख्या ५७ है। आवर्त-सारणी में यह यूरेनियम से बहुत दूर है। इस कारण लेंथेनम के गुण वाला तत्त्व मिलना बहुत अचम्भे की बात थी। साथ ही साथ बेरियम के गुण वाला तत्त्व भी प्राप्त हुआ। बेरियम की परमाणु-संख्या ५६ है। यह तत्त्व आवर्त-सारणी में लेथेनम से एक स्थान पहले स्थित है।

इन परिणामों को प्रकाशित करते हुए हान एवं स्ट्रासमान् ने लिखा—

“रसायनज्ञ होने के नाते हमें यह निश्चित रूप से कहना पड़ रहा है “यूरेनियम द्वारा न्यूट्रान ग्रहण किये जाने के कारण बने नये पदार्थ रेडियम से भिन्न, परन्तु बेरियम के समान गुणयुक्त होते हैं।” उस समय की विचार-धारा में यह निरीक्षण किसी प्रकार भी ठीक न जँचता था। यूरेनियम पर प्रतिक्रिया करने से बेरियम-जैसा हलका तत्त्व बने, यह कैसे माना जा सकता था। परन्तु हान का निरीक्षण अचूक था। उस पर सन्देह नहीं हो सकता था। इस प्रकार समस्त वैज्ञानिक बड़े अचम्भे में पड़ गये।

लिजें माइनटर ने इस समस्या का सही हल निकाला। माइटर पहले हान की प्रयोगशाला में काम करती थी, परन्तु हिटलर के अत्याचारों से तंग आकर उसे जर्मनी छोड़ना पड़ा। जर्मनी से भाग कर उसने तब डेनमार्क में नियल बोर की अनुसंधानशाला में कार्य करना प्रारम्भ किया था। हान एवं स्ट्रासमान् का प्रकाशन देखने के पश्चात् उसने इंग्लैण्ड की प्रसिद्ध वैज्ञानिक अनुसंधान पत्रिका “नेचर” में छपने के लिए एक शोध पत्र भेजा। यह शोध पत्र उसके तथा एक अन्य वैज्ञानिक फ्रिश’ के नामों से लिखा गया था।

इस पत्र में हान एवं स्ट्रासमान के निरीक्षण का विवेचन दिया गया था। माइटनर-फ़िश ने सर्वप्रथम यह कहने का साहम किया कि न्यूट्रान प्रतिक्रिया से यूरेनियम परमाणु दो भागों में खण्डित हो जाता है। खण्डन' शब्द का सर्वप्रथम प्रयोग इन्ही वैज्ञानिकों ने किया था। खण्डन क्रिया से उत्पन्न ये दोनो भाग प्रायः समान आकार के होते हैं। यूरेनियम परमाणु का नाभिक स्वतः ही अस्थिर है। इसी कारण वह रेडियधर्मी है। एक न्यूट्रान और जुड़ जाने से उसकी अस्थिरता इतनी बढ़ जाती है कि उसका खण्डन हो जाता है। इसकी उपमा हम जल की बूंद से दे सकते हैं। जल की बूंद जब एक सीमा से बढ़ती है तो उसे सँभालना कठिन हो जाता है और स्थिर होने के लिए वह दो बराबर भागों में बँट जाती है।

उन्होंने लिखा कि हान एवं स्ट्रासमान द्वारा प्राप्त लेथेनम और बेरियम के रेडियधर्मी समस्थानिक यूरेनियम-खण्डन द्वारा उत्पन्न खण्ड थे।

उसी काल में फ़िश ने दूसरा शोध-पत्र प्रकाशित किया जिसमें खण्डन क्रिया की अपने प्रयोगों द्वारा पुष्टि की। उसने आयनीकरण का दोलन-लेखी द्वारा अध्ययन किया था। अल्फा-कण आयनीकरण कोष्ठक में आयन उत्पन्न करते हैं। उनके द्वारा उत्पन्न आयनीकरण दोलन-लेखी द्वारा देखा जा सकता था, जिसमें इसकी मात्रा की माप हो जाती थी। फ़िश ने यूरेनियम तथा मन्द न्यूट्रान की प्रतिक्रिया का अध्ययन दोलनलेखी द्वारा ही किया था।

यूरेनियम के खण्डन द्वारा बड़ी मात्रा में ऊर्जा का उदय होना चाहिए, क्योंकि इस क्रिया द्वारा कुछ समाना ऊर्जा में परिणत होगी। यह रूपान्तरण आइंस्टाइन के नियम द्वारा होगा। इसलिए यदि यूरेनियम खण्डित हो रहा है तो दोलन-लेखी में बड़ा शृंग दिखाई देना चाहिए क्योंकि अधिक ऊर्जा से बड़ी मात्रा में आयनीकरण होगा। हम यह ऊपर बता चुके हैं कि

1. Fission

दोलन-लेखी में अल्फा-कणों द्वारा किया गया आयनीकरण देखा जा सकता है। अल्फा-कण द्वारा बने शृंगों से यूरेनियम-खण्डन के शृंग कही अधिक बड़े होंगे क्योंकि उनमें बड़ा शक्तिशाली आयनीकरण होगा।

फ्रिश ने अपने दोलन-लेखी में कुछ बहुत उच्च शृंग देखे जो कि केवल यूरेनियम खण्डन द्वारा ही उत्पन्न हो सकते थे। इस प्रकार फ्रिश के अनुसन्धान से हान एवं स्ट्रासमान के प्रयोगों की पुष्टि हुई। इन अनुसन्धानों के प्रकाशन से सारे वैज्ञानिक जगत में चेतनता आयी। ससार की विभिन्न अनुसन्धानशालाओं में इन प्रयोगों को दोहराया गया और सब स्थानों पर इनकी पुष्टि हुई। अमेरिका के कोलम्बिया विश्वविद्यालय, जान हाफकिन विश्वविद्यालय, कारनेगी इंस्टीट्यूट और केलीफोर्निया विश्वविद्यालयों में इन प्रयोगों को सफलतापूर्वक दोहराया गया। पेरिस में फ्रेड्रिक-जोलिये-क्यूरी ने खण्डित यूरेनियम के खण्डों को पहचाना। डेनमार्क में माइटनर एवं फ्रिश ने खण्डों को रासायनिक विधि द्वारा एकत्र किया। विभिन्न अनुसन्धानशालाओं में यूरेनियम खण्डन क्रिया से उत्पन्न खण्डों की सम्यक् रीति से जाँच हुई। इन प्रयोगों से ज्ञात हुआ कि इस क्रिया में लेंथेनम और बेरियम के अतिरिक्त कुछ अन्य तत्वों के रेडियधर्मी समस्थानिक पाये जाते हैं जिनमें ब्रोमीन, क्रिप्टान, स्ट्रांशियम, मोलीब्डेनम, रूबीडियम, एण्टीमनी, टेल्यूरियम, आयोडीन, जेनन और सीज़ियम उल्लेखनीय हैं। आश्चर्यजनक बात यह हुई कि यह सारे कार्य हान के अनुसन्धानों के प्रकाशन के तीन महीने बाद की अवधि में ही हुए। यूरेनियम खण्डन की नूतन धारणा शीघ्र ही सब जगह स्वीकार्य हुई।

यह उल्लेखनीय है कि आँटो हान के अनुसन्धानों के पाँच वर्ष पूर्व यूरेनियम-खण्डन की सम्भाव्यता पर एक दूसरी जर्मन वैज्ञानिका श्रीमती नोडक ने विचार किया था। परन्तु तब उस पर लोगों ने ध्यान नहीं दिया था। इडा नोडक^१ ने एक शोध पत्र में फर्मि के प्रयोगों पर विचार प्रकट किये

थे। उस समय फर्मी की धारणा थी कि यूरेनियम पर न्यूट्रान के आक्रमण से पारयूरेनियम तत्त्व बनते हैं। नोडक ने इसकी आलोचना की। उन्होंने कहा कि यह सम्भावना ध्यान देने योग्य है कि न्यूट्रान-यूरेनियम प्रतिक्रिया द्वारा खण्डित होकर यूरेनियम परमाणु छोटे भार वाले परमाणुओं को जन्म देता हो। ये परमाणु कुछ हलके तत्वों के समस्थानिक हों और यूरेनियम के निकट भारवाले परमाणु न हों। आश्चर्य तो यह है कि उस समय इतने मूलभूत विचारों का वैज्ञानिक जगत ने तिरस्कार कर दिया।

खण्डन-क्रिया के प्रकार

अभी हमने पाठकों के समक्ष मन्द न्यूट्रान द्वारा यूरेनियम खण्डन-क्रिया का वर्णन किया है। सर्वप्रथम इसी क्रिया की खोज हुई, परन्तु शीघ्र ही अनुसन्धानों से ज्ञात हुआ कि दूसरे भारी तत्वों के नाभिक भी खण्डित किये जा सकते हैं तथा न्यूट्रान के अतिरिक्त दूसरे कण भी खण्डन क्रिया कर सकते हैं। प्रकृति में यूरेनियम के तीन समस्थानिक पाये जाते हैं जिनमें यूरेनियम-२३८ ९९.३ प्रतिशत मात्रा में और यूरेनियम-२३५ ०.७ प्रतिशत मात्रा में वर्तमान है। तीसरा समस्थानिक यूरेनियम-२३४ अत्यन्त अल्प मात्रा में पाया जाता है (लगभग ०.००६ प्रतिशत)। मन्द न्यूट्रान से केवल यूरेनियम-२३५ समस्थानिक का खण्डन होता है। तीव्र न्यूट्रान (दस लाख इवो० ऊर्जा से अधिक) द्वारा यूरेनियम २३८ एवं २३५ दोनों समस्थानिक खण्डित हो जाते हैं।

थोरियम परमाणु के नाभिक का खण्डन भी सम्भव है। इसके लिए दस लाख इवो० (१०,००,००० इवो०) ऊर्जाशील न्यूट्रानों का उपयोग करना पड़ेगा। नब्बे लाख इवो० (९०,००,००० इवो०) ऊर्जाशील ड्यूट्रान से यूरेनियम तथा थोरियम दोनों का खण्डन हो सकता है। इन परमाणुओं का खण्डन तीन करोड़ बीस लाख इवो० ऊर्जाशील अल्फा-कण (३,२०,००,००० इवो०), सत्तर लाख इवो० ऊर्जाशील प्रोटान (७०,००,

००० इवो०) और तिरसठ लाख इवो० (६३,००,००० इवो०) ऊर्जा-शील गामा-विकिरण द्वारा सम्भव है।

कुछ समय पश्चात् वैज्ञानिकों ने नब्बे (९०) परमाणु संख्या से नीचे के तत्त्वों का खण्डन भी देखा। अब यह भली-भाँति ज्ञात है कि बिस्मथ, सीसा, थैलियम, पारद, स्वर्ण, प्लैटिनम और टेंटलम का खण्डन अल्फा-कण, ड्यूट्रान अथवा न्यूट्रान द्वारा सम्भव है। इन कणों को दस करोड़ इलेक्ट्रान वोल्ट (१०,००,००,००० इवो०) से अधिक ऊर्जाशील होना चाहिए।

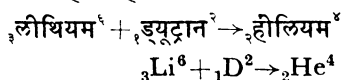
साथ ही साथ यह भी ज्ञात हुआ कि कुछ कृत्रिम तत्त्व भी खण्डित हो सकते हैं। इनमें दो तत्त्वों का विशेष स्थान है, एक यूरेनियम का २३३ भार वाला समस्थानिक तथा दूसरा प्लूटोनियम-२३९ (परमाणु संख्या ९४)। यूरेनियम-२३३ थोरियम-२३२ पर मन्द न्यूट्रान के आक्रमण से बनता है। यूरेनियम-२३८ पर मन्द न्यूट्रान की प्रतिक्रिया द्वारा प्लूटोनियम-२३९ बनाया जाता है। दोनों तत्त्वों का खण्डन मन्द न्यूट्रान ही करते हैं। परमाणु ऊर्जा के उपयोगों में दोनों का बहुमूल्य स्थान है। नेप्यूनियम-२३७ तीव्र न्यूट्रानों द्वारा खण्डित हो सकता है।

रूसी वैज्ञानिक फ्लेरोव और पेट्रजक ने १९४० में यूरेनियम के स्वतः खण्डन पर अनुसन्धान किया था। उनके प्रयोगों से ज्ञात हुआ कि यूरेनियम-२३५ समस्थानिक न्यूट्रान आक्रमण के बिना ही खण्डित हो सकता है। परन्तु इस खण्डन की सम्भाव्यता बहुत कम है। स्वतः खण्डन की अर्ध-जीवन अवधि दीर्घ है (लगभग 10^{14} — 10^{16} वर्ष)। यदि एक ग्राम साधारण यूरेनियम लिया जाय तो एक मिनट में एक परमाणु खण्डित होगा। रेडियधर्मी प्रतिक्रिया की गति (जिसके द्वारा यूरेनियम परमाणु से अल्फा-कण निकलता है) इस खण्डन क्रिया से दस लाख गुनी अधिक है।

कुछ वैज्ञानिकों का अनुमान है कि यूरेनियम-२३८ समस्थानिक भी स्वतः खण्डन कर सकता है। इसकी गति २३५ समस्थानिक से भी अति न्यून है। इसकी अर्धजीवन अवधि का अनुमान १०^९ वर्ष लगाया गया है।

खण्डन-क्रिया में ऊर्जा का उदय

हम पाठकों को बता चुके हैं कि यूरेनियम-खण्डन में ऊर्जा स्वतन्त्र होती है। सर्वप्रथम इस ऊर्जा का अनुमान माइटनर एव फ्रिश ने किया था। इस अनुमान की पुष्टि प्रयोगों द्वारा हुई। उनके अनुसार यूरेनियम के एक परमाणु के खण्डन में लगभग बीस करोड़ इलेक्ट्रान वोल्ट (२०,००,००,००० इवो०) ऊर्जा स्वतन्त्र होनी चाहिए। यह ऊर्जा समात्रा के क्षय से होती है। समात्रा के ऊर्जा में परिणत होने के उदाहरण हम पहले भी देख चुके हैं। तत्त्वान्तरण के प्रयोगों के विषय में बताते समय इसके कुछ परिगणन किये गये थे। वहाँ पर हमने देखा था कि तत्त्वान्तरण क्रियाओं में कुछ समात्रा ऊर्जा में परिणत हो सकती है। तत्त्वान्तरण प्रयोगों का एक उदाहरण नीचे दिया जाता है। प्रयोगों के समय यह क्रिया लीथियम पर तीव्र ड्यूट्रान के आक्रमण द्वारा होती है।



इस प्रतिक्रिया में दो करोड़ बाइस लाख इलेक्ट्रान वोल्ट (२,२२,००,००० इवो०) ऊर्जा स्वतन्त्र होती है जो तत्त्वान्तरण प्रयोगों में उच्चकोटि की मानी जाती है।

यह ध्यान देने योग्य है कि खण्डन क्रिया में इससे भी लगभग दस गुनी अधिक ऊर्जा उदित होगी। इसका कारण यह है कि इस प्रतिक्रिया में अधिक समात्रा का क्षय होता है जिसके कारण से इतनी उच्च मात्रा में ऊर्जा का उदय होता है।

इस ऊर्जा का अनुमान समात्रा के क्षय द्वारा लगाया जा सकता है। २३५ समस्थानिक यूरेनियम के परमाणु का भार २३५.११६ है। एक

न्यूट्रान का भार १.००९ है। इससे क्रिया में भाग लेने वाले कणों के भार का योग २३६.१२५ हुआ। खण्डन क्रिया कई रूपों में सम्भव है। उसमें से एक के द्वारा माँलीब्डेनम^१—९५ और लेंथेनम^२—१३९ बनते रहते हैं। इसके साथ में दो न्यूट्रान भी उत्पन्न होंगे। माँलीब्डेनम—९५ का सम्यक् रीति से ज्ञात भार ९४.९४५ है और लेंथेनम—१३९ का भार १३८.९५५ है। इस क्रिया में उत्पन्न कणों के भारों का योग इस प्रकार होगा —

माँलीब्डेनम	९४.९४५
लेंथेनम	१३८.९५५
दो न्यूट्रान	२.०१८
योग	२३५.९१८

क्रिया में भाग लेने वाले और उत्पन्न कणों के भार का अन्तर २३६.१२५—२३५.९१८ अर्थात् ०.२०७ संमात्रा मात्रक होगा। इस भार को आइंस्टाइन के समीकरण द्वारा ऊर्जा में परिणत करने पर उन्नीस करोड़ चालीस लाख इलेक्ट्रान वोल्ट (१९,४०,००,००० इवो०) प्राप्त होंगे। इस मात्रा की पुष्टि अन्य प्रयोगों द्वारा भी हो चुकी है।

खण्डन ऊर्जा कई स्थानों पर विभाजित रहती है। लगभग सोलह करोड़ बीस लाख इलेक्ट्रान वोल्ट की मात्रा (१६, २०,००,००० इवो०) दोनों खण्डित भागों को गतिज ऊर्जा देने के काम आती है। एक करोड़ बीस लाख इलेक्ट्रान वोल्ट (१,२०,००,००० इवो०) की मात्रा उत्पन्न न्यूट्रान तथा गामा-विकिरण के साथ व्यय होती है और दो करोड़ इलेक्ट्रान

वोल्ट (२,००,००,००० इवो०) खण्डन पदार्थ की रेडियधर्मिता में उपयुक्त होते हैं।

खण्डन से प्राप्त खण्ड

यूरेनियम-खण्डन से प्राप्त खण्डों के निरीक्षण से ज्ञात होता है कि इस क्रिया द्वारा अनेक प्रकार के पदार्थ उत्पन्न होते हैं। यद्यपि यूरेनियम का नाभिक दो भागों में बँट जाता है, परन्तु यह दो भाग बराबर नहीं होते। इनमें एक कुछ हलका और दूसरा उससे भारी होता है। साधारण रूप से एक भाग का भार लगभग ९५ तथा दूसरे का १३९ होता है। इसका यह अर्थ नहीं है कि इन्हीं दो भारों में ही यूरेनियम खण्डित होता है। खण्डन क्रिया के अनेक रूप सम्भव हैं। यूरेनियम के दो परमाणु भिन्न-भिन्न भारों में खण्डित हो सकते हैं और उन खण्डों में अनेक तत्त्व पाये जाते हैं।

खण्डन से उत्पन्न तत्त्व स्थिर नहीं होते। प्रत्येक तत्त्व रेडियधर्मी ज्ञात होता है। उदाहरण के लिए हम टेल्यूरियम को देखें। इस तत्त्व के अनेक समस्थानिक खण्डन क्रिया द्वारा पाये गये हैं। इन समस्थानिकों का भार १३१ से १३५ तक है। इनमें से प्रत्येक रेडियधर्मी है और बीटा-कणों को स्वतन्त्र करता है। इसी प्रकार आयोडीन के १२९ से १३७ भार वाले समस्थानिक पाये जाते हैं जिनमें प्रत्येक रेडियधर्मी है। सम्यक् रीति से निरीक्षण करने पर ज्ञात हुआ है कि ७२ से १६० भार सख्या वाले कण खण्डन क्रिया द्वारा प्राप्त होते हैं। इनमें सब कण समान मात्रा में नहीं मिलते। अधिकतर ९० से १०० मात्रा और १३५ से १४५ मात्रा वाले कण ही मिलते हैं। ११६ से १२० तक की भार सख्या वाले कण सबसे कम मात्रा में मिलते हैं। जिसका अर्थ यह है कि यूरेनियम परमाणु का बराबर भागों में बँटना असम्भव-सा है। ऐसा ज्ञात हुआ है कि यूरेनियम परमाणु ४० भिन्न प्रकारों से विभक्त हो सकता है। इनमें से ३० प्रकार प्रयोगों द्वारा ज्ञात भी हो चुके हैं।

यूरेनियम २३३ और प्लूटोनियम-२३९ परमाणुओं के खण्डन का

भी अध्ययन हो चुका है। उनमें भी इसी प्रकार के पदार्थ मिले हैं और उनके खण्डन के भी अनेक रूप हैं।

यह समस्त निरीक्षण मन्द न्यूट्रानों द्वारा उत्पन्न खण्डन द्वारा किये गये हैं। तीव्र या अधिक ऊर्जाशील न्यूट्रानों द्वारा किये गये खण्डनों का रूप भिन्न होता है। इस क्रिया द्वारा अधिक मात्रा में न्यूट्रान स्वतन्त्र होते हैं। कभी-कभी तो दस (१०) न्यूट्रान तक एक प्रतिक्रिया में उत्पन्न हो जाते हैं। बचा हुआ नाभिक लगभग बराबर भागों में विभक्त हो जाता है।

अब हम खण्डन-क्रिया द्वारा उत्पन्न कणों के गुणों पर दृष्टि डालें। प्रथम गुण हमारे सामने रेडियधर्मिता का आता है।

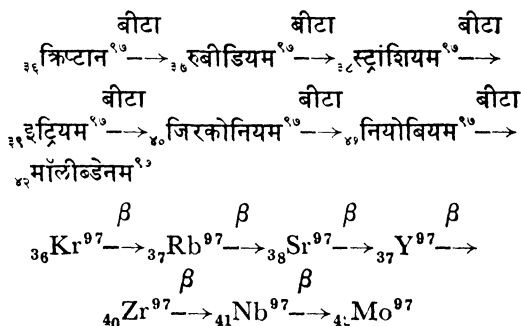
यूरेनियम-खण्डन से दो तत्त्वों के नाभिक बनते हैं। इन दोनों नाभिकों में न्यूट्रान-प्रोटान का अनुपात लगभग वही होगा जो यूरेनियम के नाभिक में रहता है। यदि हम आवर्त-सारणी के उन तत्त्वों के स्थिर समस्थानिकों पर दृष्टिपात करें जो यूरेनियम नाभिक के विभक्त होने से बनते हैं तो हम यह पायेंगे कि इन तत्त्वों के स्थिर समस्थानिकों में न्यूट्रान-प्रोटान अनुपात विभिन्न है। हल्के तत्वों में भारी तत्वों की अपेक्षा यह अनुपात कम रहता है। दूसरे शब्दों में हम यह कह सकते हैं कि भारी तत्वों के नाभिक में न्यूट्रान का प्रतिशत हल्के तत्वों से अधिक रहता है। अभी हम ऊपर कह चुके हैं कि यूरेनियम खण्डन क्रिया से बने नाभिकों में न्यूट्रान का प्रतिशत लगभग यूरेनियम के समान होगा। इसी कारण यह नाभिक अस्थिर अवस्था में उत्पन्न होते हैं। अस्थिर नाभिक दो भागों में स्थिर अवस्था में पहुँच सकते हैं। प्रथम मार्ग के अनुसरण से इन अस्थिर नाभिकों में से अधिक न्यूट्रान निकल आयेंगे। यह क्रिया ऊर्जा के विचार से कठिन मालूम होती है। इस कारण केवल इसी एक मार्ग द्वारा अस्थिर समस्थानिक स्थिर अवस्था नहीं प्राप्त कर सकते।

दूसरा मार्ग यह है कि अस्थिर नाभिकों के अन्दर कुछ न्यूट्रान प्रोटान में परिणत हो जायँ। इस प्रकार न्यूट्रान प्रोटान अनुपात बदलकर स्थिर हो जायेंगे। यदि एक न्यूट्रान प्रोटान में परिणत होगा तो उसके साथ एक

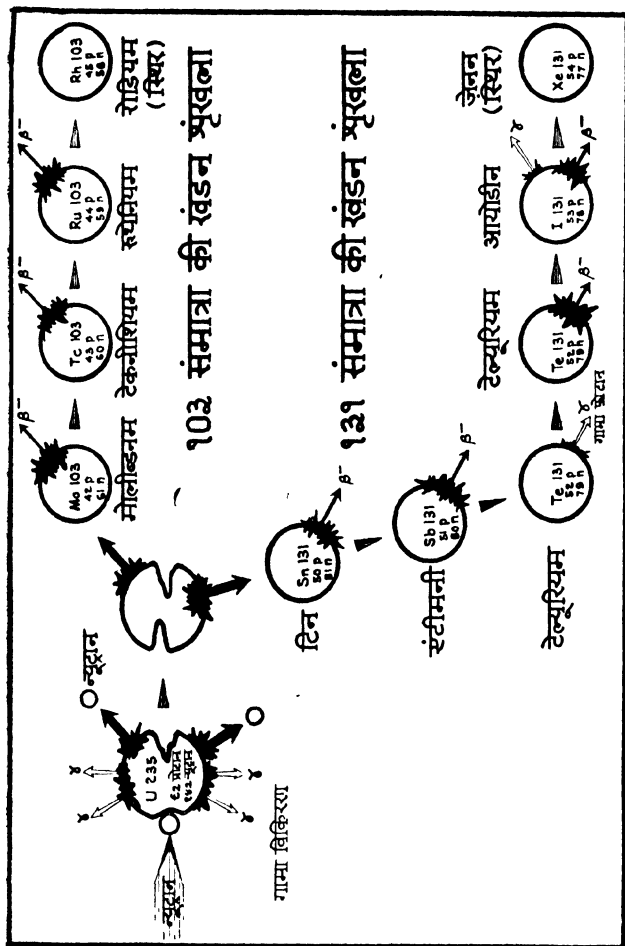
इलेक्ट्रान का स्वतन्त्र होना आवश्यक है। एक अस्थिर नाभिक को स्थिर अवस्था प्राप्त करने के लिए यह भी आवश्यक हो सकता है कि एक से अधिक न्यूट्रानों को प्रोटानों में परिणत होना पड़े। यदि यह हुआ तो इस श्रृंखला में एक से अधिक इलेक्ट्रान नाभिक द्वारा स्वतन्त्र होंगे।

यूरेनियम नाभिक के विभक्त होने से उत्पन्न अस्थिर नाभिक लगभग इसी क्रिया द्वारा स्थिर अवस्था में पहुँचते हैं। इससे उनकी परमाणु संख्या बढ़ जाती है और कुछ इलेक्ट्रान स्वतन्त्र हो जाते हैं। अधिकतर नाभिकों को स्थिर करने के लिए पाँच या छ इलेक्ट्रानों को स्वतन्त्र करना आवश्यक हो जाता है। इस प्रकार यह नाभिक पाँच या छ तत्त्वों में परिणत होते हुए स्थायी तत्त्व की अवस्था में पहुँचते हैं। प्रत्येक सोपान में एक इलेक्ट्रान स्वतन्त्र हो जाता है।

इनकी रेडियधर्मी श्रृंखला पाँच या छ. सोपान की होती है। इसका एक उदाहरण क्रिप्टान-९७ है जिसकी परमाणु संख्या ३६ है। इसकी रेडियधर्मी श्रृंखला निम्न प्रकार है —



इन सारी क्रियाओं में केवल बीटा-कण स्वतन्त्र होते हैं। इस कारण



चित्र संख्या २४—यूरेनियम खण्डन और बीटा क्षय श्रृंखला

सब तत्वों की भार-संख्या ९७ ही रहती है। केवल परमाणु संख्या में अन्तर आता रहता है।

बहुत ही कम मात्रा में कभी-कभी स्थिर समस्थानिक भी यूरेनियम-खण्डन से बन जाते हैं। इनके केवल तीन उदाहरण अभी तक ज्ञात हैं। यह रुबीडियम-८६, सीजियम-१३६, और ब्रोमीन-८२ मात्र हैं। इनकी इस प्रतिक्रिया द्वारा उत्पन्न मात्रा भी बहुत न्यून है। इस कारण खण्डन-पदार्थों में इनका विशेष स्थान नहीं है।

खण्डन पदार्थों की रेडियधर्मिता में लगभग दो करोड़ इलेक्ट्रान वोल्ट (२,००,००,००० इवो०) ऊर्जा का क्षय होता है। यह ऊर्जा, बीटा-कण, गामा-विकिरण तथा न्यूट्रिनों में विभाजित रहती है। लगभग आधी ऊर्जा न्यूट्रिनों के स्वतन्त्र होने में क्षय होती है। इस क्रिया में दो प्रकार के गामा-विकिरण स्वतन्त्र होते हैं। प्रथम है क्षिप्र गामा-विकिरण जो खण्डन क्रिया के साथ उदय हो जाते हैं तथा जिनमें लगभग पचास लाख इलेक्ट्रान (५०,००,००० इवो०) ऊर्जा का क्षय होता है। दूसरे प्रकार के गामा-विकिरण खण्डन-खण्डो से निकलते हैं जिनका उदय कुछ समय पश्चात् होता है।

खण्डन-खण्डों के गुण

यूरेनियम-खण्डन से लगभग दो सौ प्रकार के खण्ड पहचाने गये हैं। इन खण्डों की ५० विभिन्न शृंखलाएँ ज्ञात हैं। इन पदार्थों के क्षेत्र, रेडियधर्मिता, अर्धजीवन अवधि, आयनीकरण आदि की जाँच हुई है। परन्तु इन पर अब भी बहुत मात्रा में कार्य हो रहा है जिससे और नये-नये समस्थानिकों की खोज हुई है। इनमें से कुछ समस्थानिक निम्न सारिणी में दिये गये हैं।

यूरेनियम-खण्डन से प्राप्त कुछ दीर्घकालीन समस्थानिक

खण्डन समस्थानिक; प्राप्त प्रतिशत	अर्धजीवन अवधि,	बीटाकण ऊर्जा (लाख इवो०)	गामा-विकिरण ऊर्जा (लाख इवो०)
स्ट्राशियम-८९	४६ ५३ दिन	१४.६३	
स्ट्राशियम-९०	५.३ १९.९ वर्ष	६. १	
इट्रियम-९१	५.४ ६१ दिन	१५ ३	१२, २.०
ज़िरकोनियम-९५	६४ ६५ दिन	{ ८ ४ ३. ७	७.२
टेकनीशियम-९९	६२ २.१ × १० ^५ वर्ष	२. ९	
रूथेनियम-१०३	३७ ३९.८ दिन	{ ६. ९ २. १	४.९
आयोडीन-१३१	२.८ ८.१ दिन	{ ८. २ ६. १ ३. ४ २. ५	{ ७.२; ६.४ ६.१; ३.६ २.८; ०.८
जेनान-१३३	६.० ५.३ दिन	३. ५	०.८
सीजियम-१३७	६.२ ३३ वर्ष	{ ५. २ १२.०	६.६
बेरियम-१४०	६.१ १२.८ दिन	{ १०.२ ४. ८	{ ५.४; ३.० १.६; १.३; ०.३
सीजियम-१४१	६.० ३३.१ दिन	{ ५. ८ ४. ४	१.५
प्रेज़ोडिमियम-१४३	६.० १३.८ दिन	८. ३	
सीरियम-१४४	५.३ २८२ दिन	{ ३. ० १. ७	{ ०.३; ०.५ ०.८
प्रोमीथियम-१४७	२.६ २.६ वर्ष	२. २	

इस सारिणी में दो ऐसे तत्त्व भी हैं जो प्रकृति में नहीं पाये जाते। ये हैं टेकनीशियम^१-९९ और दूसरा प्रोमीथियम^२-१४७। ये दोनों तत्त्व कृत्रिम तत्त्वांतरण प्रयोगों द्वारा भी बनाये गये हैं।

खण्डन-पदार्थों से प्रत्येक तत्त्व को अलग करना बड़ा कठिन कार्य है। इन पदार्थों में बहुत-से विरल मृदा तत्त्व भी हैं जिनके रासायनिक गुण प्रायः समान होते हैं। इस कारण इनका रासायनिक विधि से पृथक्करण और भी कठिन हो जाता है। इनको पृथक् करने के लिए आयन विनिमय रेजिन का उपयोग किया गया है। इस विधि द्वारा इनका परिष्करण सरल हो गया है।

आजकल परमाणु भट्टियों द्वारा खण्डन-पदार्थ बड़ी मात्रा में उत्पन्न होते हैं। इनमें से कुछ समस्थानिकों का औद्योगिक तथा प्रयोगशालीय उपयोग होने लगा है। परन्तु शेष पदार्थों का उपयोग नहीं किया जा सकता। ये पदार्थ बड़ी मात्रा में विकिरण उत्पन्न करते हैं, अतः इनका स्पर्श करना या सँभालना बड़ा आपत्तिजनक है, क्योंकि विकिरण मनुष्य के लिए अहितकारी है। इस कारण यह बहुत आवश्यक है कि इन्हें बड़ी सावधानी के साथ हटाया जाय। इनका हस्तान्तरण भी एक विकट समस्या है, क्योंकि इन्हें बाहर फेंका नहीं जा सकता अन्यथा आसपास का वातावरण दूषित हो जायगा। नदी में भी फेंका नहीं जा सकता, क्योंकि उससे जल दूषित होगा। इस कारण कुछ पदार्थ समुद्र की गहराई में बैठा दिये जाते हैं और कुछ भूमि को गहराई तक खोद कर उसमें गाड़ दिये जाते हैं। परन्तु अभी तक यह ठीक नहीं कहा जा सकता कि आगे चलकर इससे भी कोई हानि हो सकती है या नहीं।

खण्डन प्रक्रम

माइटनर और फिश ने सर्वप्रथम द्रव बिन्दु प्रतिरूप के अनुसार खण्डन

क्रिया की विवेचना की। इसको समझने के पहले हम नाभिक की बनावट की ओर ध्यान दें और यह देखें कि उसमें किस प्रकार की शक्तियाँ कार्य करती हैं। नाभिक न्यूट्रान और प्रोटान से बना होता है। न्यूट्रान आवेश-रहित कण है इसलिए वह विद्युत् शक्ति में भाग नहीं ले सकता। प्रोटान घनावेशयुक्त कण है इस प्रकार उनमें आपस में प्रतिकर्षण होना चाहिए। इस विद्युत् शक्ति के कारण नाभिक का स्थिर होना असम्भव है।

नाभिक के स्थिर होने के लिए यह आवश्यक है कि उसके अन्दर उपस्थित कणों के बीच एक प्रकार का आकर्षण हो। इस आकर्षण को आवेश-युक्त और आवेशरहित दोनों प्रकार के कणों को प्रभावित करना चाहिए। इस आकर्षण शक्ति को ससंजन शक्ति' कहते हैं। इस प्रकार की शक्ति द्रव में कार्य करती है जिसके कारण उस द्रव की बूंद के परमाणु एक साथ बँधे रहते हैं, अलग नहीं हो जाते। इसी प्रकार परमाणु के नाभिक के अन्दर भी एक ससंजन शक्ति कार्य करती है जो मूलभूत कणों को एक साथ रखती है और प्रोटानों के बीच के विद्युत् प्रतिकर्षण को रोकती है।

सर्वप्रथम अमेरिका-निवासी प्रसिद्ध भौतिकशास्त्री जॉर्ज गैमो' ने यह सिद्धान्त रखा कि नाभिक के कणों के बीच की शक्ति की तुलना द्रव की बूंद में लगी शक्ति से की जा सकती है। जिस प्रकार द्रव की बूंद में पृष्ठ-तनाव रहता है उसी भाँति नाभिक में पृष्ठ-तनाव रहता है। एक द्रव की बूंद के मध्य के कणों पर चारों ओर बराबर शक्ति लगती है, परन्तु बाहरी पृष्ठ पर उपस्थित कण पर अन्तर्मुखी शक्ति लगती है। इस प्रकार उस पर चारों ओर से समान शक्ति नहीं लगती। इस कारण द्रव की बूंद गोलाकार धारण कर लेती है। एक आयतन के गोले का क्षेत्रफल किसी अन्य आकार के द्रव की अपेक्षा सबसे कम होता है। इस कारण एक गोलाकार बूंद का अपने आयतन में सबसे कम पृष्ठ-क्षेत्रफल होता है। उसकी

स्थिरता के लिए आवश्यक है कि उसका अपना पृष्ठ-क्षेत्रफल कम से कम हो।

की अपेक्षा पृष्ठ-तनाव की मात्रा अधिक रहती है। इस कारण ये तत्त्व खण्डित नहीं हो सकते। इसके विपरीत रजत से भारी तत्त्व अस्थिर है। इनमें आवेश-प्रतिकर्षण की मात्रा अधिक है। यह अनुकूल अवस्था में खण्डित हो सकते हैं। दूसरी ओर हलके तत्त्व के (यदि उनका भार रजत का आधा हो) दो नाभिकों का संलग्न होना सम्भव होना चाहिए।

इस प्रकार सैद्धान्तिक रूप से हर भारी तत्त्व को स्वतः खण्डित होना चाहिए। परन्तु हम यह भी देख चुके हैं कि केवल यूरेनियम-२३५ का नाभिक स्वतः खण्डित होता है यद्यपि इसकी सम्भाव्यता कम है (अर्ध-जीवन अवधि १०-^{१५} वर्ष) अन्य कोई भी नाभिक इस प्रकार खण्डित नहीं होता। कुछ भारी नाभिक न्यूट्रॉन के आक्रमण होने पर खण्डित होते हैं (जैसे यूरेनियम, थोरियम)। कुछ अन्य नाभिकों को खण्डित करने के लिए अति ऊर्जाशील कणों का प्रयोग करना पड़ता है। अभी तक टेलेम^१ -१८१ से हलके तत्त्व का खण्डन सम्भव नहीं हुआ है।

इन परीक्षणों से सिद्ध होता है कि भारी तत्वों का खण्डन और हलके तत्वों की संलग्नता साधारणतः नहीं हो सकती। इसको सम्भव बनाने के लिए हमें विशेष प्रयत्न करने होते हैं। खण्डन-क्रियाओं का वर्णन हम पहले कर चुके हैं। संलग्न-क्रिया का वर्णन आगे किया जायेगा। खण्डन-क्रिया सम्भव करने के लिए हमें नाभिक को एक विशेष प्रकार का धक्का देना होगा जिससे उसमें वेगवान् स्पन्दन उत्पन्न हो सकें।

दोनों बाते पाठकों को विरोधी लगेंगी, परन्तु वास्तव में ऐसा नहीं है। हम इस क्रिया की उपमा कुछ दैनिक क्रियाओं से कर सकते हैं। यदि एक पहाड़ी के ऊपर बड़ा पत्थर का टुकड़ा रखा हो तो उसे स्वतः नीचे आ जाना चाहिए, परन्तु ऐसा नहीं होता। वह पत्थर उस स्थान से उस समय तक

नीचे नहीं आता जब तक उसे धक्का न दिया जाय। इसी प्रकार दियासलाई की तीलियाँ डिब्बे में बिना जले रखी रहती हैं यद्यपि उनमें उपस्थित यौगिकों को आपस में प्रतिक्रिया करनी चाहिए। यह प्रतिक्रिया उस समय तक प्रारम्भ नहीं होती जब तक उसे एक विशेष मसाले पर नहीं रगड़ा जाता। इसी प्रकार लकड़ी या अन्य ईंधन को वायु के आक्सीजन से प्रतिक्रिया करना चाहिए, क्योंकि सिद्धान्त रूप में ये यौगिक आक्सीजन में अस्थिर हैं। परन्तु हम देखते हैं कि ये वायु के आक्सीजन के मध्य में वर्षों तक रखे जा सकते हैं और उनमें कोई क्रिया नहीं होती।

रसायनज्ञ इस विधान से बहुत समय से परिचित हैं। वे जानते हैं कि हाइड्रोजन व आक्सीजन के प्रतिक्रिया करने से जल की उत्पत्ति होती है। क्रिया द्वारा कुछ ऊर्जा का उदय भी होता है। परन्तु हाइड्रोजन और आक्सीजन गैसों को साधारण अवस्था में मिला कर रख दिया जाय तो असंख्य वर्षों तक कोई क्रिया होती न दिखाई देगी। हाँ, यदि इनका ताप बढ़ाया जाय अथवा मिश्रण के बीच विद्युत्-विसर्जन किया जाय तो ये दोनों गैसें शीघ्र प्रतिक्रिया कर जल में परिणत हो जायेगी।

रसायनज्ञ इसके विवेचन में कहते हैं कि प्रत्येक प्रतिक्रिया में भाग लेने वाले तत्त्वों अथवा परमाणुओं को भाग लेने से प्रथम सक्रिय ऊर्जा की आवश्यकता पड़ती है। इसको प्राप्त किये बिना वे प्रतिक्रिया नहीं कर सकते। इस ऊर्जा के अनेक स्वरूप हो सकते हैं। यह ताप के बढ़ने, दबाव के बढ़ने, विद्युत्-विसर्जन अथवा गतिज ऊर्जा आदि के रूप में प्राप्त हो सकती है।

इसी प्रकार परमाणुओं को खण्डित अथवा सगलित होने के पूर्व उन्हें सक्रिय ऊर्जा की आवश्यकता होगी। प्रायः इस ऊर्जा की आवश्यक मात्रा बहुत अधिक होती है और इन नाभिक प्रतिक्रियाओं को प्रारम्भ करना बड़ा कठिन कार्य है। अधिकतर नाभिक प्रतिक्रियाओं को प्रारम्भ करने के लिए इतने ऊँचे ताप की आवश्यकता होती है कि वह सरलता से उत्पन्न नहीं हो सकता। केवल सूर्य के मध्य में या अणु बम के मध्य स्थान में एक क्षण

के लिए ही यह ताप उपलब्ध हो सकता है। यह कठिनाई हमारे लिए बड़े सन्तोष का कारण है। हमें इस सम्भाव्यता से डरने की आवश्यकता नहीं है कि किसी दिन विश्व के भारी परमाणु खण्डित होकर और हलके परमाणु संगलित होकर एक विस्फोट के द्वारा रज में परिवर्तित हो जाये।

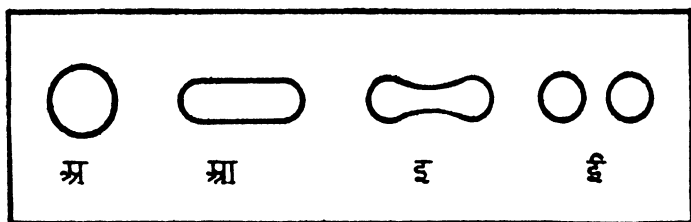
यूरेनियम खण्डन की प्रतिक्रिया को समझाने के लिए माइटनर और फ्रिश ने द्रव बिन्दु प्रतिरूप की सहायता ली। खण्डन प्रतिक्रिया को समझाने के लिए हमें सम्पूर्ण नाभिक के व्यवहार को देखना होगा। हम किसी एक न्यूट्रान अथवा प्रोटान के ऊपर सारी क्रिया का महत्त्व नहीं रख सकते। इसके लिए वैज्ञानिकों ने नाभिक को एक गोल बूंद माना। इस बूंद का द्रव असपीड्य समझा गया। सारे नाभिक में प्रोटान का समान घनत्व माना गया अथवा हम यह कह सकते हैं कि उनका विभाजन समान है। यूरेनियम के नाभिक का आकार उसके द्रव के पृष्ठ तनाव के कारण गोलाकार होगा।

यदि इस बूंद पर किसी प्रकार का प्रभाव डाला जाय तो उसका आकार उसी प्रकार बदल सकता है जैसे जल की बूंद का आकार उसे हिलाने से बदल जाता है। उसमें उसी प्रकार के स्पन्दन उत्पन्न हो सकते हैं। यदि जल की एक बूंद को हम धक्का दे तो उसमें कुछ हलचल पैदा होगी जिसके कारण कुछ स्पन्दन उत्पन्न होंगे। यदि यह धक्का हलका होगा तो कुछ समय पश्चात् बूंद अपने पुराने आकार पर आ जायगी। कभी-कभी ऐसा भी सम्भव हो सकता है कि पुराने आकार में लौटने के बीच में उससे एक हलकी छीट या कण बाहर ही रह जाय या दूर जाकर गिर जाये।

परन्तु यदि हम अधिक वेग से धक्का दें तो उस बूंद का आकार बहुत बदल सकता है। बहुत सम्भव है कि वह लम्बी होकर चित्र में दिये आकार (ई) की तरह हो जाय और इस अवस्था के पश्चात् अधिक हलचल के कारण दो भागों में विभक्त हो जाय।

अब हम यह जानने का प्रयत्न करें कि मन्द न्यूट्रान की प्रतिक्रिया के कारण यूरेनियम-२३५ नाभिक की क्या दशा होगी। इस प्रतिक्रिया के

पूर्व हमने यूरेनियम नाभिक को गोलाकार माना था। इस गोलाकार नाभिक में एक न्यूट्रॉन के योग होने के कारण उत्तेजन ऊर्जा उत्पन्न होगी। यह ऊर्जा सारे नाभिक पर बराबर फैल जायगी। अब गोलाकार नाभिक में कम्पन उत्पन्न होंगे जिसके कारण गोले के रूप में परिवर्तन आ जायेगे। दूसरे शब्दों में हम यह कह सकते हैं कि वह गोला विकृत हो जायेगा। इसका अनुमान चित्र द्वारा सरलता से हो सकता है।



चित्र संख्या २५—नाभिक की विकृति

इस विकृति के कारण विद्युत् आवेश का विभाजन असमान हो जायगा। यदि नाभिक में उत्तेजन ऊर्जा पर्याप्त मात्रा में होगी तो नाभिक की विकृति बढ़ती जायेगी जैसा कि चित्र में दिखाया गया है और विकृति एक चरम अवस्था को पार कर जायगी। ऐसा होने पर नाभिक का अपनी पुरानी अवस्था में आना सम्भव न होगा। तब नाभिक का आकार ई की भाँति हो जायगा और वह एक झटके के साथ दो भागों में विभक्त हो जायगा। चित्र में दिखायी गयी सारी प्रतिक्रिया क्षणिक होगी। वैज्ञानिकों ने अनुमान लगाया है कि खण्डन क्रिया को पूर्ण होने में लगभग 10^{-12} सेकेण्ड लगते हैं।

द्रव बूँद के सिद्धान्त के अनुसार यह आवश्यक नहीं है कि नाभिक केवल दो भागों में विभक्त हो। यह खण्डन दो से अधिक भागों में भी हो

सकता है। वैज्ञानिक सैन-त्स्यांग^१ ने अपने अनुसन्धानोंमें देखा कि यूरेनियम नाभिक कभी-कभी तीन भागों में विभक्त होता है, परन्तु विरली दशाओं में चार भागों में भी विभक्त हो जाता है। उनके अनुसार एक हजार (१०००) द्वितीय खण्डन क्रियाओं के साथ तीन (३) तृतीयक खण्डन होते हैं। चतुर्थ खण्डन क्रिया इससे दस गुनी विरल है। परन्तु इन आकारों की पुष्टि नहीं हुई है। दूसरे वैज्ञानिकों ने तृतीयक खण्डन और चतुर्थक-खण्डन क्रियाओं को अधिक विरल माना है।

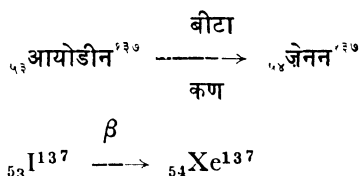
न्यूट्रानों की उत्पत्ति

यह पहले बताया जा चुका है कि खण्डन-क्रिया में कुछ न्यूट्रान मुक्त हो जाते हैं। यह स्वाभाविक भी है, परन्तु यह जानना आवश्यक है कि ये किस रीति से मुक्त होते हैं। पाठकों को यह ज्ञात हो चुका है कि खण्डन क्रिया से बने खण्डों में न्यूट्रानों की बहुतायत रहती है। इसी कारण ये खण्ड अस्थिर होते हैं और रेडियधर्मिता द्वारा स्थिर नाभिकों में परिणत होते हैं। इस क्रिया से अनेक इलेक्ट्रान मुक्त होते हैं जो हमें यह ज्ञात कराते हैं कि खण्डों में कुछ न्यूट्रान प्रोटान में परिणत हो रहे हैं।

परन्तु पाठकों के सामने यह प्रश्न आ सकता है कि क्या खण्डन-क्रिया द्वारा उत्पन्न अस्थिर नाभिक इसी मार्ग द्वारा स्थिरता की ओर चलता है। क्या यह सम्भव नहीं है कि अस्थिर नाभिक में से कुछ न्यूट्रान भी स्वतन्त्र हो जायें? अनुसन्धानों द्वारा यह ज्ञात हुआ है कि ऐसा भी सम्भव हो सकता है कि इन नाभिकों से कुछ न्यूट्रान स्वतन्त्र हो जायें। ये अनुसन्धान यूरेनियम पर न्यूट्रान के आक्रमण द्वारा किये गये। कुछ आक्रमण प्रयोगों में देखा गया कि यदि यूरेनियम पर न्यूट्रान आक्रमण करने के पश्चात् न्यूट्रान का स्रोत हटा लिया जाय तो कुछ समय पश्चात् तक कुछ न्यूट्रान मुक्त होते रहते हैं।

खण्डन-क्रिया द्वारा उत्पन्न न्यूट्रानों के लगभग ०.६ प्रतिशत न्यूट्रान क्रिया के ०.१ सेकेण्ड बाद उत्पन्न होते हैं और ०.१ प्रतिशत एक मिनट तक उत्पन्न होते रहते हैं। इतने समय के पश्चात् भी अल्प मात्रा में न्यूट्रान उत्पन्न होते रहते हैं। इनकी उत्पत्ति रेडियधर्मी नियमों के अनुसार होती है और इनकी भी नियत अर्धजीवन अवधि होती है। कुछ आधुनिक अनुसन्धानों में १२५ मिनट अर्धजीवन अवधि के न्यूट्रान भी मिले हैं, यद्यपि इनकी मात्रा अत्यन्त अल्प है।

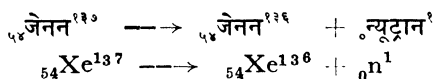
इस प्रकार खण्डन-क्रिया में हमें दो रूपों के न्यूट्रान मिलते हैं। एक वे न्यूट्रान जो खण्डन-क्रिया के साथ-साथ उत्पन्न होते हैं। इन्हें क्षिप्र न्यूट्रान कहा जाता है। दूसरे न्यूट्रान वे हैं जो खण्डों की रेडियधर्मिता से उत्पन्न होते हैं। उन्हें विलम्बित न्यूट्रान कहते हैं। ये विलम्बित न्यूट्रान उन उत्पन्न नाभिकों से निकलते हैं जिनमें इतनी अधिक ऊर्जा उपस्थित रहती है कि उससे एक न्यूट्रान स्वतन्त्र हो जाये। खण्डन-क्रिया से उत्पन्न नाभिक बहुत ऊर्जाशील होते हैं। कभी-कभी बीटा-कण या इलेक्ट्रान निकलने के कारण नाभिक वेग से प्रतिक्रिया करता है। यदि यह प्रतिक्रिया ऊर्जा इतनी अधिक हुई कि न्यूट्रान स्वतन्त्र हो सके तो यह मार्ग सम्भव हो जाता है। अन्यथा कुछ गामा विकिरणों का उदय हो जाता है। कभी-कभी एक ही नाभिक दो मार्गों द्वारा विच्छेदित हो सकता है। इसका निम्न उदाहरण दिया जा रहा है जिसमें आयोडीन-१३७ नाभिक प्रतिक्रिया करता है।



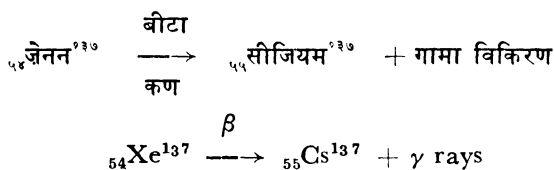
इस प्रतिक्रिया द्वारा जेनन-१३७ का निर्माण होता है।

जेनन-१३७ अस्थिर समस्थानिक है। इस कण का विच्छेदन दो

मार्गों द्वारा सम्भव होता है। अधिक ऊर्जाशील कण तो निम्न भाँति से क्षय होते हैं—



इस क्रिया से एक न्यूट्रॉन स्वतन्त्र होने के साथ ऊर्जा का क्षय होता है। स्वाभाविक है कि ये न्यूट्रॉन खण्डन-क्रिया के कुछ समय पश्चात् उत्पन्न होंगे। इस कारण इन्हें विलम्बित न्यूट्रॉन कहना ठीक होगा। अनुसन्धानों से ज्ञात हुआ है कि जेनन-१३७ के कणों का विच्छेदित सात प्रतिशत भाग (७%) इस मार्ग द्वारा विच्छेदित होता है। शेष तिरानवे प्रतिशत (९३%) कण बीटा-कण तथा गामा-विकिरण स्वतन्त्र करते हैं।



यह बड़े सौभाग्य का विषय है कि यूरेनियम खण्डन में कुछ विलम्बित न्यूट्रॉन उत्पन्न होते हैं। इन न्यूट्रॉनों के बिना परमाणु भट्ठी का नियन्त्रण असम्भव था। यदि सारे न्यूट्रॉन क्षिप्त अवस्था में ही निकलते तो परमाणु भट्ठी में एक साथ इतनी बड़ी सख्या में न्यूट्रॉन उत्पन्न हो जाते कि यान्त्रिक नियन्त्रण उनकी देखरेख करने में असमर्थ रहते। परन्तु भाग्यवश ०.७५ प्रतिशत न्यूट्रॉन विलम्बित रहते हैं जिनके कारण यान्त्रिक नियन्त्रण सम्भव हो सका है।

अध्याय ११

नाभिकीय शृंखला प्रतिक्रिया

यूरेनियम खण्डन प्रतिक्रिया शृंखला का अनुमान १९३९ में लगाया गया था। उसी वर्ष मार्च में वान हालबन^१ फ्रेड्रिक जोलिये और कोवर्सकी^२ ने इस समस्या पर फ्रांस में विचार किया। उसी समय अमेरिका में एनरिको फर्मी भी इस ओर अनुसंधान-कार्य कर रहे थे कि यदि यह शृंखला क्रिया सम्भव हो सके तो परमाणु ऊर्जा का उपयोग सरलता से हो जाय। पर इसी क्रिया के अल्पकाल में पूर्ण होने पर उससे भयानक विस्फोट होने की आशंका भी वैज्ञानिकों के मस्तिष्क में घूम रही थी।

नाभिक खण्डन-क्रिया के दो गुण वैज्ञानिकों के समक्ष थे। प्रथम गुण के अनुसार प्रत्येक परमाणु-खण्डन-क्रिया के साथ बीस करोड़ इलेक्ट्रॉन-वोल्ट (२०,००,००,००० इवो०) ऊर्जा उदय होती थी। दूसरे गुण के कारण प्रत्येक खण्डन-क्रिया द्वारा एक से अधिक न्यूट्रॉन स्वतन्त्र होते थे।

इस दूसरे गुण के कारण शृंखला बनाने की सम्भाव्यता वैज्ञानिकों के समक्ष आयी। अनुसन्धानों से ज्ञात हुआ कि प्रत्येक यूरेनियम-२३५ खण्डन क्रिया में औसतन २.५ न्यूट्रॉन स्वतन्त्र होते हैं।

हम थोड़े समय के लिए मान लें कि प्रत्येक खण्डन प्रतिक्रिया द्वारा दो न्यूट्रॉन स्वतन्त्र होंगे। हम यह भी मान लें कि प्रत्येक न्यूट्रॉन एक यूरेनियम नाभिक को खण्डन करने में सफल होगा।

ऐसी अवस्था में जब एक न्यूट्रान यूरेनियम के नाभिक में प्रवेश करता है तो उसके प्रवेश के कारण नाभिक का खण्डन होकर दो न्यूट्रान स्वतन्त्र होंगे। अब ये दो न्यूट्रान दो नये नाभिकों में प्रवेश करेंगे और उनका खण्डन कर देंगे और इस क्रिया द्वारा चार नये न्यूट्रान स्वतन्त्र होंगे। हर नये चरण में पिछली क्रिया से दूनी सख्या में न्यूट्रान उत्पन्न होते रहेंगे। चौथी में सोलह (१६), पाँचवी में बत्तीस (३२), छठी में चौसठ (६४), आदि न्यूट्रान उत्पन्न हो जायेंगे। इस प्रकार यह प्रतिक्रिया शृंखला रूप में बढ़ती जायेगी। अस्सीवी दशा तक 10^{28} न्यूट्रान उत्पन्न हो जायेंगे। यदि हम आरम्भ में ही २४० ग्राम यूरेनियम से कार्य प्रारम्भ करते तो इस अवस्था में उसमें उपस्थित सारे परमाणुओं का खण्डन हो जाता। इसके साथ उत्पन्न ऊर्जा का अनुमान लगाना कठिन है। यह ऊर्जा यदि विद्युत् में परिवर्तित की जा सके तो पचास लाख यूनिट (५०,००,०००) के बराबर होगी। अचम्भे की बात यह है कि सारा कार्य केवल एक न्यूट्रान से प्रारम्भ हुआ। खण्डन-क्रिया में बहुत कम समय लगता है। यह सारी क्रिया एक सेकेण्ड के दस लाखवे भाग में पूर्ण हो सकती है। यदि इस क्रिया को अनियन्त्रित अवस्था में होने दिया जाय तो इतने कम समय में इतनी अधिक ऊर्जा उत्पन्न होने के कारण भयानक विस्फोट होगा।

ऊपर बताये हुए सारे वर्णन आदर्श अवस्था के हैं। वास्तविक परिस्थिति में अनेक कठिनाइयाँ सामने आयेगी। जिनमें कुछ नीचे दी जा रही हैं—

प्रथम कठिनाई यह है कि यूरेनियम नाभिक में प्रवेश करने वाला प्रत्येक न्यूट्रान उसका खण्डन नहीं करता। यूरेनियम-२३८ समस्थानिक केवल अधिक ऊर्जाशील न्यूट्रान द्वारा खण्डित हो सकता है। उसके लिए कम से कम दस लाख इलेक्ट्रान वोल्ट (१०,००,००० इवो०) ऊर्जा वाले न्यूट्रान आवश्यक होंगे। इससे कम ऊर्जावाला न्यूट्रान यूरेनियम-२३८ द्वारा केवल अवशोषित हो जायेगा। यूरेनियम का दूसरा समस्थानिक (यूरेनियम-२३५) मन्द तथा ऊर्जाशील दोनों न्यूट्रानों से खण्डित हो सकता है। परन्तु इसकी प्रतिशत मात्रा साधारण यूरेनियम में बहुत कम है (केवल

०.७%)। इसके अतिरिक्त यूरेनियम-२३५ समस्थानिक न्यूट्रान आक्रमण से शत प्रतिशत खण्डित नहीं हातो। यह खण्डन केवल ८५ प्रतिशत क्रियाओं में सफल होता है। बचे हुए १५ प्रतिशत परमाणु बिना न्यूट्रान स्वतन्त्र किये तत्त्वांतरित हो जाते हैं।

एक अन्य कठिनाई यह है कि सारे न्यूट्रान जो खण्डन-क्रिया में स्वतन्त्र होते हैं अन्य यूरेनियम नाभिक द्वारा अवशोषित नहीं होते। अवशोषित होने का गुण न्यूट्रान में कम मात्रा में होता है। वह बड़ी मात्रा में द्रव्य को पार कर सकता है। यदि वह ऊर्जाशील हुआ तब तो अवशोषित होने की सम्भावना और भी कम हो जाती है। इस प्रकार कुछ न्यूट्रान यूरेनियम की समात्रा के बाहर निकल सकते हैं। इस प्रकार से निकले हुए न्यूट्रान बेकार होते हैं।

अतः एक यह कठिनाई सामने आती है कि यूरेनियम में सूक्ष्म मात्रा में अशुद्धियाँ उपस्थित रहती हैं। ये अशुद्धियाँ न्यूट्रान को बड़ी मात्रा में अवशोषित कर लेंगी और खण्डन-क्रिया की क्षति करेंगी।

१९३९ में बहुत-से वैज्ञानिकों को यह आशंका थी कि इन सब कठिनाइयों के कारण शृंखला क्रिया सफल न हो सकेगी। परन्तु कुछ वैज्ञानिकों को यह विश्वास था कि यदि न्यूट्रान की हानि कम की जा सके तो शृंखला क्रिया सम्भव हो जायेगी। उनके विचार के अनुसार खण्डन-क्रिया में वास्तविक उपयोग मन्द न्यूट्रानों का होगा। यदि कोई ऐसी विधि निकल आये जिससे तीव्र ऊर्जाशील न्यूट्रान मन्द किये जा सकें तो खण्डन की सम्भाव्यता बढ़ जायेगी क्योंकि न्यूट्रान की हानि कम हो जायेगी और उनके अवशोषण का अवसर बढ़ जायेगा। साथ में यह सुझाव रखा गया कि नियन्त्रित शृंखला को सफल बनाने के लिए यह आवश्यक होगा कि यदि क्रिया में आवश्यकता से अधिक न्यूट्रान बने तो उन्हें किसी रूप से क्रिया की परिधि के बाहर कर दिया जाय। इसके लिए किसी-किसी अवशोषक का उपयोग किया जाना लाभकर होगा। अवशोषक वह वस्तु है जो न्यूट्रानों का बिना किसी उत्पन्न क्रिया के अवशोषण कर सके। इस कार्य में केडमियम तत्त्व का सर्वप्रथम उपयोग

किया गया था। इसका भी ध्यान रखा गया कि आवश्यकता से अधिक न्यूट्रान अवशोषित न हो अन्यथा शृंखला समाप्त हो जायेगी।

इन सब विचारों की पुष्टि के लिए प्रयोग करना आवश्यक था। १९४० तक वैज्ञानिकों को विश्वास हो गया था कि यूरेनियम खण्डन-क्रिया की शृंखला बनायी जा सकती है। यह शृंखला नियमित रूप में, जिसे नियन्त्रित खण्डन कहते हैं, भी चल सकती है। यदि अवस्था अनुकूल हुई तो अनियन्त्रित खण्डन भी सम्भव है। इसके द्वारा एक अत्यन्त विनाशकारी बम बनाया जा सकता है जिसका उस समय तक मानव जाति को अनुमान भी न था।

इसी काल में यह भी ज्ञात हुआ कि यूरेनियम पर मन्द न्यूट्रान की प्रतिक्रिया से प्लूटोनियम-२३९ नामक तत्त्व बनता है। इस तत्त्व की परमाणु संख्या ९४ है और इसके भी वही खण्डन गुण हैं जो यूरेनियम-२३५ के। इस प्रकार वैज्ञानिकों को यह अनुमान हुआ कि खण्डन प्रतिक्रिया में जो यूरेनियम-२३५ व्यय हो ता है उसके बदले में दूसरा तत्त्व भी मिल सकता है जिसमें उतने ही उपयोगी गुण हैं।

खण्डन-क्रिया का विस्फोट में उपयोग करने के लिए यह आवश्यक था कि विशुद्ध यूरेनियम-२३५ समस्थानिक अथवा प्लूटोनियम-२३९ का उपयोग किया जाय। यूरेनियम-२३५ को साधारण यूरेनियम से अलग करना बड़ा कठिन कार्य था। यह किसी रासायनिक क्रिया से सम्भव न था। इसके लिए विद्युत्-चुम्बकीय पृथक्करण, वायव्य विसरण आदि भौतिक क्रियाओं का उपयोग करना पड़ा। ये बड़ी लम्बी, समय लेने वाली तथा महँगी क्रियाएँ हैं।

प्लूटोनियम, यूरेनियम खण्डन क्रिया द्वारा उत्पन्न होता है। यह यूरेनियम से भिन्न तत्त्व है। इस कारण इसको यूरेनियम से रासायनिक क्रियाओं द्वारा अलग किया जा सकता है। हम आगे देखेंगे कि परमाणु ऊर्जा के लिए इन दोनों तत्त्वों का उपयोग हुआ है।

द्वितीय महायुद्धकाल में मित्र राष्ट्रों के अनेक वैज्ञानिक अमेरिका में जमा होकर इस दिशा में कार्य कर रहे थे। उनके अनुसन्धानों के फलस्वरूप

सन् १९४२ में सर्वप्रथम नियन्त्रित शृंखला क्रिया सफल हुई। इस सघटन को परमाणु पुर्ज^१ का नाम दिया गया। आजकल इसे प्रतिकारी^२ कहते हैं। नियन्त्रित शृंखला क्रिया सफल होने के कारण प्लूटोनियम तत्त्व का निर्माण भी सम्भव हो गया और इस प्रकार उनके हाथों में खण्डन-क्रिया के हेतु दो तत्त्व आ गये। आगे नियन्त्रित शृंखला क्रिया का विवरण दिया जायगा। उसके पश्चात् अनियन्त्रित क्रिया का वर्णन होगा जिसके द्वारा परमाणु बम बना।

नियन्त्रित शृंखला-क्रिया-प्रणाली

परमाणु भट्टी का विवरण देने से पहले यह आवश्यक है कि उसके सिद्धान्त की ओर ध्यान दिया जाय और यह ज्ञात किया जाय कि उसके लिए किन दशाओं और वस्तुओं की आवश्यकता होती है।

साधारण यूरेनियम में, २३८ समस्थानिक, २३५ की अपेक्षा १४० अधिक रहता है। यदि न्यूट्रान ऐसे यूरेनियम में प्रवेश करेंगे तो यह अधिक सम्भव है कि वह २३८ समस्थानिक द्वारा अवशोषित हो जायें। खण्डन-क्रिया-शृंखला बनने के लिए यह आवश्यक है कि जितने न्यूट्रान खण्डन में उपयोजित हों, कम से कम उतने ही फिर खण्डन-क्रिया के लिए स्वतन्त्र हो जायें। परन्तु यूरेनियम २३८ की मात्रा अधिक होने के कारण अधिक सख्यक न्यूट्रान इस समस्थानिक के बन्धन में आ जायेंगे और बहुत कम २३५ समस्थानिकों को खण्डित करेंगे।

इस कठिनाई को वैज्ञानिकों ने बड़ी सुन्दरता से पार किया। यूरेनियम २३८ के द्वारा न्यूट्रान अवशोषण का बहुत अध्ययन हुआ जिससे यह ज्ञात हुआ कि भिन्न-भिन्न वेग वाले न्यूट्रान भिन्न-भिन्न मात्रा में यूरेनियम-२३८ द्वारा अवशोषित होते हैं। यह समस्थानिक कम ऊर्जा वाले न्यूट्रानों को

शीघ्रता से अवशोषण करता है। यदि न्यूट्रानों की ऊर्जा पाँच इलेक्ट्रान वोल्ट (५ इवो०) के लगभग हो तो वे बड़ी मात्रा में यूरेनियम द्वारा अवशोषित होते हैं। इससे कम ऊर्जा वाले न्यूट्रान बहुत कम मात्रा में यूरेनियम २३८ द्वारा अवशोषित होते हैं। इस कारण यदि न्यूट्रानों को शीघ्रता से पाँच इलेक्ट्रान वोल्ट ऊर्जा में कम ऊर्जा में लाया जाय तो वह २३८ समस्थानिक की पकड़ से बच जायेंगे और २३५ समस्थानिक को खण्डित कर सकेंगे। इस सतर्कता द्वारा न्यूट्रान पुनरुत्पादक गुणक (खण्डन क्रिया द्वारा स्वतन्त्र क्रिया में भाग लेने वाले न्यूट्रानों का अनुपात) प्राकृतिक यूरेनियम के प्रयोगों में १ से अधिक हो सकता है। जब यह गुणांक १ या उससे अधिक होगा तभी श्रृंखला चलेगी, अन्यथा समाप्त हो जायगी।

इसमें एक कठिन समस्या और थी। खण्डन-क्रिया द्वारा स्वतन्त्र हुए न्यूट्रान बहुत वेगवान् होते हैं। उनमें बहुत अधिक ऊर्जा रहती है। श्रृंखला क्रिया को सफल करने के लिए, मन्द न्यूट्रानों की आवश्यकता है जिनका वेग 2.5×10^4 सेन्टीमीटर प्रति सेकेंड से अधिक न हो अन्यथा वह २३८ समस्थानिक की पकड़ में आ जायेंगे। 20° सेन्टीग्रेड ताप पर स्वतः चलने वाले न्यूट्रानों का लगभग यही वेग रहता है। फर्मी ने तीव्र न्यूट्रानों को मन्द करने का उपाय १९३५ में निकाला था। उसने देखा था कि यदि न्यूट्रानों को हलके तत्त्वों के बीच से पार कराया जाय तो वह उन तत्त्वों के नाभिकों से टकराकर मन्द गति में आ जायेंगे। इस मन्द गति करने वाली विधि को संयंत्रण कहते हैं। और जिस वस्तु द्वारा न्यूट्रानों को मन्द किया जाता है उसे संयंत्रक कहते हैं।

तीव्र न्यूट्रानों को मन्द करते समय एक और बात का ध्यान रखना आवश्यक है। जिस समय न्यूट्रानों की गति कम की जायगी उस प्रक्रम में एक क्षण के लिए वे न्यूट्रान उस गति को भी प्राप्त करेंगे जिसमें वे यूरेनियम २३८ द्वारा सरलता से अवशोषित होते हैं। उस क्षण वे २३८ समस्थानिक की पकड़ में आ जायेंगे और खण्डन-कार्य न करेंगे। जिस वेग की अवस्था में न्यूट्रान यूरेनियम-२३८ द्वारा बृहत् मात्रा में गृहीत होते

हैं उसे अनुनाद पट्ट कहते हैं। इस अनुनादी ग्रहण से न्यूट्रानों को बचाना अत्यावश्यक है।

इस अनुनादी ग्रहण को कम करने के लिए एक विशिष्ट योजना बनायी गयी। इसके द्वारा सारे यूरेनियम को एक स्थान में न रखा गया। परन्तु यूरेनियम के छोटे छोटे-ढेलो को संयंत्र के मध्य में स्थायी प्रवन्ध द्वारा रखा गया। इस प्रवन्ध के अनेक लाभ थे। सबसे बड़ा लाभ यह था कि खण्डन-क्रिया से उत्पन्न तीव्र न्यूट्रान एक क्षण में यूरेनियम ढेले से निकल कर संयंत्र में पहुँच जाते हैं। वहाँ पर वे सयत्र के नाभिकों से टकराकर मन्द हो जाते हैं। इस मन्द होने की सारी क्रिया में वे यूरेनियम के स्पर्श में नहीं आते और २३८ समस्थानिक की पकड़ से बच जाते हैं। तत्पश्चात् मन्द न्यूट्रान इधर-उधर घक्के खाकर किसी यूरेनियम ढेले में प्रवेश कर खण्डन-क्रिया करते हैं और नये तीव्र न्यूट्रान स्वतन्त्र हो जाते हैं। ये तीव्र न्यूट्रान फिर यूरेनियम से निकल कर सयत्रक द्वारा मन्द हो जाते हैं और न्यूट्रान चक्र चलता रहता है।

यूरेनियम को सयत्रक के मध्य रखने की कला पर बहुत प्रयोग किये गये हैं। इन ढेलों को विशेष प्रकार से रखा जाता है और इनकी दूरी भी नापकर ठीक बराबर रखी जाती है। इसको कम या अधिक करने से हानि की सम्भावना रहती है। यदि दूरी कम कर दी जायगी तो न्यूट्रान पूर्णतया मन्द होने से पहले ही यूरेनियम ढेले में फिर प्रवेश कर सकता है और इस प्रकार २३८ समस्थानिक द्वारा अवशोषित हो जायगा। यदि यह दूरी आवश्यकता से अधिक हुई तो न्यूट्रान बहुत काल तक सयत्रक के नाभिकों से टकराता रहेगा और मन्द होने के पश्चात् यूरेनियम ढेले में प्रवेश न करेगा। बहुत काल तक सयत्रक के बीच में रहने से उसका अवशोषण भी उसी यत्र द्वारा हो सकता है। अन्यथा न्यूट्रान का अनावश्यक क्षय होगा।

साधारण जल अच्छा सयत्रक है। वह तीव्र न्यूट्रानों को शीघ्रता से मन्द कर देता है। परन्तु उसके उपयोग में कठिनाई यह है कि हाइड्रोजन स्वयं मन्द न्यूट्रानों को समुचित मात्रा में अवशोषित करता है, अतः प्राकृतिक यूरेनियम के साथ साधारण जल का उपयोग नहीं हो सकता। इसके

विपरीत ड्यूटीरियम जल अथवा भारी जल मन्द न्यूट्रानों को बहुत कम अवशोषित करता है। वह एक अच्छा सयंत्रक सिद्ध हुआ है। इसका उपयोग प्राकृतिक यूरेनियम के साथ सम्भव है और किया भी गया है।

ग्रेफाइट के रूप में कार्बन का सयंत्रण-कार्य में उपयोग हुआ है। यद्यपि ड्यूटीरियम के बराबर अच्छे गुणवाला नहीं है, परन्तु सस्ता और आसानी से उपलब्ध होने के कारण अधिकतर उपयोगी पाया गया है। अभी तक प्राकृतिक यूरेनियम के जितने प्रतिकारी बने हैं उनमें से ग्रेफाइट का सब से अधिक उपयोग होता रहा है।

प्रतिकारी के उपयोग में कुछ समय पश्चात् यह देखना आवश्यक हो जाता है कि खण्डन-संख्या एक सीमा से आगे न बढ़े और प्रतिकारी भी उसी गति से चले। समान गति से चलने के लिए यह आवश्यक है कि न्यूट्रानों की संख्या समान रहे। इसका अर्थ यह है कि जितने न्यूट्रान खण्डन-क्रिया करे उतने ही न्यूट्रान अगली शृंखला के लिए तैयार हो जाये। इस कारण उस अवस्था में पुनरुत्पादन गुणक को १ होना चाहिए, न तो इससे कम और न अधिक। यदि उस समय यह गुणक १ से कम हो गया तो कुछ समय पश्चात् प्रतिकारी क्रिया रहित हो जायेगा और यदि यह गुणक १ से अधिक हुआ तो प्रतिकारी नियंत्रण में न रहेगा।

इस नियंत्रण को सफल करने का उपाय इस प्रकार है। कुछ ऐसे तत्त्व हैं जो मन्द न्यूट्रानों को बड़ी मात्रा में अवशोषित करते हैं। इनमें बोरान और कैडियम का विशेष महत्त्व है। यदि इनके दण्ड बनाये जाये और इन्हें प्रतिकारी में प्रविष्ट किया जा सके तो यह सरलता से न्यूट्रान अवशोषित कर लेंगे। यदि प्रतिक्रिया में आवश्यकता से अधिक न्यूट्रान जन्म ले रहे हैं तो दण्डों को प्रतिकारी में हलके से डाला जाय। इनके प्रवेश की मात्रा को घटाया या बढ़ाया जा सकता है जिससे आवश्यकतानुसार न्यूट्रानों को अवशोषित किया जाय। इस प्रकार प्रतिकारी न्यूट्रानों की संख्या पर नियंत्रण रखा जाता है। इन दण्डों की प्रतिकारी में प्रवेश करने की मात्रा को हलकी मशीन द्वारा नियंत्रित किया जाता है। सारे दण्डों को पूरी प्रकार

प्रतिकारी में प्रविष्ट करने पर इतने अधिक न्यूट्रान अवशोषित हो जाते हैं कि उसकी क्रिया समाप्त हो सकती है। इसलिए इस उपकरण द्वारा प्रतिकारी को बन्द कर सकते हैं।

परमाणु पुंज अथवा प्रतिकारी में न्यूट्रानों का क्षय हो सकता है जो कभी-कभी हानिकारक सिद्ध हो सकता है। यदि प्रतिकारी को उचित क्षमता से चलाना है तो इन हानियों की मात्रा कम से कम होनी चाहिए। प्रतिकारी में न्यूट्रान टकराहट करते हैं। अपने तीव्र वेग और इन टकराहटों के कारण ये प्रतिकारी के बाहर निकल सकते हैं। इस प्रकार निकले हुए न्यूट्रान फिर काम में नहीं आ सकते। इस प्रकार से होने वाले क्षय का बहुत कम किया जाना आवश्यक है। इसके लिए प्रतिकारी क्रियाशील अंग को प्रत्यावर्तक से घेरना चाहिए। इस प्रत्यावर्तक का यह कार्य होगा कि वह बाहर निकलने वाले न्यूट्रानों से टकराकर उन्हें अन्दर की ओर लौटा दे। जो न्यूट्रान बाहर की दिशा को अग्रसर हो रहे थे वे अन्दर लौट जायेंगे और खण्डन-क्रिया में भाग ले सकेंगे। प्रत्यावर्तक के उपयोग से प्रतिकारी के क्रियाशील अंगों में बचत हो सकती है और यूरेनियम की आवश्यक मात्रा में कमी हो सकती है। मन्द न्यूट्रानों के प्रतिकार में ग्रेफाइट रूपी कार्बन का प्रत्यावर्तक के रूप में सफलता से उपयोग हुआ है।

प्रत्यावर्तक का एक दूसरा आवश्यक उपयोग भी है। परमाणु भट्ठी से प्रचुर मात्रा में न्यूट्रान एवं गामा-विकिरण स्वतन्त्र होते हैं। ये दोनों ही मनुष्य तथा अन्य जीवों के लिए अत्यन्त हानिकारक हैं। परमाणु-विज्ञान के कार्यकर्ताओं के लिए इनसे बचना बहुत आवश्यक है। प्रत्यावर्तक द्वारा न्यूट्रान और गामा-विकिरण की बाहर निकलने की मात्रा में बहुत कमी हो जाती है। ये मनुष्य को हानिकारक विकिरणों से बचाते हैं।

संसार की सर्वप्रथम परमाणु भट्ठी

सर्वप्रथम बनी परमाणु भट्ठी में प्राकृतिक यूरेनियम का ऊर्जा पदार्थ के रूप में उपयोग किया गया था। इस उपकरण को फर्मी के नेतृत्व में

दिसम्बर, १९४२ में बनाया गया और उसने इसका नामकरण भी किया। उसी के अनुसार इसको परमाणु पुंज कहा गया। यह भट्टी शिकागो विश्व-विद्यालय में बनायी गयी थी और इसमें ६.८ टन विशुद्ध यूरेनियम का उपयोग किया गया था।

इतना यूरेनियम पूरी भट्टी के लिए पर्याप्त न था। इस कारण इसके साथ कुछ और यूरेनियम आक्साइड का भी उपयोग किया गया था। प्राकृतिक यूरेनियम में यूरेनियम-२३५ की मात्रा केवल ०.७ प्रतिशत है। बचे २३८ समस्थानिक द्वारा न्यूट्रान अवशोषित हो जाते हैं, यह पाठक पहले ही जान चुके हैं। अतएव इस भट्टी को सफल बनाने के लिए न्यूट्रानों का क्षय सब ओर से रोकना आवश्यक था, अन्यथा पुनरुत्पादन गुणक १ से कम हो जाने की आशंका थी। इस अवस्था में प्रतिक्रिया की शृंखला न बन सकती थी। शिकागो विश्वविद्यालय में हुए प्रयोगों से पहले १९४१ में अमेरिका के कोलंबिया विश्वविद्यालय में खण्डन सम्बन्धी कुछ प्रयोग किये गये थे और भट्टी बनाने का प्रयत्न हुआ था। परन्तु उन प्रयोगों में पुनरुत्पादक गुणक एक से कम (०.८७) आया जिसके कारण भट्टी असफल रही।

कोलंबिया प्रयोगों की असफलता के कारणों पर विचार किया गया। यह पता चला कि उसमें उपयुक्त हुए यूरेनियम और ग्रेफाइट दोनों अशुद्ध थे। यद्यपि उन दोनों वस्तुओं में उपस्थित अशुद्धियाँ अधिक मात्रा में न थीं, पर बहुत-सी अशुद्धियाँ ऐसी होती हैं कि वे बहुत न्यूनमात्रा में भी हानिकारक हो सकती हैं। कुछ ऐसी वस्तुएँ हैं कि जिनका एक भाग भी यदि यूरेनियम अथवा ग्रेफाइट के दस लाख भाग में मिला हो तो वह इतने न्यूट्रान अवशोषित कर लेगी कि भट्टी ही असफल हो जाय।

अतएव सफल परमाणु भट्टी बनाने के लिए अत्यधिक शुद्ध वस्तुओं का प्रयोग करना चाहिए था। पर इतना शुद्ध यूरेनियम उस समय तक प्राप्य न था। विशेष प्रयोगशालाओं में नयी विधियों द्वारा पूर्णतया शुद्ध प्रायोगिक वस्तुएँ बनायी गयीं जिसके फलस्वरूप दिसम्बर १९४२ में सफल परमाणु भट्टी का निर्माण हो सका।

इस भट्टी में ग्रेफाइट की बड़ी बड़ी ईंटें बनायी गयीं और इन ईंटों की पतें एक के ऊपर एक करके रखी गयीं। एकान्तर पतों के बीच में यूरेनियम अथवा यूरेनियम आक्साइड के टुकड़े जमा किये गये। सारी संरचना पतों को एक दूसरे के ऊपर रखकर बनी थी। इस कारण इनको पुंज कहा गया। वैज्ञानिकों को ऐसा विश्वास था कि जिस समय पुंज बढ़ा होकर क्रांतिक आकार का हो जायगा उसी समय वह छिन्न न्यूट्रानों आदि से स्वतः आरम्भ हो जायगा और खण्डन शृंखला बन जायगी। इस कारण इस पुंज को प्रारम्भ से नियंत्रण में रखा गया था जिससे स्वतः प्रतिक्रिया शृंखला न बन पाये। इस नियंत्रण के लिए केडमियम के कुछ दण्ड पुंज के अन्दर प्रारम्भ से ही पूरी प्रकार प्रविष्ट कर दिये गये थे। यह सावधानी बड़ी लाभकारी रही क्योंकि पुंज का संक्रान्तिक आकार वैज्ञानिकों के अनुमान से पहले ही पहुँच गया। यदि केडमियम के दण्ड पूरी प्रकार प्रविष्ट न होते तो प्रतिक्रिया शृंखला अनुमान से पहले बन जाती और उस समय उसका नियंत्रण न हो पाता।

पूरे संरचन के बनने में ग्रेफाइट की छप्पन (५६) पतें लगी थीं। तत्पश्चात् केडमियम दण्डों को धीरे-धीरे बाहर निकाला गया। इसके द्वारा न्यूट्रान धीरे-धीरे अधिक मात्रा में केडमियम की पकड़ से बचने लगे और खण्डन-क्रिया में भाग लेने लगे। न्यूट्रान की मात्रा का अनुमान विशेष गणकों द्वारा किया गया था। दिनांक २ दिसम्बर, १९४२ को शिकागो विश्वविद्यालय में फुटबाल मैदान के पाताल खण्ड में बनाया हुआ पुंज क्रांतिक हो गया। इसका अर्थ हुआ कि उस उपकरण में खण्डन शृंखला संचरित हो रही थी। यह पहला अवसर था जब मानव ने स्वचालित खण्डन शृंखला क्रिया का सूत्रपात किया।

इस पुंज को पहले ०.५ वाट की शक्ति पर चलाया गया था, परन्तु शीघ्र ही उसे २०० वाट की शक्ति पर लाया गया। इस संरचना का गुणक १.०००६ था जो एक से अधिक होने के कारण खण्डन शृंखला प्रतिक्रिया को चला सकता था। परन्तु यह गुणक उस समय था जब सारे केडमियम

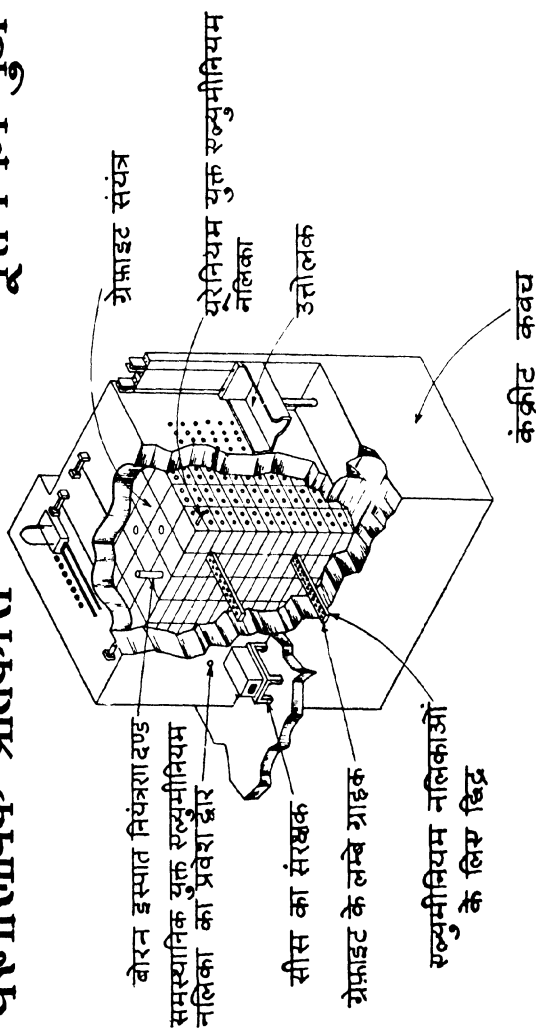
दण्ड पूर्णतया निकाल दिये जाते और न्यूट्रान लेशमात्र भी अवशोषित न किये जाते। परन्तु दण्ड का आंशिक वेधन कर गुणक को १.०००० पर रखा गया था।

पुज की शक्ति और भी बढ़ायी जा सकती थी, परन्तु ऐसा करने से विकिरण द्वारा कार्यकर्ताओं को हानि पहुँच सकती थी। १९४३ में इस पुज को उखाड़ कर शिकागो शहर के बाहर आर्गन राष्ट्रीय प्रयोगशाला में जमाया गया और साथ में कार्यकर्ताओं को विकिरण से बचाने का समुचित प्रबन्ध भी किया गया।

इसके पश्चात् अमेरिका के टेनेस्सी प्रदेश के ओकरिज नगर में बड़ी परमाणु भट्टी बनायी गयी। इसके बनाने के दो उद्देश्य थे। एक तो खण्डन-क्रिया में उपयोग और दूसरा प्लूटोनियम (परमाणु संख्या ९४) तत्त्व का कृत्रिम निर्माण। ओकरिज के प्रतिकारी में ग्रेफाइट ईंटों को धन के रूप में सजाया गया। पाठको को इस प्रतिकारी के आकार-प्रकार का अनुमान चित्र २६ से हो सकता है। ग्रेफाइट ईंटों से बने धन की एक भुजा २४ फुट है। न्यूट्रानों को अन्दर वापस करने के लिए ग्रेफाइट के प्रत्यावर्तक का उपयोग किया गया था। ग्रेफाइट धन में नियत स्थानों पर गोल छिद्र खोदे गये जिनमें यूरेनियम के दण्ड अन्दर डाले जा सकते थे। यूरेनियम को आक्सीकरण से बचाने के लिए उनके दण्डों को एल्युमिनियम के खोल पहना दिये गये थे। ग्रेफाइट धन में बनाये हुए छिद्रों का व्यास यूरेनियम के दण्डों के व्यास से थोड़ा-सा बड़ा रखा गया था। इन दोनों के बीच के स्थान में होकर वायु का आदान-प्रदान किया जा सकता था। वायु का प्रवाह प्रतिकारी के लिए आवश्यक था। इसका कारण यह था कि प्रतिकारी के क्रियाशाल होने पर उसके अन्दर बड़ी मात्रा में ऊष्मा का उदय होता है। यदि इस ऊष्मा को निकालने का प्रबन्ध न किया जाय तो वह यूरेनियम दण्डों को पिघला कर वाष्प तक बना देगी। इन छिद्रों के बीच से वायु को धौकने का प्रबन्ध रहता है जिससे यूरेनियम दण्डों का ताप २४५° से नीचे रहे।

इस शृंखला प्रतिक्रिया का नियंत्रण बोरान के दण्डों द्वारा होता है।

परमाणविक प्रतिकारी अथवा यूरेनियम पुंज



चित्र संख्या २६—परमाणविक प्रतिकारी

साथ में कुछ और दण्ड लगे रहते हैं जो दुर्घटना या अन्य आवश्यकता पड़ने पर स्वतः प्रतिकारी में प्रवेश कर जाते हैं जिससे वह तुरन्त क्रिया रहित हो सकता है। कार्यकर्ताओं को हानि से बचाने के लिए सात फुट मोटे कंकरीट कवच से प्रतिकारी को घेरा गया है जिससे हानिकारक विकिरण उनके पास तक न पहुँच सके।

ओकरिज का प्रतिकारी सत्रह वर्षों से सफलतापूर्वक कार्य करता चला आ रहा है। आजकल उसका उपयोग मूलभूत अनुसन्धान के लिए और कृत्रिम रेडियधर्मी तत्त्वों के बनाने के लिए होता है। इसकी शीतन-पद्धति बहुत अच्छी है जिसके कारण यह अड़तीस सौ किलोवाट (३८०० किवा०) की शक्ति तक कार्य कर सकता है।

प्रतिकारी के कुछ समय कार्य करने के पश्चात् यूरेनियम दण्डों को बदलना पड़ता है। यूरेनियम-२३५ खण्डन के फलस्वरूप खण्डन पदार्थ जमा होते रहते हैं। कुछ समय पश्चात् इनकी मात्रा इतनी अधिक हो जाती है कि ये खण्डन-क्रिया में रोक डालते हैं और यह आवश्यक हो जाता है कि इन यूरेनियम दण्डों को निकाल कर बदला जाय। निकाले हुए दण्डों पर रासायनिक क्रिया की जाती है जिससे उसमें से निर्मित प्लूटोनियम निकाल लिया जाय। साथ में खण्डन-क्रिया द्वारा उत्पन्न तत्त्वों को अलग करके बचे शुद्ध यूरेनियम को आगे के लिए रख लिया जाता है।

भिन्न-भिन्न तत्त्वों को अलग करने की रासायनिक विधियाँ सरल हैं, परन्तु खण्डन-क्रिया द्वारा उत्पन्न तत्त्व रेडियधर्मी होते हैं। इनकी रेडियधर्मिता कार्यकर्ताओं के लिए बड़ी हानिकारक है। इस कारण अपने बचाव के लिए ये सारी रासायनिक क्रियाएँ दूरस्थ नियन्त्रण द्वारा दूसरे कमरों से की जाती हैं। कार्यकर्ता दूर अलग कमरे में रहते हैं और दूरस्थ नियन्त्रण से क्रियाओं का नियन्त्रण करते रहते हैं। वह उन पदार्थों के सामने नहीं आते और मोटे पारदर्शी कांच अथवा प्रत्यावर्ती दर्पणों द्वारा क्रियाओं की दशाएँ देखते रहते हैं।

अनियन्त्रित शृंखला प्रतिक्रिया

परमाणु भट्टी में शृंखला प्रतिक्रिया नियमित रूप से चलती है। उसमें न्यूट्रान की मात्रा को एक सीमा पर रखते हैं। उस सीमा पर उनका गुणक १ रखा जाता है। परन्तु शृंखला प्रतिक्रिया के कई रूप हो सकते हैं। प्रतिक्रिया-प्रणाली उसकी संरचना और उसके उपयोग पर निर्भर है।

परमाणु बम में इस प्रतिक्रिया को अनियमित रखा जाता है। इस कारण उसका रूप, बनावट आदि प्रतिकारी से बिल्कुल भिन्न है। युद्ध का अस्त्र होने के नाते उसके द्वारा बड़े से बड़ा विस्फोट करना आवश्यक था जिसके कारण उसमें बहुत कम समय में ऊर्जा उदय होना चाहिए। यह परमाणु भट्टी के बिल्कुल विपरीत है।

किसी विस्फोट के लिए यह आवश्यक है कि बहुत कम समय में बड़ी मात्रा में ऊर्जा स्वतन्त्र हो। जितने कम समय और स्थान में जितनी अधिक ऊर्जा उत्पन्न होगी उतना ही बड़ा विस्फोट होगा। खण्डनीय वस्तुओं के द्वारा विस्फोट उत्पन्न करने के लिए कुछ बातें आवश्यक हैं। हम यह पहले जान चुके हैं कि यूरेनियम-२३५ खण्डनीय पदार्थ है। यूरेनियम-२३३ भी खण्डन-क्रिया में उपयोगी है, परन्तु यह समस्थानिक प्राकृतिक अवस्था में नहीं पाया जाता। यह कृत्रिम क्रियाओं द्वारा थोरियम-२३२ से बन सकता है। इसी प्रकार प्लूटोनियम-२३९ यूरेनियम-२३८ से बनता है और यह भी एक ऊर्जा तत्त्व है। इसलिए तीन पदार्थों (यूरेनियम-२३५, यूरेनियम-२३३ और प्लूटोनियम-२३९) का परमाणु बम में उपयोग हो सकता है और कदाचित् हुआ भी है। किसी शृंखला प्रतिक्रिया को चलाने के लिए ऊर्जा तत्त्व की एक विशेष संमात्रा की आवश्यकता होती है। उस संमात्रा से कम तत्त्व द्वारा शृंखला प्रतिक्रिया का चलना असम्भव है। इस विशेष संमात्रा को संक्रान्तिक संमात्रा कहते हैं। संक्रान्तिक संमात्रा का ज्ञान परमाणु भट्टी और परमाणु बम दोनों के लिए आवश्यक है। इस संमात्रा से अधिक मात्रा को पार संक्रान्तिक संमात्रा कहते हैं। ज्योंही खण्डन तत्त्व की संक्रान्तिक संमात्रा हो जायेगी उसी समय शृंखला प्रतिक्रिया प्रारम्भ

हो जायगी। उससे कम मात्रा में शृंखला न चल पायेगी। इसी कारण परमाणु बम में यूरेनियम-२३५ अथवा २३३ या प्लूटोनियम-२३९ की विमा संक्रान्तिक समात्रा से अधिक होनी चाहिए।

परमाणु भट्टी में मन्द न्यूट्रानों का उपयोग होता है, क्योंकि उसमें क्रिया को नियमित रूप से चलाना होता है। परमाणु बम में अनियमित खण्डन होता है। इस अनियमित खण्डन का एक सेकेण्ड के बहुत ही छोटे अंश में पूर्ण होना आवश्यक है। इस कारण उसमें मन्द न्यूट्रान अनावश्यक होंगे और तीव्र न्यूट्रान उपयोगी रहेंगे। मन्द न्यूट्रानों द्वारा हुआ विस्फोट बहुत हलका होगा। उस क्रिया से ऊष्मा उत्पन्न होगी जिसके कारण यूरेनियम छोटे-छोटे टुकड़ों में शीघ्र टूट जायगा। ये टुकड़े उप-संक्रान्तिक आकार के होंगे और खण्डन शृंखला को चलाने में असमर्थ होंगे। यदि यह प्रतिक्रिया बन्द स्थान में हुई तो अधिक से अधिक एक हलका विस्फोट जन्मेगा।

परमाणु बम में तीव्र न्यूट्रानों के द्वारा शृंखला का निर्वाह होगा। इस कारण उसमें कोई ऐसी वस्तु न होनी चाहिए जो न्यूट्रानों के वेग को घटाये। संयन्त्र की परमाणु बम में कोई आवश्यकता नहीं रहती और इस कारण खण्डन तत्त्व शुद्ध अवस्था में रहता है। उसमें कोई न्यूट्रान को अवशोषण करनेवाली अशुद्धियाँ न होंगी और इसके फलस्वरूप खण्डन से उत्पन्न सारे न्यूट्रान खण्डन प्रतिक्रिया में फिर काम आयेगे। इस प्रकार गुणक १ से अधिक रहेगा।

वायुमण्डल में छिन्न न्यूट्रान सदा उपस्थित रहते हैं क्योंकि अन्तरिक्ष विकिरणों के द्वारा कुछ न्यूट्रान सर्वदा उत्पन्न होते रहते हैं। इस कारण संक्रान्तिक समात्रा से अधिक मात्रा के खण्डनीय तत्त्व में शृंखला प्रतिक्रिया को रोका नहीं जा सकता। परमाणु बम में औपयोगिक खण्डनीय तत्त्व को पहले से पारसंक्रान्तिक समात्रा में इसी कारण नहीं रखते। विस्फोट होने के पहले उसे दो या उससे अधिक भागों में रखते हैं। प्रत्येक भाग संक्रान्तिक समात्रा से छोटा होता है। विस्फोट उत्पन्न करने के समय प्रत्येक भाग बड़ी तीव्रता से एक साथ लाया जाता है। इस कार्य में अतितीव्रता होनी चाहिए अन्यथा हल्का विस्फोट उत्पन्न होगा। कारण यह है कि अच्छा विस्फोट

तभी होगा जब सारे भागों के सट जाने पर प्रतिक्रिया प्रारम्भ हो। यदि ये शीघ्रता से न सटेगे तो छिन्न न्यूट्रान द्वारा प्रतिक्रिया इनके सटने से पूर्व आरम्भ हो जायगी और उत्पन्न विस्फोट द्वारा सारे भाग दूर-दूर टूटकर गिर जायेंगे। इस प्रकार का विस्फोट असामयिक और हल्का ही रहेगा।

भागों के सटाने के अनेक उपाय निकाले गये हैं। इनकी विस्तृत सूचना तो गुप्त रखी गयी है, परन्तु ऐसा ज्ञात होता है कि एक भाग को रासायनिक विस्फोट द्वारा दूसरे भाग पर लक्ष्य किया जाता है जिससे बहुत अल्प समय में वे जुड़ जायें।

परमाणु बम में प्रत्यावर्तक का भी उपयोग होता है। इनके प्रयोग से न्यूट्रानों को बाहर निकलने से रोका जाता है। प्रत्यावर्तक को न तो स्वयं न्यूट्रान अवशोषण करना चाहिए और न उनको मन्द बनाना चाहिए। इस कारण परमाणु बम में भारी तत्त्व प्रत्यावर्तक के लिए उपयुक्त होते हैं। ऊँचे परमाणु-भार और घनत्व वाले तत्त्व न तो अधिक मात्रा में न्यूट्रान अवशोषण करते हैं और न उन्हें मन्द करते हैं। प्रत्यावर्तक के रूप में भारी तत्त्व के प्रयोग का एक और लाभ है। उनके ऊँचे घनत्व के कारण विस्फोट पदार्थ के फैलने में कठिनाई होती है और विस्फोट कुछ समय के लिए बन्द रहता है जिसके कारण उनकी उत्तेजना बढ़ जाती है।

परमाणु बम में संक्रान्तिक आकार से कम यूरेनियम अथवा प्लूटोनियम का उपयोग नहीं हो सकता। इस कारण एक छोटा बम बनाना सम्भव नहीं है। प्रथम परमाणु बम का विस्फोट अमेरिका के न्यू मेक्सिको प्रदेश में हुआ था। उसके पश्चात् दो बम जापान के हिरोशिमा और नागासाकी नगरों पर गिराये गये। इन बमों का तेज बीस सहस्र (२०,०००) ट्राइ नाइट्रो टालूइन अथवा टी० एन० टी० (TNT) के समान था। तत्पश्चात् कुछ बमों का प्रयोग हवाई विस्फोट, सामुद्रिक विस्फोट और अन्तस्थलीय विस्फोट में हुआ है।

अध्याय १२

परमाणु ऊर्जा के उपयोग—१

प्रतिकारी

पिछले अध्याय में परमाणु भट्ठी का वर्णन किया गया है। यह प्रथम प्रकार का प्रतिकारी था जिसमें प्राकृतिक यूरेनियम का उपयोग हुआ था। इसके बाद शीघ्र ही अनेक प्रकार के प्रतिकारी बन गये और बनते जा रहे हैं। इन प्रतिकारियों का अनेक प्रकार से वर्गीकरण किया जा सकता है। एक तो हम उनके ईंधन की भौतिक अवस्था के आधार पर उनका वर्गीकरण कर सकते हैं। इस वर्गीकरण में दो प्रकार के प्रतिकारी हैं—(१) विषमांग प्रतिकारी तथा (२) समांग प्रतिकारी। फर्मी का परमाणु पुंज और ओकरिज की परमाणु भट्ठी विषमांग रूप की है। इस प्रकार के प्रतिकारी में ईंधन, संचयन आदि अलग-अलग रहते हैं। (२) समांग प्रतिकारी में ईंधन विलयन रूप में रहता है।

दूसरा वर्गीकरण, जो संयंत्र पर निर्भर है, ओकरिज में ग्रेफाइट संयंत्र प्रतिकारी है। प्रतिकारी में भारी जल का भी उपयोग होता है। ऐसे प्रतिकारियों को हम ड्यूरीयम आक्साइड संयंत्र प्रतिकारी कह सकते हैं। तीसरे प्रकार के प्रतिकारी में साधारणतः जल संचयन के रूप में काम आता है। इसे हम जल संयंत्र प्रतिकारी कह सकते हैं।

तीसरे प्रकार का वर्गीकरण न्यूट्रान की दशा पर निर्भर होता है। इसके अनुसार तीन प्रकार के प्रतिकारी होते हैं। एक वे जो मन्द न्यूट्रान का प्रयोग करते हैं। दूसरे प्रकार के प्रतिकारी मध्यम वेग के न्यूट्रान का

उपयोग करते हैं। तीसरी श्रेणी के प्रतिकारी तीव्र न्यूट्रानों का उपयोग करते हैं।

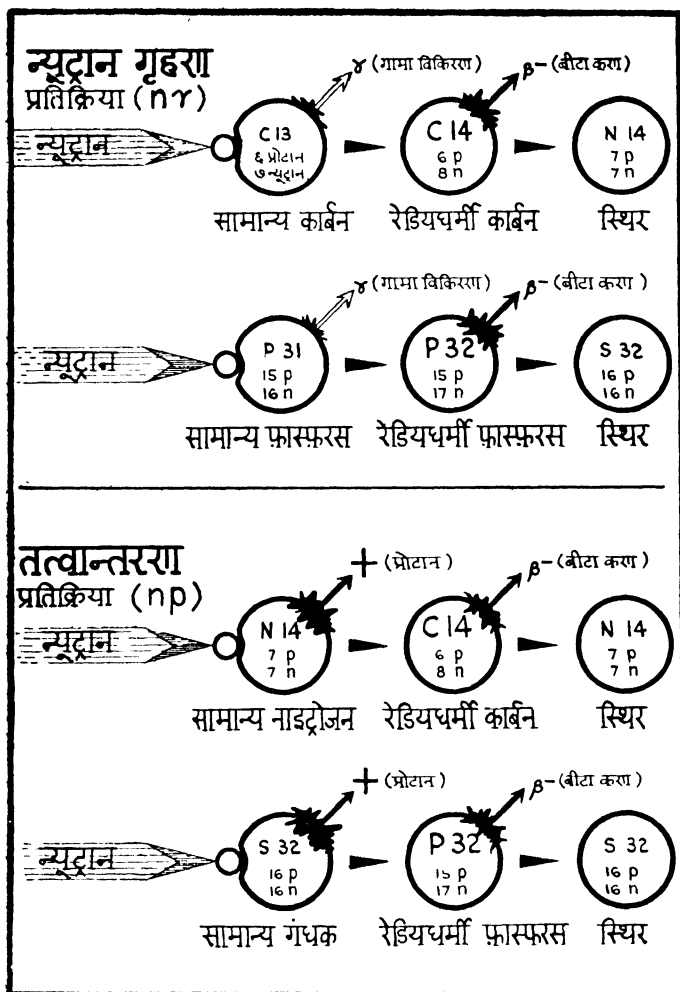
चौथे प्रकार का वर्गीकरण प्रतिकारियों की उपयोगिता पर किया जाता है। इसी वर्गीकरण के अनुसार इस अध्याय में प्रतिकारी का वर्णन किया जायगा। इसके अनुसार तीन मुख्य रूप के प्रतिकारी होते हैं। जो निम्न हैं—

१. अनुसन्धान और विकास प्रतिकारी।
२. खण्डनीय पदार्थ उत्पादक प्रतिकारी।
३. ऊर्जा उपयोगी प्रतिकारी।

अनुसन्धान और विकास प्रतिकारी

अनुसन्धान-कार्य के प्रतिकारी न्यूट्रान के बड़े उपयोगी स्रोत होते हैं। इन न्यूट्रानों का भौतिक विज्ञान के प्रयोगों आदि में बड़ा उपयोग हुआ है। प्रतिकारी द्वारा विकिरणों के गुणों की देखभाल की जाती है। इसके साथ-साथ इनके द्वारा प्रतिकारी के सिद्धान्त, न्यूट्रानों का वितरण, न्यूट्रानों का द्रव पर प्रभाव और कवच पदार्थों का अध्ययन भी होता है। आवश्यकता पड़ने पर न्यूट्रान का दण्ड प्रतिकारी उपकरण के बाहर निकाल कर उसके द्वारा और अनुसन्धान किये जाते हैं। ये न्यूट्रान आवश्यकतानुसार तीव्र अथवा मन्द स्थिति में लिये जाते हैं। न्यूट्रान के दण्ड द्वारा अनेक जीव-वैज्ञानिक तथा औद्योगिक अनुसन्धान सम्भव हो सके हैं।

अनुसन्धान प्रतिकारी द्वारा अनेक रेडियधर्मी समस्थानिक बनाये जा सकते हैं। आजकल इसी विधि द्वारा अधिकतर स्थिर तत्त्वों के अस्थिर रेडियधर्मी समस्थानिक बनते हैं। यह समस्थानिक स्थिर तत्त्वों पर न्यूट्रान के आक्रमण के फलस्वरूप तैयार किये गये हैं। न्यूट्रानों का प्रतिकारी से अधिक घना कोई स्रोत नहीं ज्ञात है। इसी कारण तत्त्वांतरण प्रतिक्रियाओं में इन प्रतिकारियों का महत्वपूर्ण हाथ है। इस क्रिया द्वारा बने समस्थानिक



औद्योगिक, चिकित्सा-सम्बन्धी वैज्ञानिक तथा कृषि-प्रयोगों में अति सफलता-पूर्वक काम आये हैं।

मुख्यतः अनुसंधान प्रतिकारी को हम दो भागों में विभाजित कर सकते हैं। पहले प्रकार के प्रतिकारी प्राकृतिक यूरेनियम का ईंधन के रूप में उपयोग करते हैं। दूसरे प्रकार के प्रतिकारी में यूरेनियम जिसमें $U-235$ समस्थानिक का प्रतिशत अधिक होता है (समृद्ध यूरेनियम) काम में आता है। इसके पश्चात् इसके और भी विभाजन हो सकते हैं। सयंत्रक के अनुसार इनके चार उपविभाग किये गये हैं।

१. ग्रेफाइट प्रतिकारी जिनमें ग्रेफाइट द्वारा संयंत्रण होता है।

२. ड्यूटीरियम जल अथवा भारी जल प्रतिकारी जिनमें ड्यूटीरियम आक्साइड का उपयोग होता है।

३. सामान्य जल जिनमें साधारण जल का संयंत्रक के रूप में उपयोग होता है।

४. समांग प्रतिकारी जिनमें ईंधन संयंत्रक में विलयित रहता है।

ग्रेफाइट प्रतिकारी

इनमें ग्रेफाइट द्वारा न्यूट्रानों को मन्द किया जाता है। शिकागो विश्वविद्यालय में फर्मी द्वारा निर्मित प्रतिकारी तथा ओकरिज का परमाणु प्रतिकारी इसी श्रेणी में आते हैं। ब्रुकहेवन राष्ट्रीय प्रयोगशाला में एक और इसी प्रकार का विशाल प्रतिकारी बना है। सोवियत संघ तथा ग्रेट ब्रिटेन में भी ऐसे प्रतिकारी बनाये गये हैं। इस श्रेणी के प्रतिकारी का वर्णन पिछले अध्याय में किया जा चुका है।

ग्रेफाइट के प्राकृतिक यूरेनियम प्रतिकारी का आकार बड़ा होता है। इस कारण इसमें लागत भी अधिक होती है। इसमें लगभग पचास (५०) टन यूरेनियम और पाँच सौ (५००) टन ग्रेफाइट लगता है। इस प्रतिकारी में उदित ऊष्मा को वायु के प्रवाह द्वारा बाहर निकाला जाता है।

बड़े आकार के प्रतिकारी के कुछ लाभ भी हैं। इसके द्वारा अधिक

अनुसंधान-कार्य सम्भव हो जाते हैं। परन्तु आजकल समृद्ध यूरेनियम प्राप्त होने के कारण ऐसे छोटे प्रतिकारी बनाना सम्भव हो गया है जिनमें लागत कम लगती है।

१९५९ के फरवरी मास में एक नये प्रकार का ग्रेफाइट प्रतिकारी तैयार हुआ जो अमेरिका के इडाहो राज्य में अनुसंधान और परीक्षण-कार्य करने के लिए उपयोग में आ रहा है। यह छोटे आकार का प्रतिकारी है जिसमें थोड़े समय में ही अधिक परमाणु खण्डित होते हैं। इसके अन्दर उच्च ऊष्मा का उदय होता है और इस ऊष्मा के फलस्वरूप वस्तुएँ द्रव्य में परिणत की जा सकती हैं। इस प्रकार उनकी जाँच भी भली-भाँति हो सकती है। इस उपकरण के अन्दर ३३७१ यूरेनियम आक्साइड के टुकड़े ग्रेफाइट के अन्दर समान रीति से फैले रहते हैं।

ड्यूटीरियम जल के प्रतिकारी

सर्वप्रथम ड्यूटीरियम जल का संयंत्रक के रूप में प्रयोग १९४४ में अमेरिका की ओरेगन राष्ट्रीय प्रयोगशाला में हुआ था। इस प्रतिकारी में भी प्रथम ग्रेफाइट पृष्ठ की भाँति प्राकृतिक यूरेनियम का उपयोग हुआ था। प्रतिकारी को ठंडा करने का प्रबन्ध ड्यूटीरियम जल द्वारा किया गया था। ड्यूटीरियम जल को प्रतिकारी के बाहर वृत्ताकार में प्रवाहित किया गया जहाँ उसको ठंडा किया जाता था। कुछ समय पश्चात् इस प्रतिकारी को अपदस्थ कर दिया गया और इसके स्थान पर दूसरे नये प्रतिकारी की स्थापना हुई।

नये प्रतिकारी ने १९५४ में कार्य करना प्रारम्भ किया। इसमें प्राकृतिक यूरेनियम के स्थान पर समृद्ध यूरेनियम (जिसमें यूरेनियम-२३५ की मात्रा प्राकृतिक यूरेनियम से अधिक रहती है) का उपयोग हुआ। इसमें संयंत्रण और प्रशीतन दोनों ही कार्य ड्यूटीरियम जल अथवा भारी जल द्वारा होते हैं।

ईंधन के स्थान पर यूरेनियम एल्यूमीनियम संकर की पट्टिकाओं को

जोड़कर एक आयताकार नली के अन्दर रखते हैं। ऐसी अनेक नलियाँ प्रतिकारी के मध्य भाग में व्यवस्थित रखी जाती हैं जिनके कारण मध्य भाग का आकार एक ऐसे बेलन की भाँति हो जाता है जिसका व्यास दो फुट और ऊँचाई भी दो फुट हो। प्रत्येक नली को पृथक् रखा तथा निकाला जाता है, क्योंकि इससे उनके विस्थापन में सुविधा रहती है। प्रतिकारी में ऐसी बारह नलियाँ रखी जाने का प्रबन्ध है। ये पाँच समानान्तर पंक्तियों में रखी जाती हैं। इन पंक्तियों के मध्य में चार नियंत्रण दण्ड रखे रहते हैं। ये दण्ड बड़ी मात्रा में न्यूट्रान का अवशोषण कर सकते हैं। इस कारण इन्हें सुरक्षा-दण्ड भी कहते हैं। एक पाँचवाँ दण्ड ईंधन संगठन के बाहर, परन्तु निकट, लगाया गया है जो बहुत सूक्ष्म इकाई मात्रा में निकाला या डाला जा सकता है। इसे नियामक दण्ड भी कहते हैं।

प्रत्येक नली के अन्दर भारी जल नीचे की ओर से प्रवेश कर ऊपर के मार्ग से निकल जाता है। यह ईंधन संघट्टन को ठंडा करने के लिए उपयोगी होता है। इसके साथ ही यह संघट्टन भारी जल की टंकी में डूबा रहता है। इस प्रकार १५ प्रतिशत जल हर ईंधन नली के अन्दर घूमता है और बाकी टंकी में रहता है। भारी जल की टंकी के नीचे की ओर से एक नली द्वारा बाहर निकालने का प्रबन्ध रहता है जिससे वह प्राप्त ऊष्मा बाहर के सामान्य जल को दे सके।

भारी जल के भाग में अनेक नलियाँ प्रवेश करती हैं। इन नलियों द्वारा अनेक वस्तुएँ मध्य भाग के अन्दर प्रयोगों के लिए रखी जा सकती हैं। इस भाग में प्रचुर मात्रा में न्यूट्रानों की उपलब्धि होती है। भारी जल की टंकी के चारों ओर २ फुट मोटी ग्रेफाइट की तह रहती है। इस स्थान को भी अनुसंधान-कार्य में उपयोजित करते हैं। ग्रेफाइट के चारों ओर भीमकाय कवच द्वारा न्यूट्रान और गामा-विकिरण अवशोषित होते हैं। इस कवच में प्रथम बोरान कार्बाइड की तह और तत्पश्चात् सीसे की तह लगायी जाती है। बोरान कार्बाइड द्वारा न्यूट्रान और सीसे द्वारा गामा

विकिरण अवशोषित होते हैं। सीसे की तह के पश्चात् ५६ इंच मोटा विशेष कंक्रीट का कवच लगा रहता है। इस प्रकार पूरे कवच की मोटाई ५ फुट होती है। बाहर से प्रतिकारी का आकार ऐसे अष्टमुखी प्रिज्म की भाँति होता है जो बीस फुट चौड़ा और साढ़े तेरह फुट ऊँचा हो।

भारी जल को ठंडा करने का विशाल प्रबन्ध है। पहले इस जल को अकलुष इस्पात की बनी नली द्वारा पाताल खण्ड में ले जाते हैं। सात सहस्र (७०००) किलोग्राम से अधिक भारी जल इसी नली द्वारा जाता है। इस जल की नली को ठंडे जल के बीच से प्रवाहित किया जाता है। साथ में आयन विनिमय रेजिन द्वारा इसकी शुद्धि की जाती है। यह शुद्धि आवश्यक है क्योंकि खण्डन-प्रतिक्रिया में अनेक वेगवान् कण इस जल में प्रवेश करते रहते हैं।

ड्यूटीरियम प्रतिकारी ग्रेफाइट भट्टी द्वारा नियंत्रणार्थ सुलभ एवं उत्तम होते हैं। हाँ, इनको बन्द करने में ग्रेफाइट प्रतिकारी की अपेक्षा समय अधिक लगता है। इसका कारण यह है कि ड्यूटीरियम तथा प्रबल गामा-विकिरण की प्रतिक्रिया के कारण कुछ गौण न्यूट्रान उत्पन्न हो जाते हैं जो खण्डनक्रिया बन्द होने के कुछ समय पश्चात् तक उठते रहते हैं।

न्यूट्रान ग्रेफाइट की अपेक्षा भारी जल में एक चौथाई समय में ही मन्द हो जाते हैं। इस कारण ड्यूटीरियम आक्साइड संयंत्र की बहुत कम मात्रा में आवश्यकता पड़ती है। इसीलिए समान शक्ति वाले प्रतिकारी का आकार ग्रेफाइट पंज की अपेक्षा छोटा होता है।

कनाडा में चाक रिवर पर भारी जल के दो प्रतिकारी कार्य कर रहे हैं जिनमें प्राकृतिक यूरेनियम का उपयोग होता है। फ्रांस में भी इसी प्रकार का एक प्रतिकारी कार्य कर रहा है। भारत में प्रथम परमाणु भट्टी १९५६ में चालू हुई थी। इसका नाम “अप्सरा” रखा गया। इसमें यूरेनियम-एल्यूमीनियम की मिश्र धातु का ईंधन के रूप में उपयोग हुआ है। दूसरी कनाडा-इंडिया प्रतिकारी परमाणु भट्टी कनाडा की सहायता से १० जुलाई, १९६० में चालू हो गयी है। इसका रूप कनाडा की चाक रिवर पर कार्य करने वाले

एन० आर० एक्स' प्रतिकारी के समान है। यह ऐसा अत्यन्त वेगवान् उपकरण है जिसके द्वारा अनेक प्रकार के रेडियधर्मी समस्थानिक बनाये जा सकेंगे। तीसरा प्रतिकारी जरीलीना' शीघ्र ही तैयार होने वाला है। इसमें १५ टन भारी पानी की आवश्यकता होगी जो अमेरिका परमाणु ऊर्जा आयोग से प्राप्त होगा।

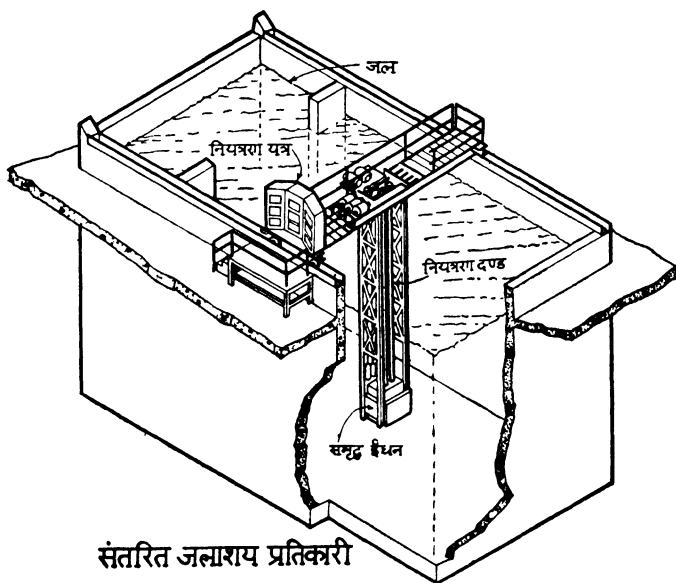
सामान्य जल प्रतिकारी

सामान्य जल परमाणु प्रतिकारी में साधारण जल का सयत्रक एवं शीतलक के रूप में उपयोग करते हैं। यही जल कवच का भी कार्य करता है। इसका बाह्य संचरण बहुत सरल होता है जैसा चित्र २८ द्वारा देखा जा सकता है। इसमें ईंधन के सघटन को पानी की टकी में डुबो कर रखते हैं। इस प्रकार के प्रतिकारी का नाम जलाशय प्रतिकारी भी है। यह सस्ता एवं सुरक्षित है और सरलता से चलाया जा सकता है।

इस प्रकार का प्रतिकारी सर्वप्रथम दिसम्बर, १९५० में ओकरिज, अमेरिका में बनाया गया था। इसी का एक परिवर्द्धित रूप १९५५ में 'परमाणु शक्ति के शांतिपूर्ण उपयोगों की जेनीवा कान्फ्रेंस' में अमेरिका की ओर से रखा गया था। इसका नाम सतरित जलाशय प्रतिकारी^१ रखा गया। जन-साधारण में उसी समय से इसकी ख्याति है। इसी के आधार पर बने प्रतिकारी इस समय अनेक विश्वविद्यालयों, औद्योगिक कार्यालयों तथा अनुसन्धानशालाओं में कार्य कर रहे हैं। भारत का सर्वप्रथम परमाणु प्रतिकारी इसी नियम के आधार पर बना है। इस प्रतिकारी के प्रत्येक अंग

1. N. R. X.
2. Zero Energy Reactor for Lattice Investigations and Neutron Analysis
3. Swimming pool reaction

तक सरलता से पहुँचा जा सकता है। इस कारण इसके द्वारा अनेक प्रकार के अनुसन्धान-कार्य जो अन्य परमाणु भट्टियों द्वारा सम्भव न थे, अब सम्भव



चित्र संख्या २८—संतरित जलाशय प्रतिकारी

हो सकते हैं। इसके द्वारा अनेक जीवों में होने वाली प्रतिक्रियाओं की खोज हुई है। विकिरणों के हानिपूर्ण प्रभावों पर भी सरलता से अनुसन्धान हो सकते हैं। यदि पानी में एक लम्बी नली डाली जाय तो उसके मध्य से न्यूट्रान दण्ड मिल जायगा। इतनी सरलता से अन्य प्रतिकारी से न्यूट्रान दण्ड नहीं मिल सकता। इस दण्ड के द्वारा न्यूट्रान-वर्तन-प्रयोग भी सम्भव हो सके हैं।

इसके द्वारा विशेषकर अल्प अर्धजीवन अवधि के रेडियोधर्मी समस्थानिक तैयार हो सके हैं।

इस प्रतिकारी में समृद्ध यूरेनियम का ईंधन के रूप में प्रयोग होता है। यूरेनियम की प्लेटों पर दोनों ओर एल्यूमीनियम का मुलम्मा चढ़ा दिया जाता है। इस प्रकार की अनेक प्लेटों को जमा कर रखते हैं। इन प्लेटों के बीच में थोड़ा रिक्त स्थान छोड़ देते हैं। इन प्लेटों के बंडल को जल की टकी में गहरा डुबो देने पर प्लेटों के मध्य रिक्त स्थानों में जल चक्कर लगाता है। इस प्रकार जल यूरेनियम प्लेटों को शीतल रखता है और साथ में सयंत्रक का भी कार्य करता है। जल, कवच एवं प्रत्यावर्तक के रूप में भी उपयोगी होता है। ईंधन के निकट नियंत्रण दण्ड लगे रहते हैं।

यूरेनियम प्लेटों के बंडल की लम्बाई-चौड़ाई लगभग ३८ से०मी० एवं ४६ से०मी० होती है और ऊँचाई ६० से०मी०। यह निश्चित माप नहीं है। प्लेटों की व्यवस्था बदलने पर इनमें अन्तर आ सकता है। इस बंडल को प्रतिकारी टकी में एक दिशा में आगे-पीछे हटा सकते हैं। इसके सस्ते होने का एक और कारण यह है कि इसमें बाहर से ठंडा करने का कोई प्रबन्ध नहीं होता। ऊष्मा, जल द्वारा सवाहित होकर स्वतः हटती रहती है। जल के उपयोग करने से सारा उपकरण दृश्य रहता है। इससे विद्यार्थियों एवं वैज्ञानिकों को उसका कार्य समझने में सरलता रहती है। विखण्डन पदार्थ यूरेनियम प्लेटों में लगे रहते हैं और जल पर उनका कोई प्रभाव नहीं पड़ता।

जलाशय लगभग १२ मीटर लम्बा, ६ मीटर चौड़ा और ६ मीटर गहरा होता है। इसके आधार में कंक्रीट के बड़े-बड़े टुकड़े लगे रहते हैं जिन्हें बाहर निकाला जा सकता है।

यूरेनियम के बंडल एक फ्रेम द्वारा जल में लटकाये जाते हैं। यह फ्रेम एक रेल द्वारा सरकाया जा सकता है। प्रतिकारी में दो सुरक्षा-दण्ड लगे रहते हैं जिन्हें ऊपर या नीचे किया जा सकता है। सीस और बोरान कार्बाइड के मिश्रण को एल्यूमीनियम की नली में भरकर इनका नियंत्रण दंडों के रूप में किया जाता है।

जेनीवा कान्फ्रेंस में दिखाया गया सतरित-जलाशय प्रतिकारी इसी

का एक परिवर्द्धित रूप था। इसमें छोटी टंकी लगायी गयी थी। प्रतिकारी को टंकी के मध्य में एक स्थान पर जमाया गया था और उसको हटाने का कोई प्रबन्ध नहीं था। यूरेनियम प्लेटो, नियत्रण दण्डो आदि को आधार से साध कर रखा गया था। उन्हें ऊपर से नहीं लटकाया गया। इसके अतिरिक्त सारे सिद्धान्त वही थे जो ऊपर बताये गये हैं।

सामान्य जल का पदार्थ परीक्षक प्रतिकारी

सर्वप्रथम यह प्रतिकारी अमेरिका के इडाहो राज्य में विशेष कार्यों के लिए बना। इसके द्वारा नमूने पर परमाणु आक्रमण का प्रभाव देखा जा सकता है। इन प्रयोगों द्वारा अनेक उपयोगी बातें ज्ञात हुई हैं। परमाणु ऊर्जा में काम आने वाली वस्तुओं की बनावट, विकिरण कवच आदि के बारे में आवश्यक सूचनाएँ इस प्रतिकारी द्वारा मिली हैं। इस प्रतिकारी द्वारा धातुओं से लेकर, खाद्य वस्तुओं तथा छोटे-छोटे जीवाणुओं पर होने वाला विकिरण प्रभाव देखा गया है।

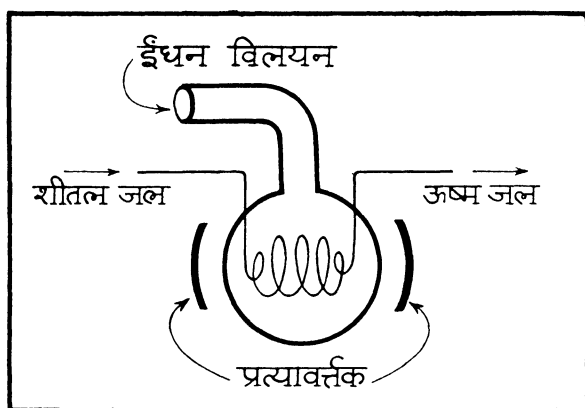
जलाशय प्रतिकारी की भाँति इस प्रतिकारी में भी समृद्ध यूरेनियम का उपयोग होता है। इसमें बेरीलियम धातु का प्रत्यावर्तक रहता है जो यूरेनियम को चारों ओर से ढके रहता है। यूरेनियम तथा बेरीलियम जल की गोल टंकी में डूबे रहते हैं। यह टंकी गोल और ऊँची होती है जिसे दोनों ओर से सीसे की डाट द्वारा बन्द रखा जाता है। विभिन्न स्थानों पर १०० से अधिक छिद्र बने रहते हैं जिनके द्वारा वस्तुएँ प्रयोगों के निमित्त डाली जा सकती हैं।

इस उपकरण द्वारा तीव्र तथा मन्द दोनों प्रकार के न्यूट्रान प्रयोग के लिए मिलते हैं। परमाणु अनुसन्धानों के लिए दोनों प्रकार के न्यूट्रानों की आवश्यकता पड़ती है। बहुत-से ऐसे विरल समस्थानिक जिनका बनना अन्य प्रतिकारियों द्वारा सम्भव न था, इस प्रतिकारी द्वारा बन सके। यह उपकरण अनेक मूलभूत अनुसन्धानों में काम आया है और इस समय भी आ रहा है।

समांग प्रतिकारी

समृद्ध यूरेनियम का सर्वप्रथम उपयोग इसी प्रकार के प्रतिकारियों में हुआ था। इन्हें सामान्यतः जल-वाष्पित्र कहते हैं। इनमें यूरेनियम सल्फेट या नाइट्रेट के जल-विलयन का ईंधन के रूप में प्रयोग होता है। इस उपकरण में संयंत्रक तथा विलायक दोनों का कार्य जल ही करता है। यूरेनियम-२३५ के खण्डन से ऊष्मा का उदय होने के कारण जल का ताप बढ़ जाता है। इसी कारण इसको जल-वाष्पित्र कहते हैं।

निष्कलंक इस्पात का लगभग ३० से०मी० का गोला प्रतिकारी के सक्रिय भाग का कार्य करता है। इस गोले में यूरेनियम विलयन रखा जाता



चित्र संख्या २९—प्रशीतन कुंडली द्वारा ऊष्मा को बाहर ले जाते हैं

है। खण्डन द्वारा उत्पन्न ऊष्मा को एक प्रशीतन कुंडली द्वारा बाहर ले जाते हैं। चित्र द्वारा पाठकों को इसका अनुमान हो सकता है। यह कुंडली गोले के अन्दर सर्पिल मार्ग से होती हुई जाती है जिसमें होकर जल का प्रवाह होता है। शीघ्रता से प्रवाह करने पर ऊष्मा को अधिक मात्रा में बाहर भेजा जा सकता है। समांग प्रतिकारी में प्लूटोनियम-२३९ के विलयन का

उपयोग भी सम्भव है। और बहुत स्थानों में उसका प्रयोग किया जा रहा है।

बेरीलियम या कोई अन्य वस्तु (जैसे ग्रेफाइट) प्रत्यावर्तक के रूप में गोले को चारों ओर से घेरे रहती है जिससे उत्पन्न होने वाले न्यूट्रान बाहर न जाने पाये। अन्य प्रतिकारी की भाँति इसमें भी कंक्रीट कवच, नियंत्रण-दण्ड आदि यथास्थान लगे रहते हैं। समाग प्रतिकारी को तीव्र न्यूट्रान द्वारा भी चलाया जा सकता है। उस अवस्था में यह तीव्र न्यूट्रानों के तीव्र दण्ड उत्पन्न करता है जो अनुसन्धानों में प्रयुक्त किये जाते हैं। कुछ प्रतिकारियों में सर्पिल नली द्वारा जल के स्थान पर अन्य द्रव (जैसे द्रव धातु) को प्रवाहित करते हैं जिससे उन्हें ऊँचे ताप पर चलाया जा सके।

आजकल अनेक देशों में समाग प्रतिकारी कार्य कर रहे हैं। अमेरिका के अलावा टोकियो, जापान में तथा फ्रैंकफर्ट और पश्चिमी बर्लिन, जर्मनी में इसी प्रकार के प्रतिकारी लगे हैं।

१९६० के प्रारम्भ में अमेरिका की राजधानी वाशिंगटन में वाल्टर रीड अस्पताल में इसी प्रकार के प्रतिकारी ने कार्य आरम्भ कर दिया है। इस प्रतिकारी का सक्रिय भाग निष्कलंक इस्पात का बना है जो ४० से०मी० व्यास का गोला है। इसमें समृद्ध यूरेनियम (यूरेनियम-२३५ समस्थानिक) सल्फेट के विलयन का प्रयोग हुआ है। सक्रिय भाग के चारों ओर ग्रेफाइट की ईंटे उसे घेरे हैं जो प्रत्यावर्तक का कार्य करती हैं। गोले के अन्दर निष्कलंक इस्पात की अत्यन्त लम्बी सर्पिल नली घूमती है जिसमें शीतल शुद्ध जल का प्रवाह होता है। इस जल द्वारा सक्रिय भाग की ऊष्मा बाहर स्थानान्तरित होती है। इस प्रतिकारी में तीव्र वेग के विकिरण प्राप्त होंगे। इसमें १ सहस्र अरब (10^{22}) मन्द न्यूट्रान प्रति वर्ग से०मी० प्रति सेकेंड प्राप्त हो सकेंगे। न्यूट्रान रहित शक्तिशाली गामा-विकिरण (१ लाख रंटजन प्रति घंटा) भी इसके द्वारा उपलब्ध हो गये हैं। इतने शक्तिशाली प्रतिकारी द्वारा चिकित्सा-कार्य करने के लिए रेडियधर्मी समस्थानिक सरलता से मिलने लगे हैं।

बहुत-से औद्योगिक निगम आजकल इसी प्रकार के छोटे प्रतिकारी बना रहे हैं जो विद्यालयों तथा अस्पतालों में बिना कठिनाई के लगाये गये हैं। ऐसी आशा की जाती है कि शीघ्र ही समांग प्रतिकारी संसार के कोने कोने में फैल जायेंगे।

संप्रजनक प्रतिकारी

खण्डनीय पदार्थ उत्पादक प्रतिकारी

उत्पादक प्रतिकारी के द्वारा खण्डनीय पदार्थ उत्पन्न होता है। साधारण यूरेनियम में केवल ०.७ प्रतिशत ^{235}U समस्थानिक रहता है। केवल यही समस्थानिक प्रतिक्रिया शृंखला को चला सकता है। यद्यपि यूरेनियम- ^{238}U समस्थानिक अति तीव्र न्यूट्रॉन द्वारा खण्डित हो जाता है, परन्तु वह साधारण अवस्था में शृंखला नहीं चला सकता।

यूरेनियम- ^{238}U से प्लूटोनियम- ^{239}Pu बन सकता है जो स्वयं खण्डनीय पदार्थ है। इस कारण यूरेनियम- ^{238}U स्वयं ईंधन न होकर प्रतिकारी में ईंधन का निर्माण कर सकता है। ऐसी वस्तु को उपजाऊ पदार्थ कहा जायगा।

इसी प्रकार थोरियम- ^{232}Th को प्रतिकारी में रखने पर उससे यूरेनियम- ^{233}U का निर्माण होता है। थोरियम- ^{232}Th को भी हम उपजाऊ वस्तु कह सकते हैं।

साधारण प्रतिकारी में कुछ न्यूट्रॉनो द्वारा यूरेनियम- ^{238}U से प्लूटोनियम- ^{239}Pu का निर्माण हो जाता है। इस प्रकार यूरेनियम- ^{235}U खण्डित होकर अपने स्थान पर कुछ मात्रा में और खण्डनीय पदार्थ उत्पन्न कर देता है। साधारणतया प्लूटोनियम बनने की मात्रा यूरेनियम- ^{235}U के क्षय की मात्रा से कम होती है जिससे विखण्डनीय तत्त्व कम हो जाता है।

यदि किसी प्रतिक्रिया में उत्पन्न प्लूटोनियम की मात्रा क्षय होने वाले यूरेनियम से अधिक हो तो उसे संप्रजनक प्रतिकारी कहा जायगा। इस प्रतिक्रिया द्वारा खण्डनीय पदार्थ की मात्रा बढ़ायी जा सकती है। यह प्रति-

क्रिया दो रूपों में सम्भव हो सकती है, एक यूरेनियम २३८ द्वारा और दूसरी थोरियम-२३२ द्वारा। दोनों के द्वारा खण्डनीय पदार्थ बनना सम्भव है।

अनेक सैद्धान्तिक अनुसन्धानों के पश्चात् अमेरिका के परमाणु ऊर्जा अनुदान ने १९५२ में एक संप्रजनक प्रतिकारी का निर्माण कराया। उस पर एक वर्ष अनुसंधान करने के पश्चात् सिद्ध हो गया कि संप्रजनक प्रतिक्रिया सम्भव है। इसमें यूरेनियम-२३५ को ईंधन के रूप में लिया गया जिसे साधारण यूरेनियम द्वारा चारों ओर से घेर लिया गया। द्रव धातु द्वारा (सोडियम-पोटैशियम संकर) प्रतिकारी की ऊष्मा को बाहर ले जाने का प्रबन्ध किया गया। खण्डन-क्रिया द्वारा उत्पन्न न्यूट्रान घेरे हुए यूरेनियम-२३८ पर आक्रमण कर उसे प्लूटोनियम में परिणत करते हैं। इसको रासायनिक क्रिया द्वारा अलग किया जा सकता है। इसी प्रकार थोरियम द्वारा ईंधन को घेरने से यूरेनियम-२३३ का निर्माण होगा।

संप्रजनक प्रतिकारी पर अभी और अनुसंधान हो रहे हैं जिनके फल पूर्णतया जन-साधारण को ज्ञात नहीं है। यदि यह क्रिया पूर्णतया सम्भव हो सकी तो मनुष्य को प्राप्त ऊर्जा का भण्डार सैकड़ों गुना बढ़ जायगा। यूरेनियम के एक छोटे भाग (०.७ प्रतिशत यूरेनियम-२३५) के स्थान पर मनुष्य समूचे यूरेनियम और थोरियम को उपयोग में ला सकेगा।

शक्ति प्रतिकारी

हम यह देख चुके हैं कि परमाणु-खण्डन क्रियाओं द्वारा विकिरण एवं ऊर्जा दोनों स्वतन्त्र होते हैं। लोगों का विचार है कि भविष्य में परमाणु ऊर्जा का सबसे बड़ा उपयोग ऊर्जा-उत्पत्ति में ही होगा।

हम परमाणु द्वारा ऊर्जा-उत्पादन क्यों चाहते हैं? इसका कारण यह है कि परमाणु द्वारा ऊष्मा बड़ी सान्द्र अवस्था में स्वतन्त्र होती है। वैज्ञानिकों ने परिगणन किया है कि एक किलोग्राम यूरेनियम द्वारा उतनी ही ऊर्जा उत्पन्न होगी जितनी तीस लाख किलोग्राम कोयले को जलाने

से तैयार होती है। इस कारण इस ओर बड़ी तीव्र गति से कार्य हो रहा है।

परमाणु-ऊर्जा के शांतिपूर्ण उपयोगों के सम्बन्ध में प्रथम सम्मेलन १९५५ में जेनीवा में हुआ। इसमें लगभग ८० देशों ने भाग लिया। उस समय तक विश्व में केवल एक परमाणु-ऊर्जा द्वारा चलित विद्युत-घर कार्य कर रहा था। यह विद्युत-घर-सोवियत संघ में मास्को से कुछ दूर मेलोयारो-स्लेवेट्स नामक स्थान के निकट स्थित है। इसके द्वारा जून २७, १९५४ से पाँच हजार किलोवाट (५,००० किबो०) विद्युत् मिलने लगी। इसी काल के लगभग संयुक्तराष्ट्र अमेरिका में भी ऊर्जा उत्पादन पर कार्य हो रहा था। ओकरिज राष्ट्रीय अनुसन्धानशाला में प्रयोगात्मक रूप से १९५३ में विद्युत् उत्पादन हुआ था।

तीन वर्ष पश्चात् जेनीवा के द्वितीय सम्मेलन के समय तक इस ओर आशातीत उन्नति हुई। इस तीन वर्ष के काल में ग्रेट ब्रिटेन में ससार का सबसे बड़ा परमाणु-ऊर्जा द्वारा चालित विद्युत-घर कैलंडर हाल कार्य करने लगा। द्वितीय सम्मेलन में यह ज्ञात हुआ कि उस समय तक २४ स्थानों में परमाणु भट्ठी द्वारा विद्युत् उत्पादन हो चुका था और १२ देशों में ४६ अन्य विद्युत-घर बनाये जा रहे हैं।

परमाणु-खण्डन से उत्पन्न ऊर्जा विद्युत् के उत्पादन के अतिरिक्त अन्य उपयोगों में भी आ रही है। इसके द्वारा अनेक पनडुब्बी नावे विश्व का चक्कर लगा चुकी हैं। शीघ्र ही बड़े-बड़े जहाज परमाणु ऊर्जा द्वारा चलेगे और भविष्य में रेलें, वायुयान, मोटरे आदि परमाणु ऊर्जा द्वारा चालित होंगी।

इन सब कार्यों के लिए परमाणु खण्डन द्वारा उत्पन्न ऊष्मा का उपयोग हुआ करता है। इस ऊष्मा को काम में लाने के लिए विशेष प्रकार की परमाणु भट्टियों की आवश्यकता होती है। इन भट्टियों अथवा प्रतिकारियों को शक्ति-प्रतिकारी कहा जाता है। ये भट्टियाँ अनेक श्रेणियों में रखी जाती हैं जिनमें मुख्य निम्नलिखित हैं।

१. गैस शीतलीकृत प्रतिकारी^१
२. दाबित जल प्रतिकारी^२
३. जल-वाष्पित्र प्रतिकारी^३
४. कार्बनिक शीतलीकृत प्रतिकारी^४
५. सोडियम शीतलीकृत प्रतिकारी^५
६. द्रव ईंधन अथवा समांग प्रतिकारी^६
७. प्रत्यक्ष परिवर्तक प्रतिकारी^७
८. तीव्र सप्रजनक प्रतिकारी^८

कुछ अन्य प्रतिकारियों पर भी अनुसन्धान-कार्य हो रहा है और ये कई स्थानों पर कार्य भी कर रहे हैं। उनमें ऊपर बतायी हुई श्रेणियों से कुछ हेरफेर है। उनका यथास्थान वर्णन किया जायगा। ऊपर बताये प्रत्येक प्रकार के प्रतिकारी द्वारा प्रायोगिक रूप से ऊर्जा प्राप्त हो चुकी है तथा कुछ का उपयोग विद्युत्-घरो में हो रहा है। इस समय ग्रेट ब्रिटेन परमाणु द्वारा विद्युत् प्राप्त करने में ससार में सबसे आगे है यद्यपि अमेरिका तथा सोवियत रूस में भी तीव्रता से कार्य हो रहा है। ब्रिटेन का केल्वर हाल विद्युत्-घर गैस शीतलीकृत प्रतिकारी का उपयोग कर रहा है जिसका वर्णन नीचे दिया जा रहा है।

1. Gas cooled reactor
2. Pressurized water reactor
3. Water boiler reactor
4. Organic cooled reactor
5. Sodium cooled reactor
6. Liquid fuel or homogeneous reactor
7. Direct conversion reactor
8. Fast breeder reactor

गैस शीतलीकृत प्रतिकारी

इस प्रतिकारी का सर्वप्रथम उपयोग केल्डर हाल के विद्युत्-घर में हुआ था। इसके नीचे चार परमाणु भट्टियाँ हैं। दो भट्टियाँ केल्डर हाल ए(A) और दो भट्टियाँ केल्डर हाल बी(B) के नाम से प्रसिद्ध हैं। ए(A) की दोनों भट्टियों ने १९५६ से कार्यारम्भ कर दिया है और बी(B) की भट्टियों को १९५८ के अन्त में तैयार किया गया था। इस प्रकार इस समय केल्डर हाल पावर हाउस में चार परमाणु भट्टियाँ अथवा प्रतिकारी कार्य कर रहे हैं। स्काट-लैण्ड में चैपल क्रॉस नामक शक्ति-घर परमाणु-ऊर्जा से चल रहा है। इसकी दो परमाणु भट्टियाँ १९५९ से कार्य कर रही हैं। दो अन्य भट्टियाँ शीघ्र ही तैयार हो जायेगी। कुछ और स्थानों में भी शीघ्र ही परमाणु ऊर्जा द्वारा विद्युत् मिलेगी।

इन सब भट्टियों में गैस-शीतलीकृत प्रतिकारियों का ही उपयोग हो रहा है। इस प्रतिकारी में प्राकृतिक यूरेनियम ही काम आता है। इसमें यूरेनियम के दण्डों को मेगनीशियम की पर्त से ढककर काम में लाया जाता है। और ग्रेफाइट द्वारा न्यूट्रानों का संयंत्रण करते हैं। प्रतिकारी मन्द न्यूट्रानों द्वारा चालित होते हैं तथा बोरान-इस्पात के नियंत्रण दण्ड काम आते हैं। परमाणु खण्डन द्वारा उत्पन्न ऊष्मा को कार्बन डाइआक्साइड गैस द्वारा बाहर लाते हैं। प्रतिकारी के नीचे से 180° सेन्टीग्रेड पर कार्बन डाइआक्साइड उसमें प्रवेश करती है और ऊपर की ओर से 336° से० पर बाहर निकलती है। यह गैस ऊष्मा विनिमायक द्वारा घूमकर फिर नीचे की ओर प्रतिकारी में प्रवेश करती है। ऊष्मा विनिमायक द्वारा कार्बन डी-आक्साइड की ऊष्मा जल में प्रवेश कर उसको वाष्प में परिणत करती है। यह वाष्प टरबाइन द्वारा विद्युत् उत्पादन के काम आती है। प्रतिकारी द्वारा बानवे सहस्र किलोवाट (१२,००० किवा०) विद्युत् उत्पन्न करने का प्रबन्ध है यद्यपि केवल पचहत्तर सहस्र (७५,०००) किलोवाट विद्युत् उत्पन्न हो रही है। इस प्रकार चार प्रतिकारी एक लाख पचास सहस्र (१,५०,०००) किलोवाट विद्युत् उत्पन्न कर रहे हैं।

इस प्रतिकारी द्वारा एक यूरेनियम-२३५ परमाणु के खण्डन के फलस्वरूप ०.८ प्लूटोनियम परमाणु उत्पन्न होते हैं। इस कारण यह ऊष्मा व्यय करने के साथ कुछ नया ईंधन भी बनाता है।

फ्रांस में प्रथम विद्युत् ऊर्जा प्रतिकारी ने जनवरी, १९५६ से कार्यारम्भ कर दिया है। यह प्रतिकारी ब्रिटेन की भाँति गैस-शीतलीकृत विधि से विद्युत् उत्पन्न कर रहा है। जुलाई, १९५८ से इसी प्रकार का द्वितीय प्रतिकारी ऊर्जा उत्पन्न कर रहा है। १९५९ में दो और प्रतिकारी विद्युत् उत्पन्न करने लग गये हैं। इस प्रकार फ्रांस भी परमाणु ऊर्जा-उत्पादन की ओर तेजी से अग्रसर हो रहा है।

दाबित जल प्रतिकारी

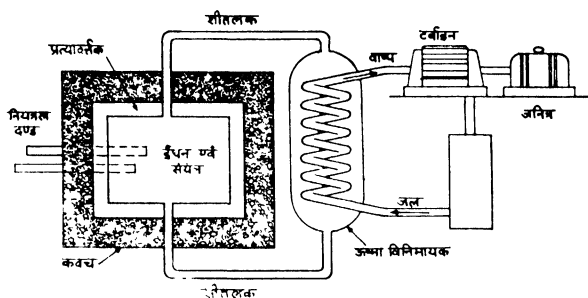
दाबित जल परमाणु भट्ठी का अमेरिका में सविस्तर उपयोग हुआ है। १९५१ में इस प्रकार के प्रतिकारी पर कार्यारम्भ हुआ। उस समय यह कार्य पनडुब्बी नावों को बनाने के हेतु हो रहा था। मई, १९५३ में इस प्रतिकारी ने सर्वप्रथम ऊर्जा उत्पन्न की थी। तत्पश्चात् इसी रूप का प्रतिकारी अमेरिका में नाटिलस^१ और स्केट^२ नामक पनडुब्बियों पर लगाया गया जिसके द्वारा उन्होंने लाखों मील की समुद्र यात्रा की है। जनवरी १९५५ में नाटिलस ने अपनी सर्वप्रथम यात्रा प्रारम्भ की थी।

दाबित जल प्रतिकारी अमेरिका के सर्वप्रथम परमाणु-ऊर्जा द्वारा चालित जहाज 'सेवानाह' में लगाया जा रहा है। सोवियत रूस में बना सर्वप्रथम परमाणु-ऊर्जा-चालित पोत 'लेनिन' हिमभंजक में तीन दाबित जल प्रतिकारी लगे हैं। इस प्रतिकारी का ऊर्जा-उत्पादन हेतु मुख्य उपयोग अमेरिका के पेंसिलवेनिया राज्य में शिपिंगपोर्ट नामक स्थान में किया गया है। इसके पहले से ही वर्जीनिया राज्य में एक छोटा प्रतिकारी इसी उद्देश्य

से कार्य कर रहा है। वर्जीनिया का प्रतिकारी मई १९५७ में तैयार हुआ था और शिपिंगपोर्ट का दिसम्बर, १९५७ में, यद्यपि इसका समारम्भ उत्सव मई १९५८ में हुआ।

दाबित जल प्रतिकारी के दो भाग होते हैं। एक भाग को हम मुख्य भाग कह सकते हैं जिसमें परमाणु भट्ठी स्थित रहती है। इस भट्ठी द्वारा ऊष्मा का उत्पादन होता है। दूसरे को जिस पर ऊष्मा-स्थानान्तरण होता है, गौण भाग कहा जा सकता है। यह स्थानान्तरित ऊष्मा वाष्प टरबाइन को चलाने के उपयोग में आती है जिससे विद्युत्-उत्पादन होता है। प्राथमिक प्रणाली पर जल को पम्प से नालियों द्वारा भेजते हैं। ये जल की नालियाँ परमाणु भट्ठी के ईंधन के अन्दर और चारों ओर फैली रहती हैं। इनके द्वारा जल के प्रवाहित होने से भट्ठी की ऊष्मा जल में आती है जिसके पश्चात् भट्ठी से बाहर जाने वाला जल द्वितीयक प्रणाली में जाकर इस प्रणाली में प्रवाहित जल को ऊष्मा प्रदान कर देता है।

इस उपकरण में एक विशेषता है। इसकी प्राथमिक प्रणाली को अत्यन्त ऊँचे दबाव पर रखा जाता है। इस दबाव के कारण जल उबलने



चित्र संख्या ३०—दाबित जल प्रतिकारी

नहीं पाता और ऊँचे ताप पर प्रवाहित होता है। द्वितीयक प्रणाली को हलके दबाव पर रखते हैं। जिस समय द्वितीयक जल ऊष्मा ग्रहण करता है,

वह हलके दबाव के कारण वाष्प बन कर टरबाइन को चालित कर देता है।

प्राथमिक जल का द्वितीयक जल में संमिश्रण नहीं हो सकता। यदि परमाणु भट्ठी के द्वारा कुछ रेडियधर्मिता प्रारम्भिक जल तक पहुँच जाय तो वह द्वितीयक जल में न जाने पायेगी। इस प्रकार वातावरण शुद्ध रहेगा।

दाबित जल के दो काम हैं। यह भट्ठी की ऊष्मा को ग्रहण तो करता ही है, किन्तु साथ में न्यूट्रानों को मन्द करने का कार्य भी इसी के द्वारा होता है। यही कारण है कि इस जल को वाष्पित नहीं होने दिया जाता। यदि प्राथमिक जल से वाष्प बनेगी तो वह न्यूट्रानों को मन्द न कर सकेगी।

इस उपकरण में एक और विशेषता रहती है जिसके कारण प्रतिकारी समान स्तर की ऊर्जा उत्पादित करने की क्षमता रखता है। यदि किसी कारणवश भट्ठी में प्रवेश करने वाले जल का ताप घट जाय तो भट्ठी से उत्पादित ऊष्मा स्वतः बढ़ जायगी जिससे उससे निकलते समय जल का ताप फिर ठीक स्तर पर आ जायगा।

शिपिंगपोर्ट विद्युत्-स्टेशन में हेफनियम तत्त्व के नियंत्रण दण्ड लगाये गये हैं जिन्हें आवश्यकतानुसार बाहर या अन्दर किया जा सकता है। स्वीडन में दो विद्युत्-स्टेशन बन रहे हैं जिनमें जल के स्थान पर दाबित ड्यूटीरियम जल अथवा भारी जल का उपयोग होगा।

जल-वाष्पित्र प्रतिकारी

जल-वाष्पित्र प्रतिकारी पर कुछ वर्षों से अमेरिका में बहुत अनुसंधान एवं कार्य हुआ है। १९५४ में इस दिशा में कार्य आरम्भ हुआ था। १९५७ में एक छोटा विद्युत्-स्टेशन शिकागो नगर के निकट आर्गन राष्ट्रीय प्रयोग-शाला में बनाया गया जिसके द्वारा पाँच सहस्र (५०००) किलोवाट विद्युत् का उत्पादन हो सकता था। इसकी सफलता से उत्साहित होकर एक दूसरे विशाल परमाणु-ऊर्जा द्वारा चालित विद्युत्-स्टेशन की योजना बनायी गयी। विद्युत् स्टेशन शिकागो नगर से ५० मील दूर ड्रेस्डन पर बनाया

गया है। इस स्टेशन द्वारा एक लाख अस्सी सहस्र (१,८०,०००) किलोवाट विद्युत् ऊर्जा प्राप्त हो सकेगी।

जिस समय ड्रेन्डन विद्युत् स्टेशन बनाने की योजना की स्वीकृति हुई थी उसी समय यह भी निर्णय हुआ कि एक अन्य उसी नमूने का छोटा विद्युत्-स्टेशन बनाया जाय जिससे उसकी सारी कठिनाइयो एव लाभो का अनुभव हो सके। जून, १९५६ में केलीफोर्निया राज्य में प्लेजेन्टन नामक स्थान पर 'वेलीसिटोस् जल-वाष्पित्र प्रतिकारी' पर कार्यारम्भ हुआ और एक वर्ष में सारा कार्य समाप्त भी हो गया। अक्टूबर, १९५७ में यह परमाणु भट्ठी विद्युत् देने लगी। योजना के अनुसार इस भट्ठी के द्वारा चार सहस्र पाँच सौ (४,५००) किलोवाट विद्युत् ऊर्जा का उत्पादन होना था, परन्तु बनने के पश्चात् इससे छः सहस्र पाँच सौ (६,५००) किलोवाट विद्युत् उत्पादित हो सकती थी यद्यपि केवल पाँच सहस्र दो सौ (५,२००) किलोवाट का ही उत्पादन किया गया।

जल-वाष्पित्र परमाणु भट्ठी के ईंधन (समृद्ध यूरेनियम) की प्लेटों को सामान्य जल में डुबोते हैं। खण्डन-प्रतिक्रिया द्वारा उत्पन्न ऊष्मा, जल को गर्म करती है। जल न्यूट्रानों को मन्द करता है तथा परमाणु भट्ठी द्वारा उत्पन्न ऊष्मा को अवशोषित करता है। इस जल को प्रवाहित करने का प्रबन्ध रहता है। प्रवाहित गर्म जल तथा वाष्प का समिश्रण प्रतिकारी के बाहर निकलता है, जिसको एक पूर्ववर्ती बेलनाकार बर्तन में ले जाते हैं और वाष्प को निकाल कर टरबाइन चलाने के कार्य में लाते हैं। बर्तन के बचे जल को द्वितीयक वाष्प-उत्पादको द्वारा नलियों से प्रविष्ट कराते हैं, जिससे इन उत्पादको में उपस्थित द्वितीयक जल वाष्प बन जाये। इस उत्पन्न वाष्प को भी टरबाइन चलाने के काम लाया जाता है। प्राथमिक जल वाष्प-उत्पादकों से होता हुआ प्रतिकारी में फिर लौट जाता है।

1. Vallecitos Boiling Water Reactor

ट्रेसडन विद्युत्-स्टेशन की परमाणु भट्ठी का व्यास ३.८ मीटर और ऊंचाई १३ मीटर है। भट्ठी का बाहरी ढाँचा कार्बन इस्पात का बना है। ईंधन के लिए ६५ टन यूरेनियम का उपयोग होगा। ऐसी आशा की जाती है कि यह ईंधन ३१ वर्ष चलेगा। प्रतिकारी द्वारा लगभग नब्बे सहस्र (९०,०००) गैलन जल सर्वदा प्रवाहित होता रहेगा। ट्रेसडन परमाणु भट्ठी से एक लाख अस्सी सहस्र (१,८०,०००) किलोवाट विद्युत् उत्पादन की योजना है। इतनी विद्युत् तैयार करने के लिए एक सहस्र सात सौ (१,७००) टन कोयले की रोज आवश्यकता पड़ती।

ट्रेसडन परमाणु भट्ठी १५ अक्टूबर, १९५९ से कार्य करने लगी है। आशा है कि इससे विद्युत् ऊर्जा का उत्पादन शीघ्र ही होने लगेगा।

१९५९ से नार्वे में जल-वाष्पित्र प्रतिकारी सफलतापूर्वक कार्य कर रहा है। इसके द्वारा लगभग पाँच सहस्र (५,०००) किलोवाट विद्युत् बनती है।

इसी प्रकार एक अन्य प्रतिकारी पश्चिमी जर्मनी में बन रहा है जो पन्द्रह सहस्र (१५,०००) किलोवाट विद्युत् उत्पन्न करेगा।

कार्बनिक शीतलीकृत प्रतिकारी

इस प्रकार की परमाणु भट्ठी में कार्बनिक द्रवों का उपयोग होता है। कार्बनिक द्रव प्रतिकारी की ऊष्मा ग्रहण करते हैं, न्यूट्रानों को मन्द करते हैं और हानिकारक विकिरणों को बाहर जाने से रोकते हैं। यही द्रव न्यूट्रानों को प्रत्यावर्तित भी करते हैं जिससे वे बाहर न जाने पायें।

कार्बनिक प्रतिकारी द्वारा ऊँचे दबाव पर वाष्प सरलता से बनाया जा सकता है। कार्बनिक द्रव अधिक संक्षरण उत्पन्न नहीं करते। इनके ये दो मुख्य लाभ हैं जिनके कारण इन प्रतिकारियों को बनाने का कार्य द्रुतगति से हो रहा है। इन विचारों की पुष्टि करने के लिए प्रायोगिक रूप से एक कार्बनिक प्रतिकारी अमेरिका के इडाहो राज्य में १९५७ से कार्य कर रहा

है। इस प्रतिकारी में टेट्राफिनाइल द्रव का उपयोग होता है। इस सफल प्रयोग के कारण बड़े परमाणु विद्युत् पर बनाने की एक योजना बनायी गयी है जिसके अनुसार अमेरिका के ओहियो राज्य में पिका^१ नामक स्थान पर कार्बनिक शीतलीकृत प्रतिकारी बनेगा।

कार्बनिक शीतलीकृत प्रतिकारी एक बेलनाकार टकी में बन्द रहते हैं। इस टकी में ईंधन (यूरेनियम), नियत्रण दंड, न्यूट्रान स्रोत तथा कार्बनिक द्रव (हाइड्रो-कार्बन) स्थित रहते हैं। कार्बनिक द्रव परमाणु भट्ठी से उत्पन्न ऊष्मा लेता है। इस द्रव को पंप द्वारा बाहर जाने तथा अन्दर आने का प्रबन्ध किया जाता है। बाहर जाने के लिए अनेक छोटे-छोटे फंदे बने रहते हैं। प्रत्येक फंदे में एक पम्प के द्वारा द्रव बाहर खींचते हैं और वाष्प उत्पादन विभाग में ले जाते हैं। अन्त में ठंडा कार्बनिक द्रव प्रतिकारी में लौट जाता है।

प्रतिकारी के अन्दर कार्बनिक द्रव का कुछ बहुलीकरण होने की सम्भावना होती है। इस कारण द्रव की एक पतली धार शीतलक प्रणाली से निकाल कर बाहर ले जाते हैं। इस निकले हुए द्रव से बहुलीकृत अंश अलग करने पर स्वच्छ हाइड्रोकार्बन फिर प्रतिकारी में लौट जाता है। इस क्रिया से कुछ हाइड्रोकार्बन का व्यय होने के कारण नवीन द्रव को आवश्यकतानुसार प्रतिकारी में डाला जाता है।

औद्योगिक प्रयोगों से ज्ञात हुआ है कि कार्बनिक शीतलीकृत प्रतिकारी भारी तैल ले जाने वाले जहाज में प्रयुक्त होगा। पश्चिमी जर्मनी में इस पर प्रयोग हो रहे हैं। आशा है कि कुछ समय पश्चात् चालीस सहस्र (४०,०००) टन भार का टैंकर इस परमाणु भट्ठी द्वारा चलेगा। इस प्रतिकारी के द्वारा जहाज चलाने के लिए दस सहस्र (१०,०००) अश्व शक्ति (हार्स पावर) ऊर्जा उत्पादित होगी। साथ में यही प्रतिकारी जहाज के सारे कार्यों के लिए विद्युत् तथा वाष्प भी उत्पन्न करेगा।

1. Tetraphenyl

2. Picqua

सोडियम शीतलीकृत प्रतिकारी

इस प्रतिकारी में द्रव सोडियम का शीतलक के रूप में प्रयोग किया गया है। सोडियम ऊष्मा को बहुत शीघ्र ग्रहण करता और दान देता है। इसी गुण के कारण इसके प्रयोग सफल रहे हैं।

इस प्रतिकारी के साथ ड्यूटीरियम जल का सयंत्रक के रूप में उपयोग होगा। ड्यूटीरियम बहुत उत्तम सयंत्रक है और न्यूट्रानो का बहुत न्यून मात्रा में अवशोषण करता है। इस कारण इन दोनों के संयोग से उत्तम गुण वाले प्रतिकारी बन सकते हैं जो प्राकृतिक यूरेनियम से चालित होंगे।

प्रारम्भिक प्रयोगों द्वारा ज्ञात हुआ है कि सोडियम और जल को अलग रखा जा सकता है। यदि सावधानी बरती जाये तो वे आपस में प्रतिक्रिया नहीं कर सकेंगे। इस प्रतिकारी में मन्द तथा तीव्र दोनों प्रकार के न्यूट्रान उपयोगी हो जायेंगे। सोडियम प्रतिकारी का प्रयोग एक अमेरिकन पनडुब्बी नाव सीवुल्फ पर हो चुका है। सोडियम ड्यूटीरियम प्रतिकारी के प्रयोगों के निरीक्षणों से यह सिद्ध हो गया है कि इस प्रकार की परमाणु भट्ठी अल्प व्यय से चालित हो सकती है।

अमेरिका की जेनरल इलेक्ट्रिक क० ने दूसरे रूप के सोडियम प्रतिकारी बनाने में उन्नति की है। उनके प्रयोगों में बेरीलियम-ग्रेफाइट द्वारा न्यूट्रानो को मन्द किया गया है। उन्होंने थोरियम-यूरेनियम-२३२ मिश्रण का सफलता से प्रयोग किया है। ऐसी आशा है कि इस रूप की परमाणु भट्ठी भी भविष्य में विद्युत्-उत्पादन में उपयोगी हो सकेगी।

द्रव ईंधन अथवा समांग प्रतिकारी

इस प्रतिकारी में यूरेनियम के यौगिक का द्रव रूप में प्रयोग होगा। इस रूप की परमाणु भट्ठी पर प्रयोग किये गये हैं। इन प्रयोगों से सिद्ध हो चुका है कि यह अति स्थिर भट्ठी है जिसमें नियंत्रण दंडों के बिना भी काम चल सकता है।

इसमें यूरेनियम सल्फेट तथा फास्फेट का ईंधन के रूप में उपयोग हो

चुका है। परीक्षा-प्रयोगों से ज्ञात हुआ है कि एक बार बनाया हुआ ईंधन दो वर्ष तक चल सकता है। समृद्ध यूरेनियम का प्रयोग करना आवश्यक मालूम होता है।

प्रत्यक्ष परिवर्तक प्रतिकारी

कुछ वर्षों से अनुसन्धानशालाओं में ऊष्मा को विद्युत् में परिवर्तन करने के सफल प्रयोग हो रहे हैं। १९५८ से तो ऐसा ज्ञात होने लगा है कि शीघ्र ही इन प्रयोगों को औद्योगिक रूप दिया जा सकेगा। ऊष्मा द्वारा प्रत्यक्ष विद्युत् उत्पादन के दो मार्ग हो सकते हैं। एक ताप आयनिक और दूसरा तापवैद्युत। प्रथम मार्ग इस समय अधिक उत्साहजनक ज्ञात होता है। इस क्रिया द्वारा दो विद्युदगों के बीच यदि दोनों का ताप भिन्न स्तर पर हो तो विद्युत् उत्पादन होता है। इस प्रक्रिया द्वारा ऊष्मा ऊर्जा का २५ से ३० प्रतिशत भाग विद्युत् में परिवर्तित हो सकता है जो सामान्य विद्युत्-स्टेशनों की क्षमता के समान है।

अभी इस प्रकार के प्रतिकारी पर प्रारम्भिक प्रयोग चल रहे हैं। अनुमान है कि इसमें यूरेनियम ऑक्साइड अथवा कार्बाइड का ईंधन के रूप में प्रयोग होगा। इसमें २०००° सेन्टीग्रेड का ताप उत्पन्न होगा जो ताप-आयनिक विधि के द्वारा विद्युत् उत्पन्न करेगा। इस उपकरण में कुछ ऊष्मा बच जाने की आशा है जिसे वाष्प उत्पन्न करने के काम में लाया जा सकेगा। इस प्रकार ऐसे प्रतिकारी द्वारा ताप-आयनिक और जल-वाष्प दोनों विधियों से विद्युत् बनने की आशा की जा सकती है।

ताप-आयनिक सिद्धान्त के उपयोगी अनुसन्धान अमेरिका के परमाणु ऊर्जा आयोग द्वारा लॉस एलेमॉस^१, न्यू मेक्सिको राज्य में किये जा रहे हैं।

1. Los Alamos

तीव्र संप्रजनक

इस प्रतिकारी की बनावट अन्य प्रतिकारी से भिन्न होगी क्योंकि इसमें तीव्र न्यूट्रानो का उपयोग किया जायगा। इसीलिए इस प्रतिकारी में संयंत्र की आवश्यकता न होगी। साथ में इस परमाणु भट्ठी में एक नये ईंधन प्लूटोनियम-२३९ की भी समुचित मात्रा में उत्पत्ति होती रहेगी। ईंधन की समाप्ति के बाद प्रतिकारी को बन्द कर उसमें नया ईंधन बदल कर रखा जाता है। इस अवस्था में पुराने ईंधन से रासायनिक क्रियाओं द्वारा प्लूटोनियम निकाला जा सकेगा। प्लूटोनियम स्वयं एक विखण्डनीय पदार्थ है। उपर्युक्त प्रयोगों के बाद उसका ईंधन के रूप में प्रयोग हो सकेगा। इसी कारण इस प्रतिकारी को संप्रजनक कहते हैं क्योंकि उसमें ईंधन का व्यय होने के साथ-साथ समुचित मात्रा में नया ईंधन बनता रहता है।

संप्रजनक प्रतिकारी में थोरियम का प्रयोग करने की वैज्ञानिकों की योजना है। थोरियम २३२ पर न्यूट्रान प्रतिक्रिया के फलस्वरूप यूरेनियम २३३ बनेगा जो स्वयं एक विखण्डनीय पदार्थ है और आगे ईंधन के काम आयेगा।

इस सिद्धान्त का उपयोग कर एक विशाल संप्रजनक प्रतिकारी विद्युत्-स्टेशन अमेरिका के मिशिगन राज्य में बन रहा है। ऐसी आशा थी कि इस पर निर्माण कार्य १९६० के लगभग समाप्त हो जायगा और १९६१ में इस स्टेशन द्वारा विद्युत् मिल सकेगी। इस प्रतिकारी को प्रसिद्ध परमाणु वैज्ञानिक स्वर्गीय एन्रिको फर्मी के नाम से पुकारा जायगा। विद्युत्-स्टेशन डेट्रॉइट शहर से ३५ मील दक्षिण-पूर्व की दिशा में लैलूना बीच नामक स्थान पर स्थित है। इसके द्वारा एक लाख (१,००,०००) किलोवाट विद्युत् का निर्माण होगा। साथ में प्रचुर मात्रा में नया ईंधन भी बनेगा।

सोवियत संघ में ऊर्जा प्रतिकारी पर कार्य

यह हम पहले बता चुके हैं कि ससार का सर्वप्रथम परमाणु ऊर्जा से चालित विद्युत्-स्टेशन सोवियत संघ में बना। यह स्टेशन मास्को से कुछ दूर

मेलोयारोस्लावेट्स शहर के निकट ओवनिस्क नामक स्थान पर स्थित है। इस स्टेशन ने २७ जून, १९५४ से कार्य करना प्रारम्भ किया।

इसकी परमाणु भट्ठी में यूरेनियम-खण्डन से उत्पन्न न्यूट्रान कार्बन द्वारा मन्द किये जाते हैं। खण्डन-क्रिया द्वारा उदित ऊष्मा से भट्ठी गर्म होती है। इसको सामान्य जल के चक्रण द्वारा ठंडा करते हैं। जल के चक्रित होने के कारण भट्ठी की ऊष्मा बाहर उपयोग में आती है। खण्डन प्रतिक्रिया द्वारा बड़ी मात्रा में न्यूट्रान स्वतंत्र होते हैं। क्रिया को नियंत्रण में रखने के हेतु बोरान कार्बाइड के नियंत्रण दंड काम में लाये गये हैं।

भट्ठी को ठंडा करने वाला जल एक बन्द परिपथ में घूमता है। इस परिपथ के दूसरी ओर एक ऊष्मा विनिमायक है जो भट्ठी से आये जल की ऊष्मा ग्रहण कर अपने अन्दर के जल से वाष्प उत्पन्न करता है। यही वाष्प टरबाइन द्वारा विद्युत् बनाती है। कार्यकर्त्ताओं को हानिकारक विकिरणों से बचाने के लिए प्रतिकारी को इस्पात के बेलन में बन्द रखा गया है। इसके चारों ओर एक मीटर जल की मोटी तह है और उसके चारों ओर तीन मीटर मोटी कंक्रीट की तह लगायी गयी है।

सोवियत यूनियन की विज्ञप्तियों से ज्ञात हुआ है कि सितम्बर, १९५८ में एक लाख (१,००,०००) किलोवाट विद्युत् ऊर्जा के स्टेशन ने कार्य आरम्भ कर दिया। यह स्टेशन साइबेरिया के किसी स्थान पर कार्य कर रहा है, स्थान का नाम सोवियत सरकार ने गुप्त रखा है। पहले स्टेशन की भाँति ही इसमें भी ग्रेफाइट द्वारा न्यूट्रान मन्द किये जाते हैं और सामान्य जल द्वारा प्रतिकारी की ऊष्मा बाहर उपयोग के निमित्त ले जायी जाती है। उनके अनुसार उसी स्थान पर ५ प्रतिकारी और बनाये जायेंगे जिनके द्वारा छ लाख (६,००,०००) किलोवाट विद्युत् उत्पन्न हो सकेगी।

दाबित जल प्रतिकारी पर रूस में बहुत कार्य हुआ है जो लगभग अमेरिकन अनुसन्धान कार्यों की भाँति है। संप्रजनक प्रतिकारी के कार्य में

ऐसा अनुमान है कि रूस के वैज्ञानिक अमेरिका से आगे बढ़ गये हैं। इस समय सोवियत सघ में लगभग १० स्थानों पर परमाणु ऊर्जा विद्युत्-स्टेशन बनाये जा रहे हैं। इनके अनुमानित स्थान एवं रूप निम्न है—

श्रेणी	अनुमानित विद्युत उत्पादन; अनुमानित स्थान	
१. ग्रेफाइट- सामान्य जल	१ लाख किवा० के चार प्रतिकारी (यूराल पर्वत) (कुल ऊर्जा ४ लाख किवा०)	
२. दाबित सामान्य जल	२ लाख किवा० के दो प्रतिकारी (मास्को से ३०० मील (कुल ऊर्जा ४ लाख किवा०) दक्षिण)	वोरोनेज
३. दाबित सामान्य जल	२ लाख किवा० के दो प्रतिकारी (कुल ऊर्जा ४ लाख किवा०)	लेनिनग्राड
४. जल वाष्पित्र	५० सहस्र किवा०	उल्यानाव
५. समांग (जल विलयन)	३५ सहस्र किवा०	वाँल्गा नदी पर
६. ग्रेफाइट-तरल सोडियम	५० सहस्र किवा०	वाँल्गा नदी पर
७. तीव्र संप्रजनक-तरल सोडियम	५० सहस्र किवा०	वाँल्गा नदी पर
८. तीव्र संप्रजनक-तरल सोडियम	२ लाख ५० सहस्र किवा०	गोपनीय
९. चल-दाबित जल	दो सहस्र किवा०	ओवर्निस्क

भारत में परमाणु विद्युत् उत्पादन पर कार्य

भारत की तृतीय पंचवर्षीय योजना के अंतर्गत ३ परमाणु विद्युत् स्टेशन बनाये जायेंगे। प्रथम स्टेशन महाराष्ट्र प्रदेश के तारपोर नगर में बनाया जायगा जिसके १९६४ तक पूर्ण होने की आशा है। इस स्टेशन द्वारा दो लाख पचीस हजार (२,२५,०००) किलोवाट विद्युत् का उत्पादन होगा। ऐसा अनुमान है कि प्रथम ऊर्जा स्टेशन के बनाने में लगभग ४५ करोड़ रुपये व्यय होंगे।

उसी प्रकार के दूसरे दो विद्युत्-स्टेशन तृतीय पंचवर्षीय योजना-काल में बनेंगे। उसमें एक स्टेशन राजस्थान और दूसरा दक्षिणी भारत में बनेगा। भारतीय परमाणु ऊर्जा आयोग के अध्यक्ष श्री होमी जहांगीर भाभा के अनुसार प्रथम ऊर्जा स्टेशन से उत्पादित विद्युत् की लागत चार (४) नये पैसे प्रति यूनिट (किलोवाट घंटा) होगी। पाँच वर्ष पश्चात् यह लागत घटकर दो (२) नये पैसे प्रति यूनिट हो जायगी।

प्रथम विद्युत्-स्टेशन के स्थापित करने के लिए प्रारम्भिक कार्य प्रारम्भ हो गया है। इस कार्य को सफलता से पूर्ण करने के लिए ट्राम्बे में स्थित अनुसन्धान प्रतिकारी 'अप्सरा' तथा 'कनाडाइंडिया' चालू हो चुके हैं। आशा की जाती है कि तृतीय प्रतिकारी 'जरलीना' शीघ्र ही बन जायेगा। इस परमाणु भट्ठी के बनने में लगभग नौ करोड़ (९,००,००,०००) रुपये व्यय होंगे।

इन परमाणु भट्ठियों में ड्यूटीरियम ऑक्साइड अथवा भारी जल की, सयंत्रक के रूप में, आवश्यकता होगी। अभी भारी जल की पूर्ति बाह्य स्रोतों द्वारा होगी। परन्तु भारत सरकार भारत में इसके उत्पादन का प्रबन्ध शीघ्र ही कर रही है। पंजाब के नंगल स्थान पर भारी जल उपजाने का यंत्र बनाया जा रहा है। इस यंत्र में हाइड्रोजन आसवन द्वारा भारी जल का निर्माण होगा। इसके द्वारा १४ टन भारी जल प्रतिवर्ष बनाने की योजना है।

अध्याय १३

परमाणु ऊर्जा के उपयोग-२

यातायात (जहाज)

यातायात में परमाणु ऊर्जा के उपयोग का प्रारम्भ १९५९ में हुआ जबकि सोवियत संघ के लेनिनग्राड बंदरगाह में परमाणु ऊर्जा द्वारा चालित जहाज “लेनिन” तैयार हुआ। इस जहाज ने सितम्बर, १९५९ में अपनी प्रथम सामुद्रिक यात्रा सफलतापूर्वक पूरी की। इस की यात्रा बाल्टिक सागर के बर्फीले स्थानों में हुई थी।

‘लेनिन’ का भार सोलह सहस्र (१६,०००) टन है। इसके इंजिन चवालीस सहस्र (४४,०००) हॉर्स पावर की ऊर्जा उत्पन्न करेंगे। इसकी परमाणु भट्टियों द्वारा इतनी ऊर्जा उत्पन्न होगी कि जहाज एक वर्ष तक समुद्र में बिना ईंधन लिये रह सकेगा। इसकी बनावट इस प्रकार की है कि यह बर्फीली मोटी तहों को चीरता हुआ समुद्र में यात्रा कर सकता है।

इस जहाज में तीन परमाणु भट्टियां लगायी गयी है। प्रत्येक भट्ठी दाबित जल प्रतिकारी श्रेणी की है। जल द्वारा प्रतिकारी की ऊष्मा ऊर्जा में परिणत की जाती है और साथ में जल ही न्यूट्रानों को मन्द भी करता है। प्रत्येक भट्ठी के साथ अलग-अलग वाष्प-जनित्र लगे हुए है। इन तीनों जनित्रों द्वारा अतितप्त वाष्प उत्पन्न होती है। यह वाष्प चार टर्बो-जनित्रों में बाँटी जाती है। प्रत्येक टर्बो-जनित्र से ग्यारह सहस्र (११,०००) हॉर्स पावर ऊर्जा का उत्पादन होता है। प्रत्येक टर्बो जनित्र डिष्ट (डी. सी.) विद्युत्-धारा उत्पन्न करते है। यह विद्युत्-धारा बिजली की मोटरों को घुमाती

है जिनके द्वारा नोदक दंड चलायमान होते हैं। थोड़ी मात्रा में वाष्प एक दूसरी टर्बाइन द्वारा प्रत्यावर्ती (ए. सी.) विद्युत्-धारा उत्पन्न करती है जिसे जहाज के अन्य सामान्य उपयोगों में लाया जाता है।

परमाणु भट्ठी से निकलने वाले हानिकारक विकिरणों से बचाव का समुचित प्रबन्ध किया गया है। इस बचाव के लिए लौह, जल और कक्रीट कवच भट्ठी के चारों ओर लगाये गये हैं। रेडियधर्मी पदार्थों से बचने का समुचित प्रबन्ध किया गया है। भट्ठी के चारों ओर की वायु को अत्यन्त ऊँची खोखली चिमनी द्वारा बाहर निकाला जाता है। यदि किसी समय प्रतिकारी के प्रायोगिक जल को बदलना हो तो उसे ठंडा कर और विनिमय-रेजिनों द्वारा छान कर समुद्र में फेंका जायगा जिससे हानिकारक रेडियधर्मी पदार्थ समुद्र में न पहुँचे। 'लेनिन' १८ नाट प्रति घंटे की गति से सामान्य जल में चल सकता है। बर्फ को चीरते हुए वह २ नाट प्रति घंटे की गति से चलता है।

समुक्त राष्ट्र अमेरिका में इस समय परमाणु ऊर्जा द्वारा चालित दो जहाज बन रहे थे। प्रथम जहाज, सेवानाह, व्यापारिक जहाज है जो १९६० के लगभग तैयार हुआ। दूसरा युद्ध पोत लाग बीच १९६१ में तैयार होने को था।

सेवानाह जहाज बनाने का प्रारम्भ २२ मई, १९५८ से हुआ। २१ जुलाई, १९५९ को इसका सारा ढाँचा तैयार हो गया और इसे जल में तैरा दिया गया। पुस्तक लिखते समय इसकी परमाणु भट्ठी पर कार्य हो रहा था। शीघ्र ही वे जहाज में लगा दिये जाने को थी।

इस जहाज की लम्बाई १८० मीटर है। यह समुद्र में २० नाट की गति से चल सकेगा और साढ़े नौ सहस्र (९,५००) टन सामान लाद सकेगा। इसमें ६० यात्रियों के ठहरने का स्थान बना है तथा १०० नाविक इस पर कार्य करेंगे। इसका भार बीस सहस्र (२०,०००) टन होगा।

सेवानाह जहाज को दाबित जल प्रतिकारी द्वारा ऊर्जा प्राप्त होगी जिसमें समृद्ध यूरेनियम का प्रयोग होगा। प्रतिकारी में एक बार लगे

यूरेनियम के दण्ड जहाज को तीन वर्ष तक चला सकेंगे जिनसे वह बिना ईंधन लिये तीन लाख (३,००,०००) मील यात्रा कर सकेगा। जहाज की पूरी लागत बीस करोड़ (२०,००,०००००) रुपये होगी। सेवानाह जहाज में लगी परमाणु भट्ठी के सारे उपकरण बेलनाकार बर्तन में रखे गये हैं जिसका व्यास ११ मीटर और ऊंचाई १५ मीटर है।

परमाणु भट्ठी के सक्रिय भाग में ईंधन के ३२ दण्ड हैं। प्रत्येक दण्ड में निष्कलक इस्पात की २०० नलियाँ स्थित हैं। प्रत्येक नली का व्यास १३ सेमी० है जिसमें यूरेनियम आक्साइड भरा गया है। इस यूरेनियम आक्साइड में यूरेनियम-२३५ समस्थानिक ४ प्रतिशत मात्रा में है। मध्यभाग में, बोरान इस्पात के २१ नियंत्रण दण्ड भी हैं जो यथासमय काम आयेगे। इस प्रतिकारी द्वारा दो वाष्प जनित्र काम करेंगे जो नोदक को बाइस सहस्र (२२,०००) हार्स पावर की ऊर्जा देंगे। इन दोनों जनित्रों द्वारा नोदक की टर्बाइन तथा एक विद्युत् जनित्र टर्बाइन कार्य करेंगी। दूसरी टर्बाइन से विद्युत् का उत्पादन होगा जो जहाज के अन्य कामों में आयेगी।

इस प्रतिकारी द्वारा हानिकारक विकिरणों से बचने का समुचित प्रबन्ध किया गया है। भट्ठी तथा दाब-पात्रों से चारों ओर ८४ से० मी० मोटा जल-कवच और उसके ऊपर ८ से० मी० मोटा सीसे का कवच लगाया गया है। इसके ऊपर १५ सेमी० मोटा सीसा तथा १५ सेमी० मोटा पालीएथीलीन का दूसरा कवच रखा गया है। इन दोनों कवचों के चारों ओर और भी प्रबन्ध किये गये हैं। नीचे की ओर १.२ मीटर कंक्रीट की दीवार बनायी गयी है और ऊपर की ओर १.५ मीटर गहरे जल का घेरा डाला गया है। इस प्रकार इस जहाज को रेडियधर्मी विकिरणों से कोई हानि न पहुँच सकेगी। यदि भट्ठी में कोई दुर्घटना हुई तो विकिरण पात्र के बाहर न निकल सकेगा। यदि बाहर से जहाज में कोई दुर्घटना हुई तब भी अन्दर भट्ठी पर उसका कोई प्रभाव न पड़ेगा और न ही पात्र का विदारण हो सकेगा। इन सब प्रबन्धों के कारण लोगों का अनुमान है कि यह जहाज साधारण जहाजों से अधिक सुरक्षित होगा।

संयुक्त राष्ट्र अमेरिका का दूसरा परमाणु-ऊर्जा द्वारा-चालित जहाज 'लाग-बीच' १९६१ में तैयार हो जायगा। इसमें दो परमाणु भट्टियाँ लगायी जायँगी जिनके द्वारा पैंतीस सहस्र (३५,०००) हार्स पावर ऊर्जा का उत्पादन होगा। इस युद्ध पोत की अनुमानित गति ३० नाट होगी। इसी प्रकार का एक अन्य विशाल युद्ध-पोत बनाने का अमेरिका में आयोजन हो रहा है। यह छियासी सहस्र (८६,०००) टन का स्थानान्तरण करेगा। इसको चालित करने के लिए आठ परमाणु भट्टियाँ लगायी जायँगी। यह जहाज १९६१-६२ तक तैयार हो जायगा और इसकी अनुमानित चाल ३३-३५ नाट के लगभग होगी।

कुछ अन्य राष्ट्रों में भी परमाणु ऊर्जा द्वारा चालित जहाजों की योजना बन रही है। ब्रिटेन की जगत्-प्रसिद्ध व्यापारिक जहाज कम्पनी क्यूनार्ड ने घोषणा की है कि वह शीघ्र ही एक विशाल व्यापारिक जहाज बनाने का कार्य प्रारम्भ करेगी जो परमाणु ऊर्जा द्वारा चालित होगा।

फ्रांस में चालीस सहस्र (४०,०००) टन भार का विशाल टैंकर (तेल लादने वाले जहाज) बनाने के लिए प्रयोग हो रहे हैं। यह टैंकर परमाणु ऊर्जा से चलेगा।

जापान में बीस सहस्र (२०,०००) टन भार का जहाज बनाया जायगा जिसकी चाल २३ नाट होगी। इस जहाज में एक लाख अस्सी सहस्र (१,८०,०००) किलोवाट ऊर्जा की परमाणु भट्टी लगेगी जो दाबित जल श्रेणी की होगी। जापान बहुत काल से कुछ निवासियों को दक्षिणी अमेरिका भेजता है जिससे उसकी जनसंख्या कम हो। यह जहाज इसी विशेष कार्यके लिये बनाया जायगा। इसके द्वारा दो सहस्र तीन सौ (२,३००) प्रवासी, दो सौ (२००) यात्री एवं बड़ी मात्रा में सामान पहुँचाया जा सकेगा। इसके बनाने में लगभग बारह करोड़ (१२,००,००,०००) रुपये की लागत लगेगी।

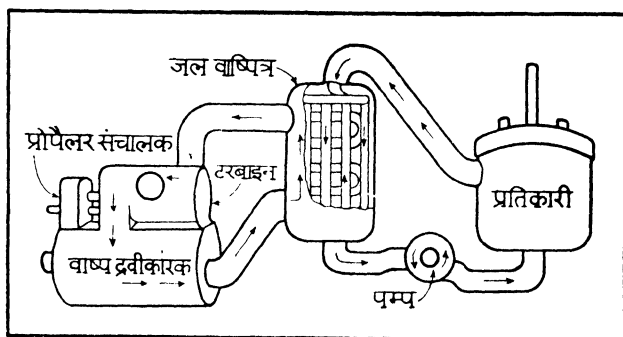
जर्मनी में जहाज चालित करने की परमाणु-भट्टियों पर कार्य हो रहा है। इन्हीं अनुसन्धानों के हेतु हैप्बर्ग में एक निगम बनाया गया है

जिसके द्वारा बाइस सहस्र (२२,०००) टन के टैंकर बनाने के लिए प्रयोग किये जा रहे हैं।

पनडुब्बी नावों में उपयोग

पनडुब्बी नावों को चालित करने के लिए परमाणु ऊर्जा का सर्वप्रथम उपयोग जनवरी, १९५५ में हुआ। उस समय संयुक्त राष्ट्र अमेरिका में बर्नी नाटिलस नामक पनडुब्बी नाव ने परमाणु ऊर्जा द्वारा चालित यात्रा प्रारम्भ की थी। दो वर्ष के काल में उसने बासठ सहस्र पांच सौ साठ (६२,५६०) मील की यात्रा की। यह यात्रा उसके पहली बार भरे ईंधन द्वारा ही सम्पन्न हो गयी थी। ऐसा अनुमान है कि इस काल में चार किलोग्राम यूरेनियम ईंधन का व्यय हुआ था।

नवम्बर, १९५७ में नाटिलस के पुराने ईंधन को निकाल कर उसके स्थान पर नया यूरेनियम पहली बार भरा गया। उस काल तक उसके द्वारा पूरी की गयी यात्रा यदि तेल ईंधन द्वारा की गयी होती तो उसमें तीस लाख (३०,००,०००) गैलन तेल व्यय हो जाता।



चित्र संख्या ३१—नाटिलस की परमाणु-भटठी

इस पनडुब्बी नाव में दाबित जल-प्रतिकारी लगाया गया है। जल

द्वारा ऊष्मा टर्बाइन में पहुँचती है और जल न्यूट्रानों को मन्द भी करता है। नाटिलस पनडुब्बी में सारी आवश्यक विद्युत् भी इसी परमाणु भट्टी द्वारा उत्पन्न की जाती है।

जुलाई, १९५८ में नाटिलस ने उत्तरी ध्रुव की यात्रा बर्फ के नीचे-नीचे होकर की थी। इस यात्रा में इस नाव को बहुत काल तक बर्फ के नीचे चलना पड़ा। इस यात्रा द्वारा, महत्त्वपूर्ण अन्वेषण सम्भव हुए तथा अमेरिका महाद्वीप से यूरोप तक जाने का नया मार्ग भी निकाला गया जो सामान्य मार्ग से कहीं छोटा है।

इस समय अमेरिका के समुद्री बेड़े में परमाणु ऊर्जा द्वारा चालित नावें हैं जिनके नाम निम्नलिखित हैं—

१. नाटिलस, १९५५ में तैयार हुई।
२. सीवुल्फ, मार्च १९५७ में तैयार हुई।
इकहत्तर सहस्र छै सौ (७१,६००) मील यात्रा करने के पश्चात् इसमें नयी परमाणु भट्टी लगायी गयी है।
३. स्केट, दिसम्बर, १९५७ में तैयार हुई।
४. स्वोर्डफिश, सितम्बर, १९५८ में तैयार हुई।
५. सारगो, अक्टूबर, १९५८ में तैयार हुई।
६. स्किपजैक, अप्रैल, १९५९ में तैयार हुई।
७. ट्राइटन, सितम्बर, १९५९ में तैयार हुई।
८. सीड्रैगन, दिसम्बर, १९५९ में तैयार हुई।
९. हेलीबुट, दिसम्बर, १९५९ में तैयार हुई।
१०. एथेन एलैन, नवम्बर, १९६० में तैयार हुई।

इनके अतिरिक्त परमाणु ऊर्जा द्वारा चालित लगभग २० नयी पनडुब्बी नावें विभिन्न स्थानों पर अमेरिका में बन रही हैं।

नाटिलस के एक सप्ताह पश्चात् दूसरी पनडुब्बी स्केट ने भी उत्तरी ध्रुव की यात्रा बर्फ के नीचे से की। सीवुल्फ लगातार ६० दिन तक समुद्र के अन्दर डूबी अवस्था में यात्रा कर चुकी है।

इन सारी पनडुब्बियों में एथेन एलैन को छोड़कर ट्राइटन सबसे बड़ी है। इसमें दो दाबित जल परमाणु भट्टियां लगी हैं। यह नाव १३७ मीटर लम्बी है। तैरते समय यह पाँच सहस्र पचास (५,०५०) टन जल स्थानान्तरित करती है, और डूबे रहते समय सात सहस्र सात सौ पचास (७,७५०) टन जल स्थानान्तरित करती है।

फरवरी, १९६० में इस नाव ने अमेरिका के पूर्वी तट पर लांग आइलैंड से समुद्र के अन्दर यात्रा प्रारम्भ की और वह दक्षिणी अमेरिका की ओर चली। दक्षिणी अमेरिका के पूर्वी तट के निकट से होती हुई उस महाद्वीप के दक्षिणी सिरे तक पहुँच कर उसने प्रशान्त महासागर की ओर मुख किया। वहाँ पर अनेक टापुओं के निकट होती हुई वह फिलिपाइन द्वीप समूह के मध्य पहुँची। उसके पश्चात् वह इडोनीशिया होती हुई दक्षिणी अफ्रीका की ओर चली। केप आफ गुड होप के निकट उसने फिर दिशा बदली और एटलांटिक महासागर के मध्य के मार्ग से वह लांग आइलैंड १० मई, १९६० को पहुँची। इस प्रकार वह ८४ दिन तक समुद्र के अन्दर लगातार यात्रा करती रही। इतने समय में उसने सागर मार्ग द्वारा पूरे विश्व का चक्कर लगा लिया।

ब्रिटेन में सर्वप्रथम पनडुब्बी नाव बनाने का कार्य मई, १९५९ से प्रारम्भ हुआ था। इस नाव का नाम 'ड्रेडनाट' है। यह नाव नवम्बर, १९६० में तैयार हो गयी।

ऐसा अनुमान है कि सोवियत रूस में परमाणु द्वारा चालित पनडुब्बियाँ अवश्य बनायी गयी होंगी या उन पर कार्य हो रहा होगा। परन्तु अभी तक इस कार्य को वहाँ की सरकार ने गोपनीय ही रखा है।

भविष्य में परमाणु ऊर्जा के चालित-उपयोग

अभी तक परमाणु ऊर्जा का उपयोग सामुद्रिक यातायात में ही हुआ

1. Dreadnought

है। परन्तु ऐसी आशा है कि शीघ्र ही यह स्थल, वायु एवं अंतरिक्ष यातायात में भी काम आयगी। वायुयान चालित करने के लिए परमाणु प्रतिकारी पर तीव्र गति से कार्य हो रहा है।

वायुयानों में उपयोग

जिस समय प्रथम परमाणु बम बना उसी समय वैज्ञानिकों का ध्यान इस ओर गया था। अमेरिका में इस दिशा में १९४६ से कार्य हो रहा है यद्यपि १९५१ तक केवल सैद्धान्तिक कार्य ही हुआ। जुलाई, १९५२ से वहाँ प्रायोगिक अनुसंधान प्रारम्भ हुए। यह कार्य इडाहो राज्य के परीक्षा प्रतिकारी केन्द्र' में प्रारम्भ हुआ था। इस केन्द्र में वायुयान के इंजन तथा कवच की बनावट पर भी प्रयोग किये गये हैं। वायुयान में उपयोग होने वाले प्रतिकारी के साथ विशेष समस्याएँ जुड़ी हुई हैं। वायुयान सदा हिलता-डुलता रहता है। उसकी दिशा, ऊँचाई और गति बदलती रहती है। इस कारण उसका प्रतिकारी ऐसा होना आवश्यक है जो धक्के आदि सह सके और उलटने-पुलटने पर भी चलता रहे। यदि वायुयान किसी दुर्घटना का शिकार हो जाये तो उस समय प्रतिकारी द्वारा हानिपूर्ण कण एवं विकिरण न निकलने चाहिए। इन सारी समस्याओं को सुलझाने के लिए इडाहो राज्य के प्रायोगिक केन्द्र में कार्य हो रहा है। कई प्रयोगों में जानबूझ कर दुर्घटनाएँ की गयी हैं और उनके द्वारा उपयोगी परिणाम मिले हैं।

रूस में वायुयान प्रतिकारी के सम्बन्ध में हुए कार्यों की कुछ झलक हाल में मिली है। वहाँ दो प्रकार के प्रतिकारियों पर प्रयोग हो रहे हैं। एक प्रतिकारी में ऊष्मा ले जाने का कार्य वायु द्वारा होगा। इसमें यूरे-नियम-२३५ और बेरीलियम धातु के संमिश्र का बेलन के रूप में उपयोग

होगा और इसके मध्य भाग का व्यास १.९ मीटर होगा। इसके चारों ओर बेरीलियम धातु के प्रत्यावर्तक लगे होंगे। मध्य भाग सत्रह सहस्र (१७,०००) छोटी वायु-नलिकाओं से छिद्रित होगा। प्रतिकारी के कार्य करते समय इन छिद्रों का ताप लगभग 1100° सेन्टीग्रेड होगा। नलिकाओं द्वारा वायु का प्रवेश होगा और यह वायु 950° सेन्टीग्रेड तक ऊष्मित हो जायगी। मध्य भाग में ७० किलोग्राम यूरेनियम-२३५ और दो सहस्र (२,०००) किलोग्राम बेरीलियम लगेगा। सम्पूर्ण प्रतिकारी का भार नौ सहस्र पाँच सौ (९,५००) किलोग्राम होगा।

रूसियों द्वारा एक अन्य प्रतिकारी के उपयोग किये जाने की भी आशा है। इसमें तरल लीथियम प्रतिकारी में चक्रित होगा। एक सहस्र एक सौ (१,१००) किलोग्राम समृद्ध यूरेनियम (जिसमें ५०% यूरेनियम-२३५ होगा) इसमें लगेगा। यूरेनियम मध्यभागीय बेलन का व्यास और लम्बाई ०.८ मीटर होगी। प्रतिकारी के मध्यभाग द्वारा सरल लीथियम का प्रवाह होगा जो उत्पन्न ऊष्मा को ऊष्मा-विनिमायक में स्थानान्तरित करेगा। तरल लीथियम का ताप प्रतिकारी में प्रवेश करते समय 750° सेन्टीग्रेड और निकलते समय 950° सेन्टीग्रेड रहेगा। तरल लीथियम की ऊष्मा, विनिमायक द्वारा वायु को मिलेगी। यह गर्म वायु टर्बो इंजन को चालित करेगी।

ऐसा अनिश्चित समाचार मिला है कि रूस में पहली श्रेणी के प्रतिकारी द्वारा चालित वायुयान बन गया है और उस पर प्रारम्भिक परीक्षाएं की जा रही हैं।

अंतरिक्ष यातायात विषयक कार्य

परमाणु ऊर्जा अगले दस वर्षों में अंतरिक्ष यात्रा के लिए बहुत उपयोगी होगी। तीव्र वेग से अधिक दूरी तक जाने की समस्या इसी के द्वारा हल होगी। इसके दो प्रकार के उपयोग होंगे। एक उपयोग राकेट या अंतरिक्ष यान को पृथ्वी से छोड़ने पर आकाश में चालित

करने के निमित्त होगा तथा दूसरा उसके अन्दर आवश्यक ऊर्जा देने का होगा।

राकेट विज्ञान के शास्त्रियों का विचार है कि परमाणु ऊर्जा का पहला उपयोग पश्चोक्त कार्य के लिए होगा। उसके कुछ समय पश्चात् अन्तरिक्ष यान को चलाने में भी इसका उपयोग सम्भव हो जायगा। उपग्रह आदि श्रेणी के अन्तरिक्ष यानों में लगे हुए यातायात उपकरण, कक्षा का नियन्त्रण करने एवं बदलने वाले यन्त्र, भौतिक मापन के निमित्त लगे उपकरण इत्यादि के लिए ऊर्जा की आवश्यकता होती है। यह ऊर्जा इन्हें प्रायः विद्युत् के रूप में प्रदान की जाती है। इस कारण इन यन्त्रों में परमाणु ऊर्जा का उपयोग बहुत उपयुक्त होगा। अन्तरिक्ष यात्रा के प्रयोगों के लिए अमेरिका तथा सोवियत संघ, दोनों देशों में, प्रायोगिक प्रतिकारियों पर कार्य हो रहा है।

नवम्बर, १९५९ में अमेरिका के परमाणु ऊर्जा आयोग ने घोषणा की कि उसने एक छोटा परमाणु प्रतिकारी बनाया है, जिसके द्वारा अन्तरिक्ष यानों को ऊर्जा मिल सकती है। इसका नाम स्नैप^१-२ रखा गया। इसका भार लगभग ११० किलोग्राम है। इसका आकार पाँच गैलन के पेट्रोल पीपे के बराबर है। इसमें समृद्ध यूरेनियम का ईंधन लगता है। इससे पचास सहस्र (५०,०००) वाट ऊष्मा उत्पन्न होगी। प्रतिकारी के साथ फुटबाल के आकार का टर्बाइन जनित्र लगा है। इस जनित्र के द्वारा तीन किलोवाट अथवा तीन सहस्र (३,०००) वाट विद्युत् बनेगी। इस जनित्र को जल के स्थान पर पारद-वाष्प द्वारा चलाया जायगा। प्रतिकारी में यूरेनियम खण्डन क्रिया से उत्पन्न ऊष्मा, तरल सोडियम द्वारा वाष्पित्र में पहुँचेगी। वहाँ पर पारद-वाष्प उच्च ताप लेकर टर्बाइन को चलायेगी जिसके चलने से विद्युत् उत्पन्न होगी।

परमाणु विस्फोट के शान्तिपूर्ण उपयोग

परमाणु एवं हाइड्रोजन बम अभी तक विध्वंस के अस्त्र माने जाते हैं। परन्तु भविष्य में ये ही अस्त्र शान्तिपूर्ण उपयोगों में आयेगे। इनके द्वारा पृथ्वी के गर्भ से मनुष्य के लाभ के लिए सरलता से वस्तुएँ निकाली जा सकेगी। दो-तीन वर्ष की परीक्षाओं से वैज्ञानिकों को पृथ्वी के अन्दर परमाणु विस्फोट करने की रीति ज्ञात हो गयी है। इस रीति से पृथ्वी के अन्दर गहराई तक पहुँचना सरल एवं अत्यन्त सस्ता होगा। वैज्ञानिकों का अनुमान है कि इस प्रकार के नियन्त्रित विस्फोटों से इजीनियरी के अनेक चमत्कार सम्भव हो जायेंगे और विकिरण के हानिकारक प्रभावों को भी रोका जा सकेगा। इनमें निम्नलिखित लाभ विशेष हैं—

१. खानों को बनाने में इसका विशेष उपयोग होगा। परमाणु विस्फोट द्वारा खान के ऊपर की पृथ्वी को हटाया जा सकेगा। इस क्रिया का व्यय सामान्य रासायनिक विस्फोटों के व्यय का १/१० वाँ भाग होगा।

२. परमाणु विस्फोटों द्वारा बन्दरगाह के किनारे जल गहरा किया जा सकेगा, नदी या सामुद्रिक मार्गों से चट्टानें हटायी जा सकेंगी, नदियों को गहरा बनाया जा सकेगा और नहरें या यातायात के अन्य मार्ग खोले जा सकेंगे। इस प्रकार परमाणु विस्फोट ऊर्जा, व्यापार और विश्व के विकास में सहायक होगी। यदि यही कार्य अन्य रीतियों से किया जाय तो उसकी लागत परमाणु क्रिया की लागत से चालीस गुनी अधिक होगी।

३. तेल के व्यवसाय में इसका अत्यन्त आवश्यक उपयोग हो सकेगा। विश्व में तेल की खपत दिन पर दिन बढ़ रही है। पिछड़े देशों में हो रहे विकासके कारण यह खपत और भी अधिक हो जायगी। अभी तक तेल निकालने के लिए गहरे कुएँ खोदने पड़ते हैं। परन्तु इस प्रकार खोदने की भी एक सीमा है और उस सीमा से अधिक गहराई पर स्थित तेल को पुरानी रीति से नहीं निकाला जा सकता। वैज्ञानिकों का

अनुमान है कि अधिक गहराई पर अब भी इतना तेल है कि जिसे मानव जाति सैकड़ों वर्ष तक उपयोग में ला सकती है। इसको निकालने के लिए परमाणु विस्फोट का ही सहारा लेना होगा। ऐसी रंध्रमय चट्टानों के लिए जिनका तेल सामान्य विधि से नहीं निकल सकता, परमाणु ऊर्जा उपयोगी होगी।

४. यदि बहुत गहराई पर परमाणु विस्फोट किया जाय तो उससे उत्पन्न ऊष्मा ऊर्जा में परिणत की जा सकती है। यह अनुमान है कि उचित स्थान पर एक सहस्र (१,०००) मीटर की गहराई पर विस्फोट करने से आठ अरब (8×10^8) किलोवाट घण्टा विद्युत् उत्पादित होगी। यह विद्युत् बहुत सस्ती होगी और ऐसे स्थानों पर उत्पादित हो सकेगी जहाँ अन्य कोई साधन उपलब्ध न हों।

५. नदियों की गुप्त धाराओं को परमाणु विस्फोट द्वारा बाहर लाया जा सकता है। इस विधि द्वारा ऐसे स्थानों पर जहाँ जमीन के ऊपर जल न हो, सरलता से नदी की धारा लायी जा सकेगी। इस प्रकार नदी आदि के मार्ग भी बदलना सम्भव हो सकेगा।

६. अभी तक रेडियधर्मी समस्थानिक, तत्त्वांतरण प्रयोगों द्वारा अथवा परमाणु प्रतिकारियों द्वारा ही बनते हैं। ये बड़ी महँगी क्रियाएँ हैं। इसी कारण इन तत्त्वों का उपयोग जन-साधारण के लिए प्रायः सुलभ नहीं है। यह सम्भव है कि भविष्य में नियन्त्रित परमाणु-विस्फोटों द्वारा प्रचुर मात्रा में अत्यन्त सस्ते रेडियधर्मी समस्थानिक बनाये जा सकें जिससे वह प्रत्येक मनुष्य की पहुँच में आ जायँ और साधारण क्रियाओं के लिए उपलब्ध हो सकें।

१९५७ में अमेरिका में एक परीक्षात्मक विस्फोट किया गया। इसमें छोटे बम का उपयोग किया गया था जिसका विस्फोट एक सहस्र सात सौ (१,७००) टन टी० एन० टी० के समान था। इससे विस्फोट के स्थान पर स्थित चट्टानों का वाष्प बन गया। ३ मीटर दूरी की चट्टानें तरल पदार्थ में परिणत हो गयी और ३० मीटर दूरी की चट्टानों का चूर्ण बन गया। लगभग

सारी रेडियधर्मिता ७ सौ टन बने तरल पदार्थ में अवशोषित हो गयी । १९५८ में एक और बड़ा विस्फोट उत्पन्न किया गया था जिससे बहुत उत्साहजनक परिणाम निकले ।

इस दिशा में अभी बहुत अनुसन्धान-कार्य की आवश्यकता है । उस सबके सफलतापूर्वक सम्पूर्ण होने के पश्चात् परमाणु-विस्फोटों के उपयोग मानव जाति के काम आयेगे ।

अध्याय १४

परमाणु-ऊर्जा के उपयोग---३

रेडियधर्मी समस्थानिक

मध्य युग के कीमियागर क्षुद्र तत्त्वों को स्वर्ण में परिणत करना चाहते थे। वे इसमें असफल रहे। परन्तु उनके स्वप्नों को आज के भौतिक शास्त्रियों ने सत्य कर दिया। प्रकृति में रेडियधर्मी क्रिया सर्वदा होती चली आयी है जिसके द्वारा एक तत्त्व दूसरे तत्त्व में नियमानुसार बदलता रहता है। पिछले अध्यायों में पाठकों को ज्ञात हो चुका है कि किस प्रकार विभिन्न उपायों से मनुष्य ने यह क्रिया प्रयोगशाला में तथा बड़े पैमाने पर सिद्ध की।

प्राकृतिक रेडियधर्मी तत्त्वों के अनेक उपयोग ज्ञात हो चुके हैं। रसायन, खेती, व्यवसाय, चिकित्सा आदि में कुछ समय से ये काम में लाये जा रहे हैं। उदाहरण के लिए कैंसर चिकित्सा में रेडियम का उपयोग ३० वर्षों से भी अधिक पहले से किया जा रहा है। फिर भी इन तत्त्वों के उपयोग सीमित है।

कृत्रिम रेडियधर्मिता की खोज से रेडियधर्मी समस्थानिकों की उपयोगिता बहुत बढ़ गयी है। तत्त्वान्तरण प्रयोगों द्वारा अनेक रेडियधर्मी तत्त्व बनाये गये जिनका वर्णन कृत्रिम रेडियधर्मिता के अध्याय में किया गया है। इनकी उपयोगिता के बढ़ाने में न्यूट्रान की सहायता विशिष्ट थी।

केवल इस कण के द्वारा सैकड़ों रेडियधर्मी तत्त्व प्रयोगशालाओं में बनाये गये। इन खोजों के पश्चात् भी यदि यूरेनियम खण्डन की खोज न हुई होती तो कृत्रिम रेडियधर्मिता जन-साधारण के दैनिक उपयोगों में न आ पाती। यूरेनियम-खण्डन-शृंखला द्वारा वैज्ञानिकों के हाथ में न्यूट्रान का

बहुत बड़ा स्रोत आ गया, यह बात पाठक पिछले अध्यायों में भली प्रकार पढ़ चुके हैं। नाभिक प्रतिकारी अथवा परमाणु भट्टी में यूरेनियम-२३५ के नाभिक खण्डन की शृंखला न्यूट्रानों के कारण चलती है।

जिस समय प्रतिकारी चालू रहता है, उस समय उसमें बड़ी मात्रा में न्यूट्रानों का वायुमण्डल वर्तमान रहता है। एक साधारण परमाणु पुंज में छ लाख अरब (6×10^{13}) न्यूट्रान प्रति सेकेण्ड प्रति वर्ग सेण्टीमीटर क्षेत्रफल द्वारा निकलते हैं। इतनी प्रचुर मात्रा में किसी और क्रिया द्वारा न्यूट्रान का स्रोत उपलब्ध होना असम्भव है।

पाठकों को सरलता से ज्ञात हो जायगा कि न्यूट्रान प्रतिक्रिया के लिए परमाणु पुंज अथवा भट्टी से अच्छा कोई उपकरण नहीं है। कृत्रिम रेडियधर्मिता के अध्याय में हम देख चुके हैं कि मन्द न्यूट्रान रेडियधर्मी समस्थानिकों के बनाने में अधिक उपयोगी सिद्ध हुए हैं। हमने यह भी देखा है कि अधिकतर प्रतिकारियों में न्यूट्रानों को मन्द करने के संयन्त्र रहते हैं। इस प्रतिक्रिया के लिए सबसे उपयुक्त दशा परमाणु-पुंज में उपलब्ध है।

परमाणु भट्टी द्वारा कृत्रिम रेडियधर्मी तत्त्व बनाने की विधि इस प्रकार है। प्रतिकारी के कवच में विशेष रूप की अनेक नलिकाएं बनी रहती हैं। इन नलिकाओं द्वारा यौगिक या तत्त्व प्रतिकारी के अन्दर विभिन्न गहराइयों तक प्रवेश कराया जाता है। प्रतिकारी के चालू होने पर इस यौगिक या तत्त्व पर न्यूट्रानों का निरन्तर वेगपूर्ण आक्रमण होता है। यह ऊपर बताया जा चुका है कि परमाणु-प्रतिकारी के अन्दर विशाल मात्रा में न्यूट्रान उत्पन्न होते रहते हैं। यही न्यूट्रान उस तत्त्व अथवा यौगिक के अन्दर स्थित तत्त्व पर प्रतिक्रिया करते हैं जिससे रेडियधर्मी समस्थानिकों का जन्म होता है। अधिकतर जिस तत्त्व या उसके यौगिक का नलिका द्वारा प्रतिकारी में प्रवेश कराते हैं वह उसी तत्त्व के रेडियधर्मी समस्थानिक में परिणत हो जाता है। उदाहरण के लिए कोबाल्ट से रेडियो-कोबाल्ट बनता है और सोडियम यौगिक द्वारा हम रेडियो-सोडियम प्राप्त कर सकते हैं। कभी-कभी एक तत्त्व प्रयोग करने से दूसरा रेडियधर्मी तत्त्व उत्पन्न हो जाता है, जैसे नाइ-

ट्रोजन से रेडियोकार्बन, क्लोरीन से रेडियो सल्फर आदि । इस समय लगभग एक सहस्र रेडियधर्मी समस्थानिक ज्ञात हैं । इनमें से अनेक तत्त्वों का, मुख्यतः उनका जिनकी अर्धजीवन अवधि अत्यन्त अल्प नहीं है, विभिन्न कार्यों के लिए उपयोग किया जा रहा है ।

वर्तमान समय में रेडियधर्मी समस्थानिकों के निर्माण का यही मुख्य साधन है । प्रतिकारी द्वारा ही हमें कुछ और रेडियधर्मी समस्थानिक भी मिलते हैं । ये समस्थानिक मन्द न्यूट्रानों की प्रतिक्रिया से सीधे नहीं बनते, वरन् यूरेनियम पर न्यूट्रान के आक्रमण करने से उत्पन्न होते हैं । यूरेनियम-२३५ पर न्यूट्रान प्रतिक्रिया द्वारा यूरेनियम नाभिक का खण्डन होने के कारण बहुत-से खण्ड एकत्र होते रहते हैं । ये खण्ड वे रेडियधर्मी तत्त्व हैं जिनका परमाणु भार एव परमाणु-संख्या यूरेनियम के आघे के लगभग होती है । ये तत्त्व बड़े महत्वपूर्ण सिद्ध हुए हैं । अब हमें यह ज्ञात है कि इन्हीं खण्डों में दो ऐसे तत्त्व (टेकनीशियम और प्रोमीथियम) मिले हैं जो प्रकृति में नहीं पाये जाते ।

यह बताना आवश्यक है कि अब भी त्वरक द्वारा रेडियधर्मी समस्थानिक प्राप्त किये जाते हैं । परन्तु इनकी मात्रा एव संख्या प्रतिकारी की अपेक्षा बहुत कम है । कुछ पारयूरेनियम तत्त्व केवल त्वरक द्वारा ही प्राप्त हो सके हैं । इनमें आइस्टीनियम, फर्मियम, मेडलीवियम और नोबेलियम उल्लेखनीय हैं ।

रेडिय-तत्त्वों के उपयोग

रेडिय-समस्थानिक का सबसे सरल उपयोग विकिरण स्रोत के रूप में हो सकता है । रेडियम और एक्स-रे के अनेक उपयोग हो रहे हैं । इनके द्वारा फोटोग्राफी प्लेट पर चित्र लिये जाते हैं और ये चिकित्सालयों में रोगियों की चिकित्सा में सहायक होते रहे हैं । ये इनके विकिरण उपयोग हैं । रेडियम से गामा-विकिरण निकलते हैं जो एक्स-विकिरण से अधिक वेगवान और अधिक दूरी तक द्रव्य में यात्रा कर सकते हैं । इस कारण इन दोनों का

आवश्यकतानुसार उपयोग हो रहा है। अन्य कृत्रिम रेडिय-तत्त्वों से भी ये कार्य किये जा सकते हैं।

रेडिय-तत्त्वों का संकेतक के रूप में भी प्रयोग किया जाता है। हम उन तत्त्वों को जिनकी उपस्थिति का ज्ञान उनके विकिरणों द्वारा होता है संकेतक परमाणु कहते हैं। उदाहरण के लिए हम सोडियम को लें। साधारण सोडियम की भार-संख्या २३ है। यह परमाणु रेडियधर्मी नहीं है और इनके द्वारा कोई विकिरण नहीं निकलते। सोडियम-२४ साधारण सोडियम (भार संख्या २३) का समस्थानिक है। रासायनिक गुणों में दोनों समान है। यदि दोनों को मिला दिया जाय तो किसी भी रासायनिक क्रिया द्वारा ये पृथक् नहीं किये जा सकते तथा रासायनिक क्रियाओं में दोनों साथ-साथ जायेगे। परन्तु दोनों परमाणुओं में एक विशेष भौतिक अन्तर है जिसे हम रेडियधर्मिता का अन्तर कह सकते हैं। सोडियम-२४ रेडियधर्मी है और वह बीटा एव गामा-विकिरण को स्वतन्त्र करता है इससे सोडियम-२४ की उपस्थिति ज्ञात करना बड़ा सरल है, चाहे वह कही भी अति न्यून मात्रा में मिलाया गया हो। इन विकिरणों के पहचानने वाले यन्त्र (गाइगर-मुलर गणक आदि) बड़े संवेदनशील होते हैं और थोड़े से परमाणुओं की रेडियधर्मिता की परीक्षा कर सकते हैं। यदि हम साधारण सोडियम के साथ न्यून सा सोडियम-२४ मिला दे तो यह अपनी उपस्थिति की सूचना गणक द्वारा देता रहेगा। यह प्रतिक्रिया करेगा और जिस स्थान में प्रवेश करेगा उसकी सूचना सदा देता रहेगा। हम इसे परमाणु-जासूस की उपाधि दे सकते हैं क्योंकि यह हमें ऐसी क्रियाओं की सूचना दे सकता है जिनका ज्ञान अन्य भौतिक या रासायनिक विधियों द्वारा नहीं हो सकता। रेडियधर्मी समस्थानिकों के इन उपयोगों को संकेतक विधि कहा जाता है।

संकेतक विधि बहुमुखी है और वैज्ञानिकों के हाथ में एक प्रबल अस्त्र है। इस विधि में तत्त्वों का सीधा प्रयोग हो सकता है अथवा इसके द्वारा तत्त्व को यौगिक रूप में काम लाया जाता है। इसकी अत्यधिक संवेदनशीलता और विशिष्टता ही इसकी शक्ति का रहस्य है। इन रेडिय-तत्त्वों को अरबों

गुना तनु करने के पश्चात् भी सरलता से पहचाना जा सकता है। यदि एक ग्राम रेडियधर्मी-कार्बन को (शर्करा के रूप में) एक अरब ग्राम साधारण शर्करा के साथ मिश्रित किया जाय तो हम रेडियधर्मी शर्करा को सरलता से पहचान सकेंगे।

किसी तत्त्व की रासायनिक अवस्था का उसकी रेडियधर्मिता पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता। उदाहरण के लिए यदि हम कुछ रेडियधर्मी कैल्शियम मृत्तिका में मिश्रित कर दें और उससे उपजे खाद्य को कोई गाय खाये, तो गाय से निकले दूध में उपस्थित कैल्शियम में उसी प्रकार की रेडियधर्मिता होगी जो मृत्तिका में वर्तमान थी। यदि इस दुग्ध को किसी अन्य जानवर को पिलाया जाय तो उसकी हड्डियों में हम रेडिय-कैल्शियम जान पड़ेगा। इन प्रयोगों द्वारा हम स्पष्ट रूप से ज्ञात हो जायगा कि मृत्तिका का कैल्शियम किस प्रकार खाद्य पदार्थ में जाता है, किस प्रकार खाद्य पदार्थ का कैल्शियम जानवर लेते तथा छोड़ते हैं और अन्त में किस प्रकार उनके दूध में मिले कैल्शियम का अवशोषण अन्य जीव अपने शरीर द्वारा करते हैं। यह अद्भुत बात है कि एक स्थान पर एक रेडिय-तत्त्व डालने से इतने प्रयोग सम्भव हो सकते हैं। इसी कारण हम कहते हैं कि सकेतक विधि अत्यन्त विशिष्ट है।

रेडियधर्मी सकेतक परमाणुओं द्वारा अत्यन्त तनु सान्द्रता पर प्रयोग किये जा रहे हैं। इतनी सान्द्रता पर अन्य विधि से प्रयोग असम्भव थे। उनके द्वारा ऐसी रासायनिक एवं अन्य औद्योगिक क्रियाओं का ज्ञान हो गया है जो अभी तक न हो सका था।

रेडियधर्मी तत्त्वों की उपयोगिता का ज्ञान सकेतक विधि से भौतिक, रासायनिक एवं जीव-विज्ञान के सारे भागों में हो चुका है। यह व्यावहारिक समस्याओं के लिए भी उपयुक्त है। चिकित्सा, खेती, उद्योग, इंजीनियरी आदि में इन तत्त्वों का बहुत अधिक प्रयोग हुआ है। अब हम पाठकों के सामने इनमें से कुछ उपयोगों का वर्णन करेंगे। इन्हें केवल सकेत मात्र ही समझना चाहिए।

औद्योगिक उपयोग

रेडियधर्मी तत्त्वों के औद्योगिक उपयोग तीन कारणों से सम्भव हो सके हैं —

१. पदार्थों पर विकिरण के प्रभाव के कारण
२. विकिरण पर पदार्थ के प्रभाव द्वारा
३. विकिरण द्वारा पदार्थ की पहचान से

अभी तक सारे प्रभावों का पूर्ण रूप से उपयोग नहीं किया गया है। परन्तु आशा है कि भविष्य में इनके द्वारा तत्त्वों के उपयोग और बढ़ जायेंगे। यहाँ कुछ औद्योगिक उपयोगों की ओर सकेत किया जा रहा है।

रेडियधर्मी विकिरण से आयनीकरण होता है। इसके द्वारा स्थिर विद्युत् के खतरे को दूर किया जा सकता है। अनेक उद्योगों में स्थिर विद्युत् बड़ी हानिकारक सिद्ध हुई है। कभी-कभी जमा किये माल में इसके कारण आग लग जाती है तथा इसके शक्तिशाली धक्के से कार्यकर्ताओं की मृत्यु हो जाती है। रेडियधर्मी तत्त्व के प्रयोग से वायु का आयनीकरण होता रहता है जिससे स्थिर विद्युत् जमा नहीं हो पाती। आयनीकरण का उपयोग रेडियो वाल्वों में भी हो रहा है। कुछ विशेष प्रकार के वाल्वों में आयनीकरण आवश्यक है। इनमें कुछ मात्रा में रेडियधर्मी तत्त्व रख दिये जाते हैं जिनके द्वारा वाल्व के अन्दर की गैस आयनीभूत रहती है।

यदि किसी वस्तु के भीतर विकिरण प्रवेश करे तो उसके कुछ अंश का वस्तु द्वारा अवशोषण हो जायगा। यह अवशोषण उस वस्तु की मुटाई, या उसकी बनावट पर निर्भर होगा। इसी सिद्धान्त पर औद्योगिक रेडियोग्राफी निर्भर है। रेडियम का इस कार्य में बहुत काल से उपयोग होता चला आ रहा है। अब उसके स्थान पर सस्ते कृत्रिम तत्त्व, जैसे कोबाल्ट-६०, सीजियम-१३७, इरीडियम-१९२ काम में लाये जाते हैं। इस प्रयोग द्वारा किसी धातु, मिश्र धातु या अन्य वस्तु की बनावट, समतलता या किसी खराबी की जाँच हो सकती है। जिस वस्तु या भाग की जाँच की जाती है उसे रेडियधर्मी स्रोत के सामने रखा जाता है। उसके पीछे फोटोग्राफी के

प्लेट रखते हैं। स्रोत द्वारा गामा-विकिरण स्वतन्त्र होते हैं जो वस्तु से अवशोषित होते हुए प्लेट पर पड़ते हैं। यदि किसी स्थान पर बनावट की खराबी हुई या कोई छेद या दरार आदि हुई तो उस स्थान पर अवशोषण अन्य स्थानों के समान न होगा। फोटोग्राफी प्लेट पर उस स्थान का अलग निशान पड जायगा। इस प्रकार वस्तु के अन्दर की वे वृष्टियाँ ज्ञात हो जाती है जिन्हें बाहर से न देखा जा सके।

इसी प्रकार धातु की चादरो की जाँच बड़ी सरलता से हो सकती है। बहुत उद्योगों में समान मुटाई की धातु की चादरों की आवश्यकता पड़ती है। ऐसी चादर के बनते समय उसके बीच से गामा-विकिरण का प्रवाह करते हैं। दूसरी ओर गाइगर-मुलर गणक द्वारा उसकी तीव्रता की निरन्तर जाँच होती रहती है। यदि किसी स्थान पर आवश्यकता से अधिक मोटी अथवा पतली चादर का भाग आयेगा तो इसकी सूचना तुरन्त गणक द्वारा मिल जायगी और चादर के उस भाग को हटाया जा सकेगा। इसी प्रकार की जाँच अच्छे गुण के कागज या रबर के लिए भी की जाती है। रेडियधर्मी तत्वों के उपयोग के पहले यह कार्य सुचारु रूप से न हो सकता था।

विकिरण के प्रत्यावर्तन द्वारा भी अनेक वस्तुओं की सतह तथा उसकी मुटाई की जाँच इसी प्रकार से सम्भव हो गयी है। विकिरण का प्रत्यावर्तन अनेक कारणों पर निर्भर रहता है, जिनमें विकिरण की ऊर्जा, वस्तु का घनत्व, स्वरूप, तथा मुटाई मुख्य है। इसी सिद्धान्त के अनुसार किसी धातु पर लगे रंजक की मुटाई तथा गुण की जाँच हुआ करती है। इसी से मृत्तिका घनत्व एवं उसकी आद्रता की जाँच बहुत जल्दी हो जाती है तथा प्रयोगशाला के लम्बे प्रयोग बच जाते हैं। मृत्तिका की आद्रता की जाँच के लिए न्यूट्रान-स्रोत का उपयोग करते हैं। न्यूट्रानों को हाइड्रोजन परमाणु जल्द प्रभावित करते हैं।

सकेतक विधि के सभी औद्योगिक उपयोगों को गिनाना कठिन कार्य है। धातु-उद्योग को इससे बड़ा लाभ पहुँचा है। किसी इजन के पिस्टन के घिसने की मात्रा इससे सरलता से ज्ञात हो जाती है। वलय में रेडिय-आयरन

की मात्रा लगा दी जाती है। तत्पश्चात् उसमें पिस्टन को चलाया जाता है। वलय में पिस्टन के चलने से वलय की सतह की धातु घिसती रहती है और उसमें पड़े स्नेहक में रेडिय-तत्त्व आ जाता है। समय-समय पर इस तेल की गणक द्वारा जाँच करने से वलय घिसने की मात्रा ज्ञात हो जायगी। इसका उपयोग मशीन के पुर्जों की घिसावट के बारे में दूसरी प्रकार से भी हो सकता है। कोई भी आवश्यक पुर्जा समय व्यतीत होने से घिसता रहता है, और निश्चित दशा के बाद उसे बदलना आवश्यक हो जाता है। मान लीजिए हमें यह ज्ञात है कि अमुक पुर्जा १ मिलीमीटर घिसने के पश्चात् बेकार हो जाता है अतः तब उसे बदलना चाहिए। वह नियत समय जानने की कठिनाई रेडिय-तत्त्व द्वारा हल हो सकती है। उस पुर्जे की १ मिलीमीटर गहराई में रेडिय-तत्त्व रख दिया जाता है। जिस समय पुर्जा १ मिलीमीटर घिस जायगा रेडिय-तत्त्व सतह पर आ जायगा और उसका कुछ अंश स्नेहक तेल में मिलेगा। तेल की जाँच द्वारा हमें ज्ञात होगा कि अमुक समय पर पुर्जा बदल दिया जाय। इसी प्रकार के प्रयोगों द्वारा ऐसे तेल की खोज होना सम्भव है जिसका प्रयोग करने से पुर्जों की घिसाई में कमी आ जाय।

रेडियधर्मी सकेतकों द्वारा लम्बे पाइपों में हुए छिद्रों की जाँच हो जाती है। भूमि के भीतर लगे जल या अन्य वस्तुओं के, लम्बे पाइप में यदि छिद्र हो जाय तो उसकी जाँच करना कठिन होता है। इन छिद्रों से जल या तेल तब तक निकलता रहेगा जब तक कि सारे पाइप को खोद कर निकाला न जाय। उस छिद्र के स्थान का ज्ञान अन्य किसी प्रकार से नहीं हो सकता।

इस कठिनाई को रेडिय-तत्त्वों ने बड़ी सुन्दरता से मुलझा दिया है। जल में न्यून मात्रा में रेडियो-सोडियम या रेडियो-आयोडीन मिलाकर पाइप में प्रवाहित कर देते हैं। अब ऊपर से गणक द्वारा उसके प्रवाह की जाँच की जाती है। जिस स्थान पर छिद्र होगा उसी स्थान से गणक का पाठ्यांक कम हो जायगा। बस उसी स्थान को खोद कर पाइप की मरम्मत की जा सकती है अथवा उसे बदला जा सकता है। इन रेडियधर्मी तत्त्वों की अर्धजीवन अवधि कम है। इस क्रिया में अल्प अर्धजीवन अवधि के

रेडिय-तत्त्वों का प्रयोग होता है जिससे थोड़े समय पश्चात् उनके विकिरणों का स्वतः क्षय हो जाय और किसी को उनके द्वारा हानि पहुँचने की आशंका न रहे।

धातु-कर्म में रेडियधर्मी तत्त्वों के अनेक प्रयोग हुए हैं। इनके द्वारा अनेक प्रकार की भट्टियों में लगी प्रायोगिक ईंटों की दृढ़ता तथा जीवन अवधि पर प्रकाश पड़ा है। इस्पात उद्योग में ईंटों की बनावट का भट्टी के जीवन पर विशेष प्रभाव पड़ता है। भट्टी बनाते समय भिन्न-भिन्न गहराइयों पर विभिन्न रेडियतत्त्व रख दिये जाते हैं। भट्टी के उपयोग होते समय ऊष्मा उत्पन्न की जाती है। इसके तथा अयस्क आदि की प्रतिक्रियाओं के कारण ईंटों की तह घिसती रहती है। विभिन्न गहराइयों तक संक्षरण होने पर भिन्न-भिन्न रेडियतत्त्व बाहर आकर धातु में मिलते हैं। भिन्न काल में तैयार हुई धातु का गणक द्वारा विश्लेषण करने से भट्टी के संक्षरण का ज्ञान होता है।

मिश्र धातुओं के संरचन पर रेडियधर्मी तत्त्वों द्वारा प्रकाश पड़ा है। प्रत्येक धातु के परमाणुओं की स्थिति का मिश्र धातु के गुण पर बहुत प्रभाव पड़ता है। संकेतक परमाणुओं द्वारा मिश्र धातु में किसी तत्त्व के परमाणुओं की व्यवस्था जानी जाती है। उदाहरण के लिए किसी धातु में सल्फर के साथ न्यून मात्रा में रेडिय सल्फर मिला दिया जाय तो उन संकेतक परमाणुओं के द्वारा हमें सल्फर के विभाजन का ज्ञान हो जायगा। धातुओं के संरचन के अध्ययन में रेडियधर्मी संकेतक अमूल्य सिद्ध हुए हैं। धातु कर्म उद्योगों में इनके उपयोग दिन प्रति दिन बढ़ रहे हैं। इनके द्वारा अच्छे गुण वाली धातु कम समय में मिल जाती है। इस्पात उद्योग में धातु के गलने का समय कम करने के लिए शीघ्रता से धातु मल बनना आवश्यक है। अयस्क और चूने को किस अनुपात तथा क्रम में मिलाया जाय, इसके सही ज्ञान से धातु-कर्म-क्रिया सरल हो जाती है। इस समस्या को सुलझाने में रेडियधर्मी कैल्शियम और फास्फोरस का विशेष हाथ रहा है। धातुमल बनते समय विभिन्न अवयवों में इन तत्त्वों द्वारा हुए विकिरणों की

माप करने से धातु कर्म में होने वाली प्रतिक्रियाओं का सही ज्ञान हो सका है।

कभी-कभी धातुकर्म क्रियाओं में असम्भावित कठिनाइयाँ आ जाती हैं। अनजान स्रोतों से अशुद्धियाँ धातुओं में मिल जाती हैं जिनके सम्मिश्रण से हानिकारक गुण धातु में आ जाते हैं। कभी-कभी भट्ठी की दीवारों से आकर मिली अशुद्धियाँ धातु को खराब कर देती हैं। इनका सही ज्ञान रेडियधर्मी तत्त्वों द्वारा ही सम्भव हो सका है।

धातु कर्म उद्योगों का कार्य प्रायः बन्द बर्तनों में ही मुख्यतः होता है। अतः कभी-कभी यह आवश्यक होता है कि बर्तन के अन्दर धातु के तल का ज्ञान होता रहे या धातु का तल एक चिह्न के ऊपर न जाय। इस कार्य को संकेतक ने सरल कर दिया है। जिस चिह्न के ऊपर सगलित धातु का जाना हानिकारक हो उस स्थान पर थोड़ा रेडियधर्मी संकेतक लगा दें तथा दूसरी ओर गणक द्वारा उससे निकले विकिरण की जाँच करते रहें। जिस समय धातु उस तल पर पहुँचेगी उसकी एक मोटी तह संकेतक और गणक के मार्ग में आ जायेगी जिसकी सूचना तुरन्त गणक द्वारा मिलेगी।

इंजीनियरी कार्यों में रेडियतत्त्व का उपयोग दिन प्रति दिन बढ़ रहा है। इसके द्वारा अच्छी कोटि का कंक्रीट बनाना सम्भव हो सका है। रेडिय कैल्शियम के प्रयोग द्वारा कंक्रीट विज्ञान का अच्छा ज्ञान प्राप्त हुआ है। कंक्रीट के कठोर होने तथा उसमें होने वाली भौतिक एवं रासायनिक क्रियाओं का ज्ञान रेडिय कैल्शियम के जासूसी चक्षुओं द्वारा ही प्राप्त हो सका है।

हाइड्रो विद्युत्-स्टेशन, बाँध, औद्योगिक मिल आदि बड़ी-बड़ी इमारतों में विशेष प्रकार के सम्मिश्रण किये जाते हैं। इस क्रिया में मृत्तिका के विशेष लेप बनाकर गृह-निर्माण पदार्थ में मिलाये जाते हैं। इन लेपों के सरचन पूर्व निश्चित होने चाहिए अन्यथा इमारतें अशक्त हो जाँयगी। इन क्रियाओं पर नियन्त्रण रखने के लिए कुछ रेडियतत्त्वों का उपयोग हुआ है जिनमें रेडियो कोबाल्ट का विशेष स्थान है।

ऊपर बताये उपयोगों के अतिरिक्त रेडियतत्त्व, कपड़े धोने की मशीन की क्षमता बढ़ाने, बिजली या टेलीफोन खम्भों के रक्षा-सम्बन्धी प्रयोगों, बहुलीकरण आदि औद्योगिक क्रियाओं, कृत्रिम पेट्रोल बनाने, अच्छी रोटी बनाने तथा साबुन की क्रिया को समझने आदि में बड़े उपकारी सिद्ध हुए हैं। परन्तु इस ओर इन के उपयोग का अभी तो केवल प्रारम्भ ही हुआ है। भविष्य में इनके इससे सैकड़ों गुने बड़े औद्योगिक उपयोग होंगे।

भौमिकी एवं पेट्रोल उद्योग में उपयोग

खनिज पदार्थों की खोज में रेडियतत्त्व बड़े सहायक हो रहे हैं। इन खोजों में पेट्रोल का विशेष स्थान है। पेट्रोल को निकालने के लिए बड़ी गहराई तक कुएं खोदना आवश्यक होता है। परीक्षा-कुएं में ऐसा यंत्र प्रविष्ट करते हैं जिसमें तीव्र न्यूट्रानों का स्रोत तथा गामा-विकिरणों को मापने का गणक लगा होता है। अन्दर प्रवेश करने पर न्यूट्रान चट्टानों में मन्द होकर समा जाते हैं। इस प्रतिक्रिया से गामा-विकिरण स्वतंत्र होते हैं। यदि इन चट्टानों में तेल समाया हो तो न्यूट्रान शीघ्रता से मन्द होकर समाते हैं। इस प्रकार गणक द्वारा पेट्रोल तेल की पहचान हो जाती है। पृथ्वी के अन्दर तेल और जल अलग सतह पर रहते हैं। पानी और तेल पर न्यूट्रान दण्ड का भिन्न प्रभाव होता है, इस कारण इन दोनों की सतह की पहचान हो जाती है।

कोयले की खान की पहचान गामा-विकिरण द्वारा सम्भव हो गयी है। यदि भूमि में कुआ खोद कर एक गामा-स्रोत अन्दर प्रवेश करे तो विभिन्न चट्टानों में गामा-विकिरण भिन्न प्रकार से अवशोषित होगा। कोयले का घनत्व चट्टान से बहुत भिन्न होता है। इस कारण कोयले की तह पर पहुँचते ही गामा-विकिरण के अवशोषण में विशाल अन्तर आयेगा जिसका गणक यंत्र द्वारा संकेत हो सकता है। इस क्रिया से कोयले की उपस्थिति और उसकी तह की मोटाई आदि ज्ञात हो जायगी।

गणक यंत्र द्वारा रेडियधर्मी तत्त्वों की उपस्थिति की पहचान बहुत सरल हो गयी है। यूरेनियम, थोरियम और अन्य रेडियधर्मी तत्त्वों की खोज इन यंत्रों से ही की जाती है।

पेट्रोलियम उद्योग शीघ्रता से संकेतक विधि को अपना रहा है। पेट्रोल से निकले पदार्थों के सही उपयोगों के लिए उसका विश्लेषण करना बहुत आवश्यक है। उनमें कार्बन तथा हाइड्रोजन तत्त्वों का अनुपात विशेषकर ज्ञात होना चाहिए जिससे पदार्थों का उचित कार्यों में उपयोग किया जाय। जेट वायुयान तथा अन्य यातयात के कार्य के लिए इस अनुपात गुणक का ज्ञान होना लाभकारी होता है। अभी तक वैश्लेषिक रसायन विधि से यह अनुपात निकालते थे जिसमें बहुत समय नष्ट होता था। अब बीटा विकिरण द्वारा यह जल्द निकल आता है। बीटा-कण कार्बन की अपेक्षा हाइड्रोजन द्वारा अधिक अवशोषित होता है। उसके इस गुण द्वारा अनुपात आसानी से ज्ञात हो जाता है। इस विधि से एक नौसिखिया सहायक एक दिन में १०० नमूनों का उतनी ही सरलतापूर्वक विश्लेषण कर लेता है जितनी सरलता से पहले एक निपुण वैश्लेषिक रसायनज्ञ १० नमूनों का एक दिन में करता था।

पेट्रोल उद्योग में उत्प्रेरित-भंजन बड़ी लाभकारक क्रिया है। इसके द्वारा भारी तेलों को हलके पेट्रोल एवं वायुयान ईंधन में परिणत करते हैं। इसमें उत्प्रेरक के चक्रण द्वारा ही अच्छी उपज होती है। यदि यह चक्रण ठीक न हो तो भंजन पूर्ण न हो पायगा। अभी तक रसायनज्ञ इसकी जांच ताप के उतार-चढ़ाव द्वारा ही किया करते थे। यह बहु-आधारित रीति थी। अब इस क्रिया में प्रायोगिक मनका के साथ थोड़ा-सा रेडियधर्मी जिरकोनियम मनका मिला देते हैं। यह मनका उत्प्रेरक के साथ चक्रित होता है। रेडियधर्मी मनका की गति को गणक द्वारा ज्ञात करते हैं। इसी से उत्प्रेरक के चक्रण का सही ज्ञान हो जाता है। अब यह विधि लगभग सभी भंजन उद्योगों में सामान्य रूप से काम में लायी जा रही है।

पेट्रोल के पदार्थों को सुदूर स्थानों में ले जाने के लिए मोटी नलिकाओं का उपयोग होता है। इन नलिकाओं द्वारा विभिन्न प्रकार के पेट्रोल पदार्थ भेजे जाते हैं। यदि एक नलिका से दो भिन्न प्रकार के तेल एक के पश्चात् एक भेजे जायँ तो उन्हें दूसरी ओर जमा करने में कठिनाई हो सकती है। अब इस समस्या को हल कर लिया गया है। जिस समय एक रूप का तेल भेजना बन्द करते हैं उसके बाद थोड़ा रेडियतत्त्व मिश्रित तेल पम्प द्वारा चालू करने पर दूसरी ओर ज्ञात हो जाता है कि अब इस रूप के तेल का आना समाप्त हो गया है और इसके पीछे दूसरा पदार्थ आयेगा। जब जब तेल का गुण बदलता है उनके बीच में थोड़ा रेडियधर्मी तेल रख दिया जाता है। इस कारण दो भिन्न कम्पनिया अपना माल एक नलिका द्वारा भेज सकती है।

कुछ वर्षों से एक रेडियधर्मी समस्थानिक भूगर्भ-शास्त्रियों के लिए अत्यन्त लाभकारी सिद्ध हुआ है। यह समस्थानिक प्रकृति में पाया जाता है, परन्तु इसकी उपयोगिता का पहले ज्ञान न था। यह कार्बन का १४ भार वाला समस्थानिक है। यह ऊपरी वायुमण्डल में सर्वदा बनता रहता है। अतरिक्ष किरणें चारों ओर से वायुमण्डल में प्रवेश करती रहती हैं। ये किरणें अत्यन्त वेगवती होती हैं और वायुमण्डल में उपस्थित नाइट्रोजन नाभिक पर आक्रमण कर कार्बन-१४ बनाती हैं। वायुमण्डल में कार्बन १४ की मात्रा समान रहती है। यह तत्त्व रेडियधर्मी है और एक इलेक्ट्रॉन स्वतन्त्र कर स्थिर नाइट्रोजन में तत्त्वान्तरित हो जाता है। इस कारण जितना कार्बन-१४ किसी क्षण अतरिक्ष विकिरण के आक्रमण से बनता है उतनी ही मात्रा में कार्बन-१४ रेडियधर्मी क्रिया द्वारा तत्त्वांतरित हो जाता है। हम यह कह सकते हैं कि इस तत्त्व का वायुमण्डल में संतुलन रहता है।

रेडियधर्मी कार्बन-१४ स्वतन्त्र अवस्था में वायुमण्डल में नहीं रह पाता। यह वायुमण्डल की आक्सीजन पर क्रिया कर कार्बन द्वि-आक्साइड बनाता है। इस विधि से हमारे वायुमण्डल में उपस्थित कार्बन द्वि-आक्साइड

के साथ थोड़ी मात्रा में रेडियधर्मी कार्बन द्वि-आक्साइड भी मिश्रित रहती है। कार्बन-द्वि-आक्साइड वनस्पति का भोजन है। पौधे उसे लेकर अपने कोष बनाते हैं। इस चक्र द्वारा वायुमण्डल से कार्बन द्वि-आक्साइड वनस्पति में जाता है जहाँ से जीव-जन्तु उसे अपना भोजन बनाते हैं। इससे हम देख सकते हैं कि जहाँ-जहाँ कार्बन प्रवेश करेगा वही पर उसके साथ न्यूनतम मात्रा में रेडियधर्मी कार्बन भी जायेगा। विश्व के सब वनस्पति और जीवों में रेडियधर्मी कार्बन उपस्थित रहता है।

जब तक पेड़, पौधे या जीव-जन्तु जीवित रहते हैं, वे भोजन का सेवन करते रहते हैं, जिससे उनके अन्दर कार्बन के आने तथा उनमें से उसका क्षय होने का क्रम चलता रहता है। इस प्रकार हर जीवित वस्तु में रेडियधर्मी कार्बन की लगभग स्थायी सान्द्रता वर्तमान रहती है। हर जीव में, पौधों में, पेड़ के तने में, डाल-पत्ती आदि में सीमित मात्रा में वह रहता है।

परन्तु जीव या वनस्पति की मृत्यु होते ही दशा बदल जाती है। अतः वह मृत वस्तु अब कार्बन अपने अन्दर समा नहीं पाती इसलिए रेडियधर्मी कार्बन का आवागमन भी बन्द हो जाता है। अब मृत्यु के क्षण से उसमें कार्बन का केवल क्षय ही होगा। यह क्षय रेडियधर्मी नियम के अनुसार होता है। रेडियधर्मी कार्बन की अर्धजीवन अवधि पाँच सहस्र सात सौ (५,७००) वर्ष है। इस नियमानुसार इतनी अवधि के पश्चात् उस मृत वस्तु में आधे रेडिय कार्बन परमाणु रह जायेंगे और ग्यारह सहस्र चार सौ वर्षों (११,४००) बाद प्रारम्भ काल उसके वर्तमान कार्बन परमाणुओं का एक चौथाई (¼) भाग बचेगा। इसी प्रकार वे निरन्तर घटते रहेंगे।

इस विधि द्वारा किसी मृत जीव अथवा वनस्पति का मृत्यु-काल सम्यक् रीति से ज्ञात हो सकता है। उस वस्तु में रेडियधर्मी कार्बन की मात्रा ज्ञात करने से मृत्यु के समय की जाँच करना सरल कार्य हो जायगा। कुछ वर्षों से ऐतिहासिकों एवं पुरातत्त्ववेत्ताओं ने लाभपूर्वक इसका उपयोग किया है। विश्व के संग्रहालयों में पुरानी वस्तुएं भरी पड़ी हैं। इन वस्तुओं

की आयु ज्ञात करना अब सरल कार्य हो गया है। जिनकी उम्र का दूसरे उपायों से अनुमान किया गया हो उनकी आयु की पुष्टि इस उपाय से होना सम्भव है। इसके कुछ रोचक उदाहरण दिये जा सकते हैं।

पुरातन काल में मिश्र में फ़ैरोह उपाधि के राजा राज्य करते थे। इन राजाओं के शव को मृत्यु के पश्चात् बड़ी सावधानी से गाड़ा जाता था जिससे उसे हानि न पहुँचे। साथ में उनके उपयोग तथा कार्य की सब वस्तुएँ सोना, चाँदी, जवाहरात, कपड़े, पल्ले आदि भी गाड़ दी जाती थी। एक ऐसी ही समाधि में से एक नाव निकाली गयी थी। लोगों का अनुमान था कि वह समाधि तीन सहस्र सात सौ वर्ष (३,७००) पुरानी थी। इसकी पुष्टि के लिए उस नाव की लकड़ी का छोटा टुकड़ा काटा गया और वैज्ञानिक रसायन शाला में उसकी कार्बन-१४ रेडियधर्मिता द्वारा जाँच की गयी। उस लकड़ी में अभी तक कुछ रेडियधर्मी कार्बन के परमाणु वर्तमान थे। इनकी तुलना नयी जीवित लकड़ी में उपस्थित कार्बन परमाणुओं से की गयी। इस तुलना से निष्कर्ष निकला कि वह लकड़ी तीन सहस्र छै सौ (३,६००) वर्ष पुरानी थी।

कुछ दिन हुए साइबेरिया, सोवियत संघ में बर्फ के नीचे दबा एक 'मैमोथ' का शव पाया गया। यह शव लगभग उसी अवस्था में था जिसमें उसकी मृत्यु हुई होगी। रेडियधर्मी कार्बन की जाँच से ज्ञात हुआ कि इस विशालकाय जीव की मृत्यु बारह सहस्र (१२,०००) वर्ष पहले हुई होगी।

फ्रांस में एक गुफा के अन्दर एक प्राचीन मकान की खोज हुई। उसमें पत्थर के अस्त्र आदि मिले और साथ में जली लकड़ी के कोयले के टुकड़े भी मिले। इस कोयले की जाँच की गयी। इस कोयले की रेडियधर्मिता लगभग पन्द्रह सहस्र (१५,०००) वर्ष प्राचीन थी।

1. Mammoth

इसी प्रकार के अनेक उदाहरण दिये जा सकते हैं। इस समय संसार भर में इस रीति के द्वारा इतिहासकार तथा पुरातत्त्ववेत्ता बहुत-सी गुत्थियां सुलझा रहे हैं।

रेडियधर्मी कार्बन द्वारा वैज्ञानिक भी लाभ उठा रहे हैं। पेट्रोलियम के कुँओ की खोज या जाँच इससे सम्भव हो रही है। रसायनज्ञ यह जानते हैं कि पेट्रोलियम के साथ मीथेन गैस भी मिलती है। परन्तु यही गैस वनस्पति के क्षय द्वारा भी मिलती है। इस कारण यदि कहीं मीथेन गैस मिले तो यह कहना कठिन होगा कि यह पेट्रोल के कारण है या केवल वनस्पति से निकली है और यदि वनस्पति द्वारा निकली गैस के आधार पर तेल ढूँढने लगे तो बेकार समय तथा अर्थ का व्यय होगा। इसका निर्णय कार्बन-१४ जाँच से हो सकता है। पेट्रोल बहुत पुरातन काल में बना और इसका उद्भव जीव द्वारा हुआ है। वनस्पति से निकली मीथेन गैस पुरानी न होगी, वरन् वनस्पति के क्षय से बनती रही होगी। इन दोनों गैसों के कार्बन-१४ सान्द्रण में बड़ा अन्तर रहेगा। वनस्पति द्वारा बनी मीथेन में पेट्रोल की मीथेन की अपेक्षा कार्बन-१४ कहीं अधिक होगा।

कार्बन-१४ समस्थानिक साठ सहस्र (६०,०००) वर्ष से अधिक काल में काम नहीं आ सकता क्योंकि इतने समय में लगभग सारी रेडियधर्मिता का क्षय हो जाता है।

इससे अधिक काल के लिए यूरेनियम, थोरियम आदि तत्त्वों का सहारा लेना पड़ता है जिनकी अर्धजीवन अवधि कहीं अधिक है। इनके द्वारा हमें ज्ञात हुआ है कि हिमालय पर्वत लगभग दस करोड़ (१०,००,००,०००) वर्ष पहले पृथ्वी से उठकर बना था।

इस प्रकार रेडियधर्मी परमाणु हमको पुरातन काल की घटनाओं के ठीक समय की सम्यक् रीति से सूचना देते हैं।

संकेतक परमाणुओं का रसायन में उपयोग

रासायनिक क्रियाओं द्वारा ही यह परमाणु शुद्ध किये जाते हैं जिससे

इनका उपयोग अन्य कार्यों में हो सके। रसायन-विज्ञान में भी इनका उपयोग प्रचुर मात्रा में हो रहा है। सामान्य तथा कार्बनिक दोनों ही प्रकार की रसायनों की प्रतिक्रियाओं में इनका उपयोग होता है। इनके द्वारा अन्य प्रक्रिया का सही ज्ञान हो सकता है। बहुत-सी रासायनिक प्रतिक्रियाएँ अत्यन्त क्लिष्ट होती हैं उनकी परिस्थितियों को जानना कठिन होता है। इन परिस्थिति संबंधी पहेलियों को रेडियतत्त्वों द्वारा सुलझाया गया है। कई स्थानों पर बहुत न्यून मात्रा के तत्त्वों के प्रातिशत्य को मिश्रण में ज्ञात करना होता है। यदि यह मात्रा अत्यन्त न्यून हुई तो सामान्य रासायनिक क्रियाओं से वह नहीं मालूम किया जा सकता। ऐसे कार्य में रेडियतत्त्व उस समस्या को हल करते हैं। इन तत्त्वों द्वारा निकले विकिरण गणक द्वारा नापे जाते हैं। सकेतक विधि से बहुत-सी रासायनिक परीक्षाएँ शीघ्रता से हो सकती हैं। उदाहरणार्थ, कुछ रासायनिक क्रियाएँ बड़ी द्रुत गति से होती हैं। ऐसी क्रिया के होते समय यदि रासायनिक परीक्षा भी होती रहे तो उस पर अच्छा नियंत्रण रहता है। परन्तु कभी-कभी सामान्य रसायन विधियों से शीघ्र परीक्षा होना सम्भव नहीं होता। इस कमी को रेडियधर्मी संकेतकों ने बहुत कुछ पूरा किया है। विकिरण रसायन, विज्ञान का एक नया अंग है जो अत्यन्त रोचक एवं उपयोगी है। इसमें उच्च ऊर्जा के विकिरणों का रासायनिक क्रियाओं पर प्रभाव देखा जाता है। यह विकिरण अनेक यौगिकों का संरचन बदल देते हैं तथा इनके कारण कुछ यौगिकों के गुणों में भी अंतर आ जाता है। उदाहरणार्थ, कुछ यौगिकों की विलयनशीलता बदल जाती है। कुछ अन्य यौगिकों की द्रवशीलता जाती रहती है। कभी-कभी कुछ अणु खण्डित हो जाते हैं और कभी दो या उनसे अधिक अणु संगलित हो जाते हैं। इन गुणों की ठीक जानकारी रहने से उचित तथा आवश्यक गुण वाली वस्तुएँ बनायी जा सकती हैं।

विकिरण के प्रभाव द्वारा कुछ धातुओं की सतह के गुण बदलते देखे गये हैं। उन में प्रतिरोधकता दसगुना अधिक हो जाती है।

रेडियधर्मी विकिरण रासायनिक क्रियाओं के मार्ग तभी बदल सकते हैं। कार्बनिक रसायन में ऐसा बहुधा होता देखा गया है। बहुलीकरण की क्रिया को रोककर या बदल कर इच्छित गुण वाले बहुलक प्लास्टिक, कृत्रिम रबर आदि बनाये जा रहे हैं। कभी कभी ऐसी क्रियाएं प्रारम्भ की गयी हैं जो साधारणतया असम्भव प्रतीत होती थीं। दो विभिन्न प्लास्टिक पदार्थों को विकिरण के प्रभाव द्वारा संगलित किया गया है जिससे बिलकुल नये गुण वाला प्लास्टिक बना। इन प्रयोगों से सिद्ध हो गया है कि विकिरण रसायन का भविष्य उज्ज्वल है। नयी-नयी क्रियाएं तीव्र गति से ढूँढ़ी जा रही हैं और शीघ्र ही हम इस विज्ञान में क्रान्तिकारी परिवर्तन पायेंगे।

संकेतक परमाणुओं की सहायता से रासायनिक विश्लेषण की विश्वस्तता की जाँच हो सकती है। संकेतक विधियों में से एक विधि का नाम सक्रियकरण विश्लेषण है। इसके सिद्धांत निम्नलिखित हैं :—

यदि किसी वस्तु को जिसका विश्लेषण करना है, न्यूट्रान दण्ड द्वारा प्रभावित किया जाय तो उसके परमाणुओं का थोड़ा भाग रेडियधर्मी समस्थानिकों में बदल जायगा। यदि विकिरण-विश्लेषण द्वारा यह ज्ञात हो जाय कि कौन-से परमाणु कितने बने हैं, तो उस वस्तु के प्रारम्भिक तत्त्वों के समिश्रण का ज्ञान होना सम्भव है।

सक्रियकरण विश्लेषण द्वारा किसी वस्तु में न्यूनतम अशुद्धियों की उपस्थिति का ज्ञान हो सकता है। जो अशुद्धि एक लाख या कभी एक करोड़ भागों में १ से भी कम मात्रा में उपस्थित हो, उसका पता इस विधि द्वारा लगाया जा सकता है। अर्द्ध संचालक (जैसे सिलिकन, जर्मेनियम आदि) के गुणों में बहुत थोड़ी मात्रा (दस लाख भाग में एक भाग के लगभग) के समिश्रण से बड़ा अन्तर आ जाता है। आजकल अर्द्ध चालकों के औद्योगिक उपयोग (विशेषकर इलेक्ट्रानिक क्षेत्र में) बढ़ रहे हैं। इन अर्द्ध-चालकों के गुण बहुत अल्प मात्रा के समिश्रण से बहुत बदल जाते हैं। परन्तु रासायनिक विधि से इन समिश्रणों की नाप या उनका विश्लेषण असम्भव

है। इस कारण शुद्ध अर्द्ध-चालक सक्रियकरण विश्लेषण द्वारा ही बनाये जा सके हैं।

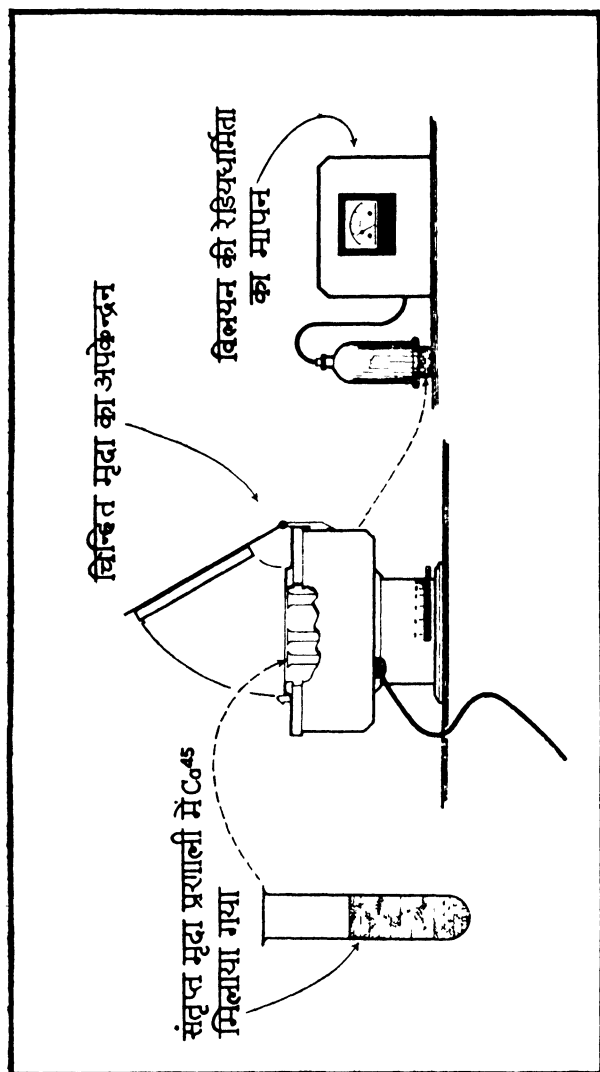
रेडियधर्मी तत्त्वों के उपयोग द्वारा रसायन-विज्ञान मानव जाति की और अधिक सेवा कर सकेगा।

रेडिय तत्त्वों का कृषि में प्रयोग

वर्तमान काल में संसार के अनेक देशों में खाद्य की समस्या सबसे बड़ी है। इस कारण यह स्वाभाविक है कि वैज्ञानिक परमाणु ऊर्जा से खाद्य उपज के बढ़ाने में काम लिया जाय। इस समय संसार के अनेक देशों में इस ओर द्रुति गति से कार्य हो रहा है। कुछ समय से भारत सरकार का ध्यान इस ओर गया है और विशेष अनुसंधानशालाओं तथा खेतों में इस समस्या पर कार्य हो रहा है।

कृषि-विज्ञान में परमाणु सम्बन्धी अनुसंधान अनेक रूपों में हो रहे हैं। इनके द्वारा फलो एवं पौधों की नस्लों को गुरु परिवर्तन द्वारा संवृद्ध किया गया है, जानवरों के चारे के गुण तथा मात्रा बढ़ायी गयी है जिससे वह अच्छा दूध दे। खाद्य पदार्थों की उपज बढ़ायी गयी, तथा उनको खराब होने से रोका गया है। कृषि-विज्ञान के कुछ प्रयोग जानवरों पर भी हुआ करते हैं।

पौधों के लिए खनिज पदार्थ भी अत्यन्त आवश्यक है, यद्यपि वे कम मात्रा में आवश्यक होते हैं। वे भूमि से किस प्रकार पौधों में प्रवेश करते हैं इसका सही ज्ञान रेडियधर्मी समस्थानिकों द्वारा हुआ है। इन अनुसन्धानों से उनके प्रवेश-मार्ग, प्रवेश-गति, वनस्पति में उनके वितरण तथा कोष द्वारा ग्रहण आदि सम्बन्धी सारी क्रियाओं की गतिविधि का ज्ञान हो जाता है। इन प्रयोगों में रेडिय कैल्शियम-४५ का उपयोग हुआ है जिससे पौधों द्वारा कैल्शियम अवशोषण के प्रक्रम का बहुमूल्य ज्ञान प्राप्त हुआ है। इन प्रयोगों में आयरन-५५ और ज़िंक-६५ द्वारा भी उपयोगी परिणाम प्राप्त हुए हैं। रेडियतत्त्वों के प्रयोगों ने यह सिद्ध कर दिया है कि फल



चित्र संख्या ३२—रेडियधर्मों कैलशियम ४५—मृदाओं में गतिज विनियम का अध्ययन

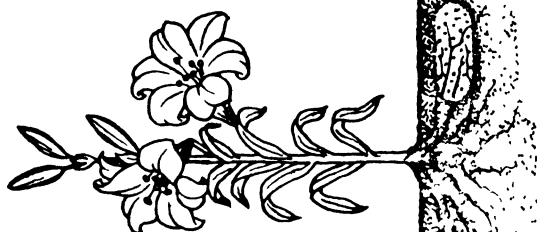
बीजों का निर्माण होते समय उनमें फ़ासफ़ोरस जमा होने लगता है। कुछ बीजों में फ़ासफ़ोरस के साथ मैगनीशियम जमा होता है। ऐसी अवस्था में पेड़ को फ़ासफ़ोरस और मैगनीशियम की बहुत आवश्यकता होती है और यह तत्त्व उसको अधिक मात्रा में मिलना चाहिए।

पौधों की उपज बढ़ाने के लिए खाद की आवश्यकता होती है, यह सभी को ज्ञात है। परन्तु मृत्तिका में उर्वरक किस रूप में और किस समय मिलाये जायं, इस प्रश्न का उत्तर देना सरल कार्य नहीं है। उदाहरण के लिये फासफेट उर्वरक को सारी भूमि में बराबर डालना ठीक होगा या समानान्तर रेखाओं में, उन्हें ऊपर डाला जाय या कुछ गहराई तक पहुँचाया जाय ? इन प्रश्नों का ठीक उत्तर सकेतक परमाणुओं द्वारा ही मिल सका है। हमें उनके द्वारा व्यापारिक उर्वरकों, कार्बनिक खाद और हरी खाद तीनों के बारे में बहुमूल्य सूचनाएं प्राप्त हुई हैं।

इस क्रिया का प्रयोग होने के पूर्व, उर्वरकों की उपयोगिता का अंदाज उपज द्वारा किया जाता था परन्तु इसमें वर्षा, ताप और रोग इन तीनों का प्रभाव भी शामिल होता था, जिससे सही परिणाम पाने में कठिनाई होती थी।

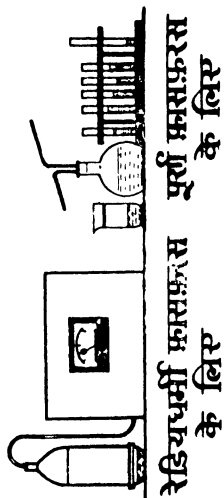
इन प्रयोगों में सर्वप्रथम उर्वरक के साथ फ़ासफ़ोरस आदि उपयोगी तत्त्वों के रेडियधर्मी समस्थानिक मिलाये जाते हैं जिनकी मात्रा बहुत कम होती है। इस प्रकार के चिह्नित उर्वरक को प्रायोगिक प्लाट में डालकर पौधों या पेड़ों की वृद्धि देखी जाती है। पौधा या पेड़ उर्वरक में वर्तमान पोषक तत्त्व प्राप्त करेगा। जिस समय पेड़ या पौधा पोषक तत्त्व अवशोषित करेगा, तभी उसके साथ उसका रेडियधर्मी समस्थानिक भी अवशोषित होगा। किसी स्थान-विशेष में पोषक तत्त्व की उपस्थिति का ज्ञान रेडियतत्त्व से ही होगा। यदि गणक ने तने में रेडियधर्मिता का सकेत किया तो हम जान लेंगे कि तने में पोषक तत्त्व आ गया है। जिस समय पत्ती या फल में पोषक तत्त्व प्रवेश करेगा उस समय उनके द्वारा विकिरण दिये जाने लगेंगे।

उर्वरक में
सम्मिलित P^{३२}



मिट्टी में मिश्रित
चिह्नित उर्वरक

पौदे तथा मिट्टी की परीक्षा



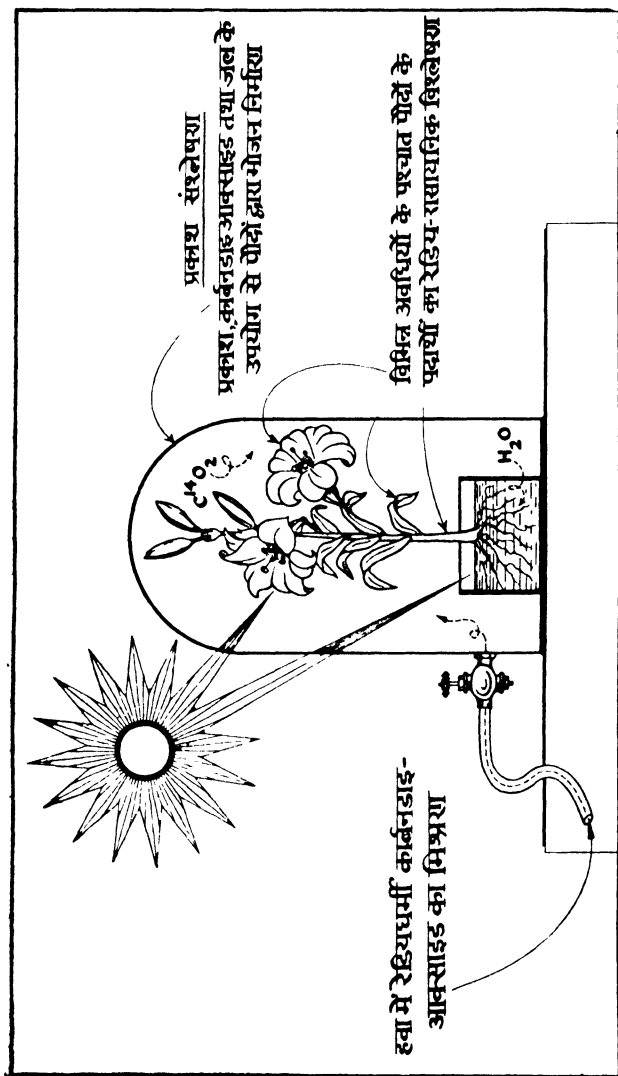
रेडियधर्मी फासफ़रस के लिए
पूर्ण फासफ़रस के लिए

उर्वरक प्रयोगों द्वारा हमें यह सूचना मिली है कि पेड़-पौधे पोषक केवल जड़ से ही नहीं प्राप्त करते, वरन् वे उन्हें फल, पत्तियों, फूल, तना और शाखों द्वारा भी ग्रहण करते हैं। कुछ पौधों में देखा गया है कि उनकी पत्तियों को यदि पोषक तत्त्व-विलयन में डाले तो वे शीघ्रता से उस तत्त्व को ग्रहण कर लेती हैं। कुछ पेड़ों पर उर्वरक छिड़कने से अगले वर्ष उनकी वृद्धि अधिक हो जाती है। कपास के बीज के साथ उर्वरक रखने से उसकी उपज बढ़ जाती है। फासफेट उर्वरक को भूमि में मिलाने से प्रारम्भिक काल में कुछ पौधे अधिकतर उर्वरक फासफोरस ग्रहण करते हैं। भूमि का फासफोरस कुछ समय पश्चात् उपयोग में आता है। इससे यह ज्ञात हुआ कि गेहूँ, मक्का आदि की खेती के प्रारम्भिक काल में ही फासफेट उर्वरक देना चाहिए। जड़ों के लिए अनावश्यक उर्वरकों के संबन्ध में हुए प्रयोगों से भी उत्साहवर्धक परिणाम प्राप्त हुए हैं।

कार्बन-१४ समस्थानिक कुछ प्रयोगों में अत्यन्त लाभकर सिद्ध हुआ है। इसके द्वारा प्रकाश-संश्लेषण के बहुमूल्य प्रयोग सम्भव हुए हैं। हमें यह ज्ञात ही है कि पत्तियाँ तथा जड़े दोनों ही वायु में वर्तमान कार्बन द्वि-आक्साइड ग्रहण करती हैं। प्रकाश-संश्लेषण क्रिया में जड़ का विशेष स्थान है। पेड़-पौधों में इस क्रिया द्वारा बने यौगिक जड़ में विभिन्न रूपान्तरण करते हैं। जड़ ही वृक्ष के चयापचय का नियन्त्रण करती है। प्रकाश-संश्लेषण में आयरन अथवा लौह यौगिकों का विशेष प्रभाव होता है, यह भी रेडिय-ग्रमी प्रयोगों से ज्ञात हुआ है। इस क्रिया में न केवल कार्बोहाइड्रेट ही, वरन् प्रोटीन भी बनता है।

इन प्रयोगों से विभिन्न पोषक तत्त्वों और यौगिकों की गति का भी पकेत मिलता है। यह देखा गया है कि पोषक तत्त्व जड़ से पत्तियों की ओर २ से ४ मीटर प्रति घंटे की गति से यात्रा करते हैं। शर्करा की गति ०.७ से ०.८ मीटर प्रति घंटा देखी गयी है। कुछ पेड़ों में जल बड़ी तीव्र गति से यात्रा करता है। (१४ मीटर प्रति घंटा)।

भूमि में निरन्तर उर्वरता बनाये रहना किसान के लिए अति आवश्यक-



चित्र संख्या ३४—रेडियधर्मो कार्बन—पौदों द्वारा भोजन-उत्पादन अथवा प्रकाश-संश्लेषण

श्यक है। निरन्तर खेती होते रहने से भूमि में पोषक तत्वों की मात्रा कम हो जाती है और एक अवस्था ऐसी आती है जब उस में उपजाऊ खेती के लिये पोषक तत्व डालना आवश्यक हो जाता है। किस पैदावार से कौन-से पोषक तत्व का क्षय होता है, कैसा खाद डालने से कौन-से पोषक तत्व उपलब्ध होते हैं, इन प्रश्नों का हल जानना किसान के लिए अति आवश्यक है। इनके ठीक हल सकेतकों द्वारा ज्ञात हो रहे हैं। भूमि में तत्वों की विनिमय-प्रतिक्रिया निरन्तर चलती रहती है। सकेतकों के प्रयोगों द्वारा इस विषय के ज्ञान की वृद्धि हो रही है।

अच्छी खेती के लिए यह आवश्यक है कि उपज को बीमारियों और हानिकारक जीवाणुओं से बचाया जाय। यदि इनके द्वारा नष्ट होने वाले खाद्य पदार्थों को बचाया जा सके तो विश्व की खाद्य समस्या अपने आप हल हो जाय। इस कार्य में रेडियधर्मी तत्व बड़े सहायक सिद्ध हुए हैं। हानिकारक जीवाणुओं के कार्य को सकेतकों द्वारा जानना सम्भव हो गया है। विषाणु-संक्रमण द्वारा पौधों को पहुँचायी गयी हानियों की जाँच में कार्बन-१४ की बड़ी उपयोगिता है। इन प्रयोगों में मुख्यतः कार्बन-१४, सल्फर-३५ फ़ास्फ़ोरस-३२, केलसियम-४५ और आयरन-५५ एवं ५९ उपयोगी सिद्ध हुए हैं।

वनस्पति-हारमोन विषयक ज्ञान प्राप्त करने में रेडियतत्व बड़े काम आये हैं। जिबरेलिक अम्ल^१ नामक वनस्पति-हारमोन का पौधों की वृद्धि पर पर्याप्त प्रभाव पड़ता है। पौधे में इसकी उपस्थिति से उसका तना, मोटा, पत्तियाँ बड़ी, फल की उपज अधिक और फूलों की संख्या भी अधिक होती है। कार्बन-१४ द्वारा इस यौगिक के प्रभाव की प्रक्रिया पर दो-तीन वर्षों से कार्य हुआ है जिससे ज्ञात हुआ है कि इस यौगिक का एक ग्राम का एक अरबवां ($\frac{1}{10^8}$) भाग पौधों की उपज बढ़ाने में पर्याप्त होता है।

हाइड्रोजन के समस्थानिक ड्यूटीरियम और ट्राइटियम का भी आजकल कृषि अनुसंधानों में उपयोग हो रहा है। सोयाबीन के पौधे पर ट्राइटियम जल का उपयोग करके उसमें उत्पन्न अम्लों को अलग किया जा सका है और उनके संचरण का ज्ञान भी हो सका है।

विकिरण-प्रयोग आधुनिक कृषि के आवश्यक अंग बन गये हैं। इनके द्वारा नये पौधों की नयी किस्में प्राप्त हुई हैं जो शक्तिशाली और रोग प्रतिरोधी होती हैं। अमेरिका की बकहेवन राष्ट्रीय अनुसन्धानशाला और अन्य स्थानों में गामा-उद्यान बनाये गये हैं। इसमें कोबाल्ट-६० द्वारा पेड़-पौधों आदि को गामा-विकिरण से प्रभावित किया जाता है। भारतीय कृषि-अनुसन्धान महाविद्यालय, नयी दिल्ली में भी एक ऐसा ही गामा-उद्यान निर्मित हुआ है।

इस दिशा में प्रारम्भिक अनुसन्धान एक्स-विकिरण एवं रेडियम द्वारा हुआ करते थे। परन्तु अब नये रेडियधर्मी तत्व उपलब्ध हैं जो सस्ते तथा अधिक उपयोगी हैं। इन प्रयोगों द्वारा अच्छे पौधों, बीजों और फलों की प्राप्ति होती है और साथ में वंशानुगत परिवर्तन और विकिरण-वंश-परिवर्तन का ज्ञान भी अधिक प्राप्त हो रहा है।

परमाणु-विकिरण द्वारा पौधों में वंशानुगत परिवर्तन आते हैं। कभी-कभी यह लाभकारी होते हैं। लाभकारी परिवर्तन से अच्छे प्रकार के पेड़ पौधे तैयार हो सकेगे। यह परिवर्तन विभिन्न रूपों में हो सकते हैं। इनके द्वारा पौधों का बाहरी रूप बदल सकता है। इसमें दैहिक अन्तर आने के कारण फलों आदि के पकने का समय बदल जा सकता है, वह अधिक ऊष्मा या ठंड सहने में समर्थ हो सकते हैं। इस कारण ऐसे प्रयोगों से विशाल उपयोगी सम्भावनाओं की कल्पना हम कर सकते हैं।

न्यूट्रान-विकिरण के कुछ प्रयोग जई पर किये गये। इन प्रयोगों से लगभग एक वर्ष में ही गेरुई-प्रतिरोधी जई के बीज उपलब्ध हो गये। यदि वृक्ष-प्रजनन की सामान्य विधि का उपयोग किया जाता तो संभवतः इस कार्य में १० वर्ष से अधिक लगते और धन भी कहीं अधिक व्यय होता।

सोवियत सघ में इस दिशा में पर्याप्त कार्य हुआ है। १९५४ में मास्को के निकट बंदगोभी के बीजों को विकिरण द्वारा प्रभावित किया गया। अतः इन बीजों से उत्पन्न हुई गोभियाँ आठ दस दिन पहले ही तैयार हो गयी। मक्का पर रेडियो कोबाल्ट के प्रवाह द्वारा उसकी उपज १५ प्रतिशत बढ़ गयी। इस विधि से गाजर की उपज भी २५ प्रतिशत बढ़ायी जा सकी है। इन प्रयोगों के दो रूप हैं—एक प्रकार के अनुसंधानों में विकिरण स्रोत को खेत के मध्य में रख देते हैं जिससे वह दूर से ही पेड़ पौधों को प्रभावित करता रहे। दूसरे प्रयोगों में रेडियधर्मी तत्त्व को भूमि के अन्दर विशेष स्थानों पर गाड़ देते हैं। इस प्रकार वह भूमि के अन्दर से बीज, तने और पत्तियों को प्रभावित करता रहता है।

रेडियधर्मी विकिरणों की सहायता से पौधों में लगने वाले हानिकारक परोपजीवियों से बचाव होने की भी आशा है। यह ज्ञात हुआ है कि खाद्य पदार्थों को विकिरणों द्वारा प्रभावित करने के पश्चात् अधिक काल तक रखा जा सकता है। यदि आलुओं के भण्डार के बीच छोटी छोटी नलिकाओं में कोबाल्ट-६० रख दिया जाय तो ये आलू वर्षों तक रखे जा सकते हैं और उनका स्वाद तथा स्वाद्यमान ताजे आलू के समान रहेगा। अधिकतर खाद्य पदार्थों को वाष्प के बन्द वायुमण्डल में गर्म कर निर्बीजित करते हैं। रेडियधर्मी विकिरण द्वारा खाद्य पदार्थों को बिना गर्म किये और बहुत अल्पकाल में पूर्णतया निर्बीजित किया जा सकता है। इस प्रकार की निर्बीजित तरकारी, मांस, फल आदि किसी प्रकार हानिकारक नहीं होते। सोवियत सघ ने इस विधि द्वारा निर्बीजित पदार्थों का क्रय आरम्भ कर दिया है।

कुछ काल से विकिरण द्वारा प्रभावित नये किस्म के बीज अमेरिका में सामान्यतः बिकने लगे हैं। इनमें टमाटर, मक्का, तथा कुछ फूलों के बीज विशेष रूप से अच्छे प्रतिफल दे रहे हैं। टमाटर के ये नये बीज बड़े तथा फले-फूले टमाटरो की फसल दे रहे हैं। बहुत-से फूलों के रंग विकिरण द्वारा बदल गये हैं तथा इन फूलों से निकले बीज नये रंग के फूल देते हैं। इस प्रकार कई टमाटर परिवारों के फूलों में नये-नये सुन्दर रंग उपलब्ध हो गये हैं।

पशु-प्रयोग कृषि-विज्ञान का बड़ा आवश्यक अंग है। पशुपालन में रेडिय तत्वों के बहुमुखी प्रयोग किये गये हैं जिनके द्वारा पशु-पक्षियों में होने वाली चयापचय-क्रिया का ज्ञान आगे बढ़ सका है।

खनिजीय चयापचय प्रयोगों के लिए रेडियतत्त्व अत्यन्त उपयुक्त हैं। उनके द्वारा ऐसे उन तत्वों का सरलता से ज्ञान हो जाता है जिनकी शरीर को न्यूनतम मात्रा में आवश्यकता है, परन्तु जिनकी कमी से शारीरिक व्याधियाँ हो जाने की सम्भावना रहती है। ऐसे तत्वों में कोबाल्ट भी है। भेड़-बकरियों को इस तत्व की दस करोड़ (१०) भाग में चार से सात भाग तक की मात्रा में आवश्यकता रहती है। अनुमान किया गया है कि घोड़ों, सुअरों, खरगोशों आदि को इससे भी कम मात्रा में कोबाल्ट की आवश्यकता पड़ती है। इतनी मात्रा के तत्व का सामान्य रासायनिक विश्लेषण कर सकना दुष्कर कार्य है। परन्तु सकेतक विधि से इस तत्व की आवश्यकता तथा चया-पचय के मार्ग का भली प्रकार ज्ञान हो गया है। कोबाल्ट विटामिन बी-१२ का आवश्यक अंग है। रेडिय प्रयोगों से मोलीब्डेनम की आवश्यकता पर प्रकाश पड़ा है। अभी तक वनस्पति में इस तत्व की आवश्यकता मानी जाती थी परन्तु पशु-प्रयोगों द्वारा सिद्ध हुआ कि एक आवश्यक एनजाइम^१ में मोलीब्डेनम रहता है। कुछ प्रयोगों से आश्चर्यजनक खोज हुई कि पशु सिस्टीन^२ एवं मेथियोनीन^३ नामक एमीन अम्लों^४ का अपने शरीर में निर्माण कर लेते हैं। यह अम्ल खनिज पदार्थों से प्राप्त सल्फेट द्वारा निर्मित होते हैं। इस प्रकार पशुओं के लिए अकार्बनिक सल्फेट की उपयोगिता का ज्ञान हुआ। इन प्रयोगों में रेडिय सल्फर, फास्फोरस, आयरन, कोबाल्ट, ताँबे और मोलीब्डेनम, सीज़ियम, कैल्शियम, जिंक, स्ट्रॉंशियम, आयोडीन और टेंटलम का बहुधा उपयोग किया गया है।

1. Enzyme

2. Cystine

3. Methionine

4. Amino-acids

पशुओं की कार्बनिक और जैवरसायनिक क्रियाओं में भी रेडिय तत्वों ने हाथ बटाया है। गलग्रंथि की सक्रियता के लिए उपकारी परीक्षाएँ रेडियो आयोडीन द्वारा सम्भव हुई और एमीन अम्लों की क्रियाएँ रेडियो-सल्फर द्वारा की गयी। पशुओं को होने वाली न्यूनता-व्याधियों का सही हल रेडियो तत्वों द्वारा ढूँढ लिया गया। कुछ सक्रामक रोगों की सफल चिकित्सा भी विकिरण द्वारा की गयी है। उदाहरणार्थ, स्ट्राशियम-९० द्वारा निकली बीटा किरणें गायों आदि के चक्षुओं और चर्म रोगों पर रामबाण सिद्ध हुई है।

हानिकारक कीड़ों को मारने के लिए कीटमारकों का उपयोग बहुत काल से होता आ रहा है। ये किस प्रकार कीटाणुओं पर प्रभाव डालते हैं इसका अध्ययन बहुत आवश्यक होता है। इस विषय की जानकारी से उनका और भी अधिक अच्छे ढंग से उपयोग किया जा सकता है। और भी अधिक प्रभावशाली कीटमारकों के बनाने में भी उससे सहायता प्राप्त हो सकती है। रेडिय सकेतकों द्वारा यह ज्ञात हो सका है कि अमुक कीटमारक का सबसे अधिक प्रभाव किस प्रकार पड़ता है और उसमें किस श्रेणी के कीटाणुओं को नष्ट करने की क्षमता है। कीटाणुओं के स्वभाव, उनके प्रभाव की सीमा, गति तथा विकिरण का ज्ञान भी सकेतक विधि द्वारा ही सम्भव हुआ।

दिन प्रति-दिन सकेतक परमाणुओं के अधिक उपयोग जगत् को ज्ञात होते जा रहे हैं। उनसे कृषि के प्रत्येक पहलू को लाभ प्राप्त हो रहा है। इन प्रयोगों द्वारा किसान अधिक तथा अच्छा अनाज पैदा करता है। साथ में अपने पशुओं को भी अधिक उपयोगी बना रहा है।

चिकित्सा एवं जीव-विज्ञान में परमाणु

रेडिय तत्वों की उपलब्धि से सबसे अधिक लाभ जीव एवं चिकित्सा विज्ञान को पहुँचा है। इनकी समस्याओं को मुलज्ञाने के लिए सकेतक तत्व अति उपयुक्त हैं। शरीर के अन्दर होने वाली क्रियाएँ इतनी जटिल तथा

सूक्ष्म मात्रा में होती है कि बहुधा रसायन की सामान्य विधियां उनके लिए अनुपयुक्त रहती हैं। रेडियतत्त्व यह कार्य सरलता से करते हैं।

इसी कारण रेडिय समस्थानिकों का सबसे अधिक उपयोग चिकित्सा तथा सम्बन्धित विज्ञानों में हुआ करता है। रेडियधर्मी तत्त्व अपने स्थिर समस्थानिकों के साथ इतनी शीघ्रता से मिल जाते हैं कि दोनों में कोई अन्तर नहीं रहता। शरीर के एक छोर पर डालने से वे शीघ्र ही शरीर के सब अंगों में फैल जाते हैं। इस कारण शरीर की क्रियाओं की पहली को इन्ही के द्वारा सुलझाना उपयुक्त समझा गया है।

रेडियधर्मी तत्त्वों का चिकित्सा में उपयोग कोई नयी बात नहीं है। रेडियम बहुत काल से इस कार्य में काम आता रहा है। पहले इसके-दुक्के अस्पतालों में यह चिकित्सा उपलब्ध थी (रेडियम अत्यन्त महंगा तत्त्व है)। परन्तु अब कृत्रिम रेडिय तत्त्वों की खोज से यह चिकित्सा सामान्य होती जा रही है। आज संसार के सहस्रों अस्पतालों में ये सुविधाएँ मिलती हैं। इन तत्त्वों के उपयोग भी दिन प्रति दिन बढ़ रहे हैं। इनके द्वारा अनुसंधान कर्ताओं को मालूम हुआ कि शरीर के विभिन्न उतकों द्वारा कौन-से तत्त्व अवशोषित होते हैं। शरीर के अन्दर तत्त्वों की गति-क्रिया का ज्ञान आज बहुत सरलता से हो जाता है। हमें ठीक प्रकार ज्ञात है कि अमुक तत्त्व आँतों में किस प्रकार समाता है और रक्त के प्रवाह के साथ कैसे मिल जाता है। कोषों के यौगिक-ग्रहीत्व का रेडिय तत्त्वों द्वारा अध्ययन किया गया है। उसके कुछ उदाहरण नीचे दिये जा रहे हैं।

यदि हमें यह जानना हो कि शरीर में सोडियम किस गति से यात्रा करता है और किस गति से शरीर के विभिन्न अंगों द्वारा अवशोषित होता है तो इस कार्य के लिए हमें थोड़े-से रेडियधर्मी सोडियम की आवश्यकता पड़ेगी। इसको प्राप्त करना अब सरल है। यदि हम साधारण नमक प्रतिकारी में कुछ समय के लिए रख दें तो प्रतिकारी अथवा परमाणुपुज द्वारा उस साधारण नमक का थोड़ा भाग रेडिय-सोडियम में बदल जायगा। इस नमक को भोजन के साथ खाने अथवा उसे नाड़ियों द्वारा शरीर में प्रविष्ट करने

पर हम उपर्युक्त क्रियाओं का अध्ययन कर सकेंगे। जहाँ-जहाँ जिस गति से यह सोडियम पहुँचेगा उसी गति और समय से वहाँ रेडियधर्मिता भी पहुँचेगी जिसे गणक द्वारा देखा जा सकता है। सोडियम प्रयोग द्वारा हमें सूचना मिली है कि रक्त के साथ सोडियम अति तीव्रता से चलता है। हाथ से हृदय तक जाने में सोडियम को १५ सेकंड का समय लगता है।

हाइड्रोजन के रेडियधर्मी समस्थानिक ट्राइटियम द्वारा भी इसी प्रकार के प्रयोग किये गये जिनसे यह ज्ञात हुआ कि रक्त-नाड़ियों में जल अति शीघ्रता से हलचल करता है। यदि दिन भर की हलचल को नापा जाय तो २० बैरल प्रति दिन की गति आयेगी।

इन अनुसन्धानों द्वारा हमें यह ज्ञात होता है कि शरीर के प्रत्येक भाग में प्रतिक्रियाएँ चलती रहती हैं। प्रत्येक भाग से पुराने परमाणु निकलते रहते हैं और उनका स्थान नये परमाणु ले लेते हैं। इस प्रकार शरीर का काम तीव्र गति से चलता है। आज हमारे शरीर में जितना सोडियम है उसका आधा भाग लगभग १० दिन में बाहर चला जायगा और नया सोडियम उसका स्थान ले लेगा। हाइड्रोजन तथा फास्फोरस भी इसी गति से चलायमान होते हैं। कार्बन की आधी मात्रा को बदलने में दो माह से कम समय लगता है। यही स्थिति एमीन अम्ल, प्रोटीन आदि अन्य कार्बनिक पदार्थों की भी है। जटिल अणु टूट कर छोटे होते हैं। इस क्रिया द्वारा प्राप्त ऊर्जा हम अपने दैनिक कार्य में लाते हैं।

चिकित्सा निदान में रेडियधर्मी तत्त्वों के अनेक उपयोग हैं जिनमें से रक्त-आयतन, रक्त-परिवहन, हृदय की घडकन-क्षमता, गलग्रन्थि की क्षमता, मस्तिष्क की ग्रन्थि की पहचान आदि में वे विशेष स्मरणीय हैं।

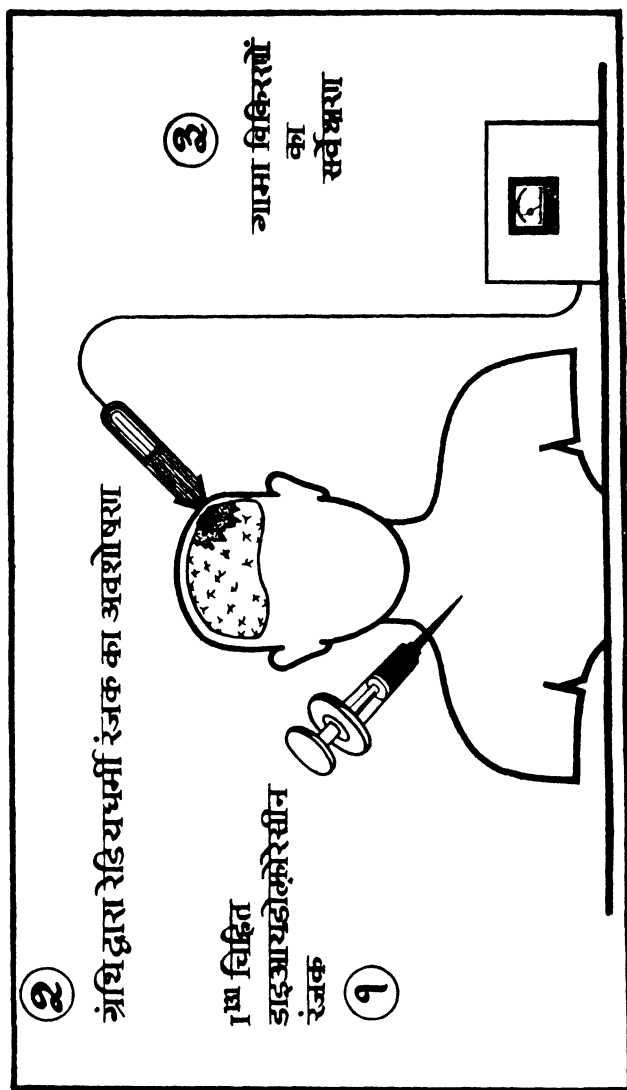
कभी-कभी किसी रोगी के सम्पूर्ण रक्त का आयतन ज्ञात करना आवश्यक हो जाता है, विशेषकर यदि उस पर शल्य-चिकित्सा होने वाली हो। इस क्रिया में सीरम अल्बुमिन के साथ थोड़ी रेडियधर्मी आयोडीन मिश्रित कर रक्त में प्रविष्ट कर देते हैं। कुछ ही समय में परिवहन द्वारा आयोडीन

सारे रक्त में घुल मिल जायेगी। समुचित समय के पश्चात् रक्त का नमूना लेकर उसमें रेडियधर्मी आयोडीन की जाँच की जाती है और आयोडीन की तनुता की मात्रा से सम्पूर्ण रक्त की मात्रा ज्ञात हो जाती है।

मनुष्य शरीर के गले के भागों में गलग्रन्थि एक बहुत आवश्यक अंग है। यह शरीर की सम्पूर्ण क्रियाओं पर नियंत्रण रखता है। यदि इसकी क्रिया-गति तीव्र या मन्द हो जाय तो शरीर की गति में गड़बड़ी आ जाती है। इस ग्रन्थि द्वारा थायराक्सीन नामक हार्मोन बनता है जिसके अणु में आयोडीन का परमाणु स्थित है। थायराक्सीन का नियंत्रित मात्रा में बनना आवश्यक है। रोगी को आयोडीन का यौगिक, जैसे सोडियम अक्साइड, पानी के विलयन में पीने को दिया जाता है। हमें ज्ञात है कि शरीर में जाने वाली सारी आयोडीन गलग्रन्थि द्वारा अवशोषित होती है। इस प्रयोग में अवशोषण गति को रेडिय आयोडीन द्वारा ज्ञात करते हैं। यदि गाइगर-मुलर गणक या अन्य कोई विकिरण पहचान वाला यंत्र गले पर रखा जाय तो रेडिय आयोडीन की मात्रा का ज्ञान हो जायगा। अवशोषण गति द्वारा गलग्रन्थि की क्रिया-गति मालूम हो जायगी। इस गति तथा सामान्य मनुष्य की क्रिया-गति की तुलना करने से ग्रन्थि की दशा का अनुमान होता है।

यदि शल्य-चिकित्सक को मस्तिष्कीय ग्रन्थि की शल्य-क्रिया करना हो तो यह नितान्त आवश्यक हो जाता है कि ग्रन्थि का ठीक स्थान तथा फैलाव पहले से ज्ञात हो। इस कार्य के लिए डाइआयडोफ्लोरसीन यौगिक का उपयोग होता है। इस यौगिक में रेडियधर्मी आयोडीन उपस्थित रहती है। इस यौगिक को नियत स्थान में प्रविष्ट करने पर अधिकांश यौगिक का ग्रन्थि के उक्त अवशोषण कर लेते हैं और रेडियो आयोडीन ग्रन्थि में सग्रहीत हो जाती है। गणक द्वारा रेडियधर्मिता की जाँच करने पर ग्रन्थि का ठीक स्थान ज्ञात हो जाता है।

रेडियधर्मी समस्थानिकों का उपयोग चिकित्सा कार्य और औषधियों के रूप में हो रहा है। कुछ विकिरण सम्बन्धी उपयोग एक्स-विकिरण तथा



चित्र संख्या ३५--रेडियधर्मी आयोडीन १३१--रेडियधर्मी रंजक द्वारा मस्तिष्क-ग्रन्थि की पहचान

रेडियम चिकित्सा की भाँति हैं। इस विधि को 'टेलीथेरेपी' कहते हैं। इसमें बहुधा कोबाल्ट-६० उपयोग में लाते हैं। यह रेडियम से सस्ता होता है और साथ ही इसमें अनेक अच्छे गुण वर्तमान हैं। इसके द्वारा रेडियम से अधिक नियंत्रित गामा विकिरण उत्पन्न होते हैं। सीजियम-१३७ का भी इस रूप में उपयोग प्रारम्भ हो गया है। सीजियम-१३७ की अर्धजीवन अवधि कोबाल्ट से अधिक (२३ वर्ष) है। कुछ समय पहले तक इस समस्थानिक को तैयार करना कठिन कार्य था, परन्तु अब यूरेनियम खण्डन पदार्थों से यह सरलता से निकल आता है।

टेलीथेरेपी द्वारा सहस्रों रोगियों को मृत्यु के मुख से बचाया जा चुका है। इसके वेगशाली गामा-विकिरणों को शरीर के किसी स्थान पर संकेन्द्रित कर किसी ग्रंथि के कोषों का नाश किया जा सकता है। इसके द्वारा फेफड़ों के नासूर तथा चक्षु की ग्रंथि जैसी कठिन व्याधियों की चिकित्सा की जा रही है।

इसके अतिरिक्त स्वर्ण, फासफोरस, आयोडीन, सोडियम, स्ट्रॉंशियम आदि के रेडियवर्मी समस्थानिकों का रक्त एवं चर्म के अनेक रोगों की चिकित्सा में उपयोग हो रहा है। कुछ ऊपरी रोगों में ऐसे समस्थानिक का प्रयोग होता है जो बीटा-कण देते हैं। इनको चर्म या अन्य रौगिक स्थानों पर सुई द्वारा अथवा दूसरे रूप में रख देते हैं। रेडिय तत्त्व द्वारा स्वतन्त्र बीटा-कण रौगिक स्थान पर समाकर चर्म आदि रोगों को दूर करते हैं। तत्त्व को पतले प्लास्टिक की नलिका में रखा जाता है जो बीटा-कण को आर-पार जाने देती है। इसी प्रकार गलग्रंथि की तीव्र गति को संयंत्रित करने में आयोडीन काम आ रहा है।

कैंसर एक अत्यन्त भयंकर रोग है जिसका अभी तक कोई निदान नहीं निकल सका। परन्तु इसकी चिकित्सा की खोज में रेडियतत्त्व अत्यन्त

1. Teletherapy

उपयोगी हो रहे हैं। शरीर के किसी भाग में कैंसर होने से वहाँ पर बहुत परिवर्तन आ जाते हैं। ये क्यों आते हैं और इन्हें कैसे पहचाना जाय यह समस्या रेडियतत्त्व सुलझा रहे हैं। कैंसर की प्रारम्भिक अवस्था में इन तत्त्वों द्वारा सफल चिकित्सा भी हो सकी है। जिससे रोगी अनेक वर्षों तक व्याधिरहित अवस्था में जीवित रहे हैं। इसमें अनेकों रेडिय तत्त्वों का प्रयोग हो चुका है जिनमें स्वर्ण-१९८, लेंथेनम-१४०, फासफोरस-३२, इट्रियम-९०, कोबाल्ट-६०, टैंटेलम-१८२, स्ट्रांशियम-९०, सीजियम-१३७ मुख्य हैं।

औषधि-विज्ञान एवं चिकित्सा-निदान में रेडियधर्मी तत्त्वों का उपयोग कुछ समय से ही होना आरम्भ हुआ है। इसमें दिन प्रतिदिन सुधार हो रहे हैं। इसके द्वारा नयी औषधियों का निर्माण सम्भव हुआ है। हमें पूर्ण आशा है कि शीघ्र ही मनुष्य परमाणु ऊर्जा द्वारा अपनी इच्छानुसार अपना जीवन बना सकेगा। मनुष्य के हाथ में इस समय बहुत शक्तिशाली साधन है जिससे उसकी जीवन अवधि बढ़ रही है और रोगों से छुटकारा मिल रहा है।

रेडिय-तत्त्वों द्वारा ऊर्जा-उत्पादन

रेडिय-तत्त्वों की उपयोगिता बढ़ाने के अनेक अनुसंधान हो रहे हैं। इनमें से एक जिसमें इन तत्त्वों द्वारा स्वतन्त्र विकिरण या उष्मा को ऊर्जा में परिणत करने का प्रयत्न किया जा रहा है—अत्यन्त रोचक है। प्रतिकारी में परमाणु-खण्डन से स्वतन्त्र हुई ऊर्जा के विभिन्न उपयोग हैं जिन्हें हमारे पाठक अब जान गये होंगे। परन्तु रेडियधर्मी समस्थानिकों की ऊष्मा अथवा विकिरण का उपयोग एक क्रांतिकारी विचार है। इसके पूर्णतया सफल होने पर हमारे हाथ में ऐसे नन्हें ऊर्जा घर आ जायेंगे जिन्हें कहीं भी अपने साथ ले जा सकेंगे।

यद्यपि ये प्रयोग अभी परीक्षा-स्तर पर हैं, परन्तु इनके द्वारा उत्साह-वर्द्धक फल प्राप्त हुए हैं। इस सिद्धान्त पर संयुक्त राज्य अमेरिका की रेडियम कारपोरेशन फर्म ने एक लैम्प बनाया है जो रेलवे सिगनल में दस

वर्ष तक लगातार कार्य करता रहेगा। इस लैम्प को किसी बाहरी ऊर्जा की आवश्यकता न होगी। लैम्प में रेडियधर्मी क्रिप्टान गैस का उपयोग किया गया है। गैस काँच के लट्टू में बन्द है। इस लट्टू के एक ओर काँच का ताल लगाया गया है जिसकी अन्दरूनी सतह पर फासफर-मणिभ का लेप है। क्रिप्टान द्वारा स्वतन्त्र ऊर्जा से फासफर मणिभ में चमक उत्पन्न होती है जो ताल द्वारा सकेन्द्रित होकर किसी दिशा विशेष में प्रकाश देगी। इसके प्रकाश से अंधेरी रात में १ मीटर दूरी पर समाचारपत्र पढ़ा जा सकता है। इस लैम्प को रात्रि में ५०० मीटर दूरी से देख सकते हैं। इस प्रकार यह रेलवे के सतर्कता सूचक का कार्य सुन्दरता से कर सकेगा। इस संकेतक में विद्युत्-तार तथा बल्ब आदि की आवश्यकता नहीं होती, इसी कारण यह यंत्र सुविधाजनक सिद्ध हुआ है। तूफान पानी आदि से इसके नष्ट होने की आशंका भी नहीं है।

इसी सिद्धान्त पर एक छोटी परमाणु बैटरी बनायी गयी है जिसमें प्रोमीथियम-१४७ नामक समस्थानिक कार्य करता है। प्रोमीथियम से निकले बीटा-कण कैडेमियम सल्फाइड फास्फर को उत्तेजित करते हैं। इससे उत्पन्न प्रकाश को प्रकाशकोष द्वारा विद्युत् में परिणत किया जाता है। इस बैटरी में १ वोल्ट विभव अन्तर की विद्युत् उत्पन्न होती है। यह बैटरी १५० सेन्टीग्रेड निचले ताप पर भी भली प्रकार कार्य करेगी। वह जल के वाष्प ताप पर भी सुगमता से कार्य करेगी। प्रोमीथियम-१४७ की अर्धजीवन अवधि २.६ वर्ष है। इस कारण यह बैटरी कई वर्षों तक कार्य करने की क्षमता रखती है।

१९५९ के प्रारम्भ में एक नवीन विद्युत्-उत्पादक का अमेरिका में निर्माण हुआ। इस यंत्र का नाम स्नैप'-३ रखा गया। इसमें रेडियधर्मी तत्वांतरण द्वारा उदित ऊष्मा को विद्युत् ऊर्जा में परिणत किया गया है।

1. Snap—III.

इस प्रथम निर्मित यंत्र का भार केवल पांच पौंड या ढाई किलोग्राम है। इसका व्यास १० से० मी० तथा ऊँचाई १३ से० मी० है। यह अतरिक्ष यानों में सुगमता से कार्य कर सकेगा।

स्नैप तृतीय में पोलोनियम-२१० का उपयोग हुआ है। इस रेडियतत्त्व की नन्ही गोली यंत्र के मध्य में रखी है। इसको चारों ओर से २७ तापविद्युत् युग्म घेरे हुए हैं। यह रेडिय तत्त्व की ऊष्मा ग्रहण कर चालित हो विद्युत् उत्पन्न करते हैं। पोलोनियम की अर्धजीवन अवधि १३८ दिन है। प्रथम अर्धजीवनकाल में यह यंत्र नौ सहस्र (९,०००) वाट घटा विद्युत् उत्पन्न करेगा। २ किलोग्राम की सर्वश्रेष्ठ रासायनिक बैटरी इतने समय में केवल ४०० वाट घटा विद्युत् दे सकेगी। दूसरी अर्धजीवन अवधि में यह इसकी आधी विद्युत्-ऊर्जा उत्पन्न करेगा। भविष्य में ऐसी बैटरी में सीरियम-१४४ का उपयोग होगा जिसकी अर्ध जीवन अवधि २९० दिन है। यह पोलोनियम से अधिक मात्रा में एवं अधिक काल तक ऊर्जा उत्पन्न कर सकेगा। सीरियम-१४४ यूरेनियम खण्डन क्रिया द्वारा उत्पन्न होता है और खण्डन से निकाला जा सकता है।

स्नैप तृतीय का उपयोग अतरिक्ष राकेटों में होना सम्भव है। इसका भार कम है और भविष्य में और भी कम हो जायेगा। इसका ऊँचे ताप पर प्रयोग किया जा सकता है, अतः राकेटों का सञ्चालन करते समय उदित ऊष्मा से इसे कोई हानि न पहुँचेगी।

अध्याय १५

नये तत्त्व

तत्त्वांतरण प्रयोगो से नये रेडियधर्मी तत्त्व बने। इनकी उपयोगिता हम पिछले अध्यायो मे देख चुके है। मेडलीव की सारणी देखने से हमें ज्ञात होगा कि प्रकृति में पाये जाने वाले तत्त्वों मे यूरेनियम सबसे भारी है। उसकी परमाणु सख्या ९२ है। परन्तु हाइड्रोजन (परमाणु सख्या १) से यूरेनियम के बीच में चार स्थान अथवा परमाणु सख्याएँ ऐसी है जिनमे हमे स्थायी तत्त्व नहीं मिलते और न ये तत्त्व अधिक मात्रा मे प्रकृति मे पाये गये है। ये संख्याएं ४३, ६१, ८५ और ८७ है। समय-समय पर कुछ वैज्ञानिको ने इनकी खोज के दावे किये, परन्तु वे सब सिद्ध न हो सके। इन सख्याओ वाले तत्त्व प्रकृति में नहीं मिल सके।

परन्तु मनुष्य प्रकृति से भी आगे बढ़ गया है। उसने इन तत्त्वो को कृत्रिम रूप से बना लिया है। यह कार्य तत्त्वांतरण प्रयोगों द्वारा सफल हुआ यद्यपि ये नये तत्व स्वयं अस्थिर है। इनके केवल रेडियधर्मी समस्थानिक ही प्राप्त हो सके है।

परमाणु-खण्डन क्रिया से भी इस कार्य को बड़ी सहायता मिली। यह देखा गया कि खण्डन-प्रतिक्रिया द्वारा उत्पन्न खण्डों मे ४३ और ६१ संख्या के तत्त्व थे। यूरेनियम-खण्डन-क्रिया की सम्यक् रूप से परीक्षा करने पर यह भी ज्ञात हुआ कि यूरेनियम मे तत्त्वांतरण प्रतिक्रिया द्वारा यूरेनियम से भारी तत्त्व भी बनते है। इतना ही नहीं, इन भारी तत्त्वों पर प्रतिक्रिया करने पर और भी भारी तत्त्व बने। विगत बीस वर्षों में वैज्ञानिकों ने यूरेनियम से भारी दस नये तत्त्वों का निर्माण किया। वैज्ञानिकों का यह कार्य इतिहास में स्वर्णाक्षरों से लिखने योग्य है।

यूरेनियम से हलके नये तत्त्व

परमाणु-संख्या ४३ (टेक्नीशियम)

इस तत्त्व का प्रथम निर्माण मोलिब्डेनम पर ड्यूट्रान की प्रतिक्रिया द्वारा हुआ था। ड्यूट्रानों के दण्ड को साइक्लोट्रान में त्वरित किया गया था। इसको इटैलियन वैज्ञानिक सेग्रे^१ ने सर्वप्रथम बनाया था। कृत्रिम तत्त्व होने के कारण इसका नाम टेक्नीशियम^२ रखा गया जो यूनानी शब्द टेक्नेटोस (अर्थात् कृत्रिम) पर आधारित है। इस तत्त्व के १० समस्थानिक ज्ञात हैं जिनमें सबसे अधिक स्थिर समस्थानिक का भार ९९ है। इसकी अर्धजीवन अवधि 4.7×10^4 वर्ष है।

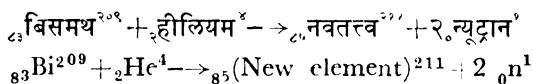
परमाणु-संख्या ६१ (प्रोमीथियम)

यह तत्त्व विरल मृदा परिवार का अंग है। १९३८ से १९४२ तक के काल में प्रजोडीमियम तथा नियोडीमियम तत्त्वों पर कुछ मूलभूत कणों द्वारा तत्त्वांतरण प्रयोग किये गये जिनके द्वारा परमाणु-संख्या ६१ का तत्त्व बनने का संकेत मिला था। परन्तु इन प्रयोगों की पुष्टि न हो सकी थी।

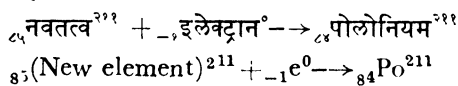
इस तत्त्व की निश्चित पहचान और विश्लेषण यूरेनियम खण्डन-क्रिया द्वारा मिले खण्डों में हुए। इस क्रिया द्वारा अनेक रेडियधर्मी तत्त्वों का समिश्रण बनता है जिसमें से ६१ संख्या का तत्त्व भी रहता है। इस तत्त्व का नाम प्रोमीथियम (एक यूनानी देवता के नाम के आधार पर) रखा गया। इसके अनेक समस्थानिक मिले हैं, परन्तु पाच की भार संख्या निश्चित रूप से ज्ञात है। इनमें सबसे स्थिर समस्थानिक का भार १४७ है जिसकी अर्धजीवन अवधि ३.७ वर्ष है।

परमाणु-संख्या ८५ (एस्टेटोन)

इस तत्त्व का सर्वप्रथम निर्माण सेग्रे तथा उनके साथ के अन्य अनुसन्धान-कर्ताओं ने १९४० में किया। उन्होंने बिस्मथ पर तीव्र अल्फा कण के आक्रमण द्वारा इस तत्त्व का निर्माण किया। अल्फा-कणों को साइक्लोट्रॉन द्वारा तीन करोड़ बीस लाख (३,२०,००,०००) इलेक्ट्रॉन वोल्ट त्वरित किया गया था।



यह तत्त्व के-इलेक्ट्रॉन-ग्रहण द्वारा पोलोनियम^{२११} में तत्त्वावर्तित हो जाता है।



इस तत्त्व के दस समस्थानिकों की खोज की पुष्टि हो चुकी है। इन सबकी अर्धजीवन अवधि बहुत अल्प है। सबसे अधिक अवधि वाला समस्थानिक २१० भार संख्या वाला है (अर्धजीवन अवधि ८३ घंटा)

इस तत्त्व का नाम एस्टेटिन^१ रखा गया है जो यूनानी शब्द एस्टोस अर्थात् 'अस्थिर' से निकला है।

परमाणु-संख्या ८७ (फ्रांसियम)

१९३९ में फ्रांसीसी वैज्ञानिक पेरी^३ ने एकटीनियम श्रृंखला में इसकी खोज की। उन्होंने अपने प्रयोगों में देखा कि ९९ प्रतिशत एकटीनियम-२२७ बीटाकण स्वतन्त्र करके रेडिय एकटीनियम बनाता है। परन्तु उसका एक प्रतिशत भाग अल्फा-कण स्वतन्त्र करके परमाणु-संख्या

८७ का तत्त्व उत्पन्न करता है। इस तत्त्व की अर्धजीवन अवधि २१ मिनट है। पेरी ने इसका नाम फ्रांसियम प्रस्तावित किया जिसे अन्तर्राष्ट्रीय रासायनिक जगत् ने स्वीकार कर लिया है। तत्त्वान्तरण प्रयोगों द्वारा इसके पाँच समस्थानिक बनाये गये हैं, परन्तु इनमें सबसे स्थिर फ्रांसियम-२२३ है जिसकी खोज पेरी ने की थी।

इन चारो तत्वों की खोज व निर्माण से आवर्त-सारणी यूरेनियम तक पूर्णतया भर गयी है। परन्तु वैज्ञानिक यही नहीं रुके। उन्होंने यूरेनियम से भी भारी तत्वों का निर्माण करना प्रारम्भ किया। इस समय तक तत्त्व १०२ संख्या तक बनाये जा चुके हैं। अब पाठको को इन तत्वों के बारे में कुछ बताया जायगा।

पार यूरेनिक तत्व

परमाणु-संख्या ९३ (नेप्चूनियम)

इस तत्व का जन्म अमेरिका के वैज्ञानिक मैकमिलन द्वारा किये गये प्रयोगों के परिणामस्वरूप हुआ। यूरेनियम पर न्यूट्रान की प्रतिक्रिया द्वारा हुए खण्डन का विश्लेषण करने पर ज्ञात हुआ कि इसके साथ एक नये तत्व का निर्माण हुआ है। इसका रासायनिक विश्लेषण मैकमिलन^१ और एबिलसन^२ ने किया जिससे यह सिद्ध हुआ कि यह तत्व संख्या ९३ का २३९ भार वाला समस्थानिक है। इसका नाम नेप्चूनियम^३ नेप्चून ग्रह के आधार पर रखा गया। इसके दूसरे २३७ भार का समस्थानिक १९४२ में खोजा गया। इस समस्थानिक की अर्धजीवन अवधि 2.2×10^4 वर्ष है। इस समय इस तत्व के ग्यारह समस्थानिक ज्ञात हैं। इनके भार २३१, २३२, २३३, २३४, २३५, २३६, २३७, २३८, २३९, २४० और २४१ हैं। ये सब रेडियधर्मी गुण से युक्त हैं।

नेप्चूनियम के गुणों के सम्बन्ध में प्रारम्भ में थोड़ा मतभेद रहा। एक विचारधारा के अनुसार उसके गुण रहेनियम^१ के अनुसारी होने चाहिए थे। सूक्ष्म निरीक्षण से यह अनुमान असत्य सिद्ध हुआ। इस तत्त्व के गुण यूरेनियम से अधिक मिलते-जुलते हैं।

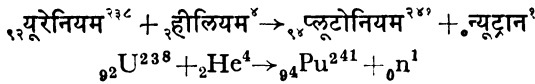
परमाणु-संख्या ९४ (प्लूटोनियम)

इस तत्त्व की खोज १९४० में हुई। मैकमिलन, सीबोर्ग एवं अन्य कार्यकर्ताओं के प्रयोगों द्वारा यह तत्त्व बना। यूरेनियम-२३८ पर ड्यूट्रान के आक्रमण से नेप्चूनियम-२३८ बना जो एक इलेक्ट्रान स्वतन्त्र कर ९४ संख्या का तत्त्व बनाता था। इस तत्त्व का नाम प्लूटोनियम^२ रखा गया जो प्लूटो नामक ग्रह के आधार पर था।

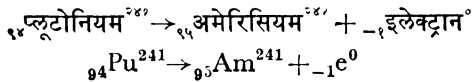
प्लूटोनियम के सबसे महत्त्वपूर्ण समस्थानिक का भार २३९ है। १९४१ में सीबोर्ग ने इस समस्थानिक का निर्माण यूरेनियम पर मन्द न्यूट्रानों की प्रतिक्रिया द्वारा किया। इसकी अर्धजीवन अवधि चौबीस सहस्र चार सौ (२४,४००) वर्ष है। यह भी यूरेनियम-२३५ की भाँति खण्डित हो सकता है। प्लूटोनियम के पन्द्रह समस्थानिक ज्ञात हैं जिनके भार २३२, २३३, २३४, २३५, २३६, २३७, २३८, २३९, २४०, २४१, २४२, २४३, २४४, २४५ और २४६ हैं। इनमें २४४ भार का समस्थानिक सबसे स्थिर है, जिसकी अर्धजीवन अवधि ७.६×10^७ वर्ष है।

परमाणु-संख्या ९५ (अमेरिसियम)

सीबोर्ग तथा अन्य सहकार्यकर्ताओं ने १९४४ में इसकी खोज की थी। यूरेनियम-२३८ पर चार करोड़ (४×10^७) इलेक्ट्रान वोल्ट ऊर्जाशील अल्फा-कण के आक्रमण से प्लूटोनियम बना—



प्लूटोनियम समस्थानिक एक बीटा-कण स्वतन्त्र कर तत्त्वसंख्या ९५ मे तत्त्वान्तरित होता है।

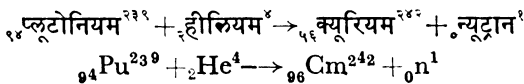


इसकी अर्धजीवन अवधि पाँच सौ वर्ष है।

इस तत्त्व के दस समस्थानिक ज्ञात हैं। इनमें २४३ का समस्थानिक सबसे दीर्घ अर्धजीवन अवधि का है (७,९५० वर्ष)।

परमाणु-संख्या ९६ (क्यूरियम)

इस तत्त्व की खोज सीबोर्ग ने १९४४ मे तत्त्व ९३ से पहले की थी। इसका सर्वप्रथम निर्माण प्लूटोनियम-२३९ पर अल्फा-कण के आक्रमण द्वारा हुआ था।

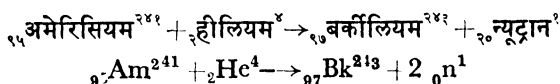


रेडियधर्मिता की खोज करनेवाली प्रसिद्ध वैज्ञानिक मैडम क्यूरी की स्मृति मे इस तत्त्व का नाम क्यूरियम रखा गया।

क्यूरियम के तेरह समस्थानिक ज्ञात हैं। क्यूरियम-२४५ की अर्ध-जीवन अवधि लगभग चौदह सहस्र (१४,०००) वर्ष है।

परमाणु-संख्या ९७ (बर्कीलियम)

१९४९ के अन्त में सीबोर्ग तथा अन्य कार्यकर्ताओं ने तत्त्व संख्या ९७ का निर्माण किया। इसका नाम बर्कीलियम रखा गया। इसे अमेरिसियम पर अल्फा-कण (3.5×10^8 इवो० ऊर्जायुक्त) के आक्रमण द्वारा निर्मित किया गया।

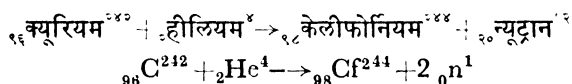


बर्कीलियम के आठ समस्थानिक (२४३, २४४, २४५, २४६, २४७, २४८, २४९, २५०) ज्ञात हैं जिनमें सबसे अधिक दीर्घ अर्धजीवन अवधि लगभग सात सहस्र वर्ष समस्थानिक २४७ की है।

परमाणु-संख्या ९८ (केलिफोर्नियम)

१९५० में केलिफोर्निया विश्वविद्यालय में सीबोर्ग एवं कार्यकर्ताओं ने तत्त्व संख्या ९८ के निर्माण की घोषणा की और इस तत्त्व का नाम केलिफोर्नियम रखा।

क्यूरियम पर तीव्र अल्फा-कण के आक्रमण द्वारा इसे बनाया गया।



केलिफोर्नियम के ११ समस्थानिक ज्ञात हैं। २४९ भार-संख्या के समस्थानिक की अर्धजीवन अवधि लगभग चार सौ (४००) वर्ष है ॥

परमाणु-संख्या ९९ (आइंस्टीनियम)'

नवम्बर, १९५२ में अमेरिका द्वारा किये गये प्रशान्त महासागर परमाणु विस्फोट के खण्ड में तत्त्व ९९ और १०० की खोज हुई थी। किरण-भावित यूरेनियम-२३८ के अवशेष में ये दोनों तत्त्व (परमाणु-संख्या ९९ भार-संख्या २५३ तथा २५५; परमाणु-संख्या १०० भार-संख्या २५५) पाये गये थे। यूरेनियम द्वारा न्यूट्रान अवशोषित होने से इनका जन्म हुआ था। उस विस्फोट में भयंकर मात्रा में न्यूट्रानों का द्रावक उत्पन्न

हुआ। जिस कारण एक यूरेनियम नाभिक १७ न्यूट्रानों का अवशोषण कर सका। फलस्वरूप ये दोनो तत्व बने। १९५४ में लगभग एक ही समय, अमेरिका के केलीफोर्निया विश्वविद्यालय तथा ओरेगन प्रयोगशालाओं में और स्वीडन की स्टाकहोम प्रयोगशाला में तत्व ९९ का निर्माण किया गया। यूरेनियम-२३८ पर नाइट्रोजन नाभिक की प्रतिक्रिया द्वारा यह तत्व बनाया गया। दूसरी विधि में प्लूटोनियम-२३९ पर क्रमशः न्यूट्रान प्रतिक्रिया द्वारा यह तत्व बना। प्रसिद्ध वैज्ञानिक आइस्टीन के नाम पर इसे आइस्टीनियम पुकारा गया। अब तक इसके दस समस्थानिक ज्ञात हैं। आइस्टीनियम-२५४ की अर्धजीवन अवधि २८० दिन है।

परमाणु-संख्या १०० (फर्मियम)^१

प्लूटोनियम पर न्यूट्रान प्रतिक्रिया द्वारा तत्व १०० का निर्माण हुआ है। दूसरी विधि में यूरेनियम पर तीव्र आक्सीजन नाभिक की प्रतिक्रिया द्वारा यह तत्व बना। भौतिकशास्त्री स्वर्गीय एन्रीको फर्मी के सम्मान में इस तत्व का नाम फर्मियम रखा गया है। इसके सात समस्थानिकों का निर्माण हो चुका है (२५०-२५६)।

परमाणु-संख्या १०१ (मैंडलीवियम)^२

१९५५ में केलीफोर्निया विश्वविद्यालय की विकिरण प्रयोगशाला में सीबोर्ग तथा सहकार्यकर्ताओं ने तत्व संख्या १०१ के निर्माण की घोषणा की, जिसकी भार-संख्या २५६ थी। तत्व संख्या ९९ (आइस्टीनियम) पर अल्फा-कण के आक्रमण द्वारा इसका निर्माण सम्भव हुआ था। सीबोर्ग ने इस तत्व का नाम उन्नीसवीं शताब्दी के प्रसिद्ध रूसी वैज्ञानिक मैंडलीव के सम्मान में मैंडलीवियम रखा।

तत्त्व-संख्या १०२ (नोबेलियम)^१

इस तत्त्व का प्रथम निर्माण अमेरिका, ब्रिटेन और स्वीडन के वैज्ञानिकों के सहकारी प्रयास द्वारा हुआ। स्वीडन के नोबेल इंस्टीट्यूट में इन वैज्ञानिकों ने प्रयोग किये जिनमें क्यूरियम-२४४ (तत्त्व-संख्या ९६) पर कार्बन आयन का आक्रमण किया गया। कार्बन-१३ आयन को नोबेल इंस्टीट्यूट के साइक्लोट्रॉन द्वारा त्वरित किया गया था। ये प्रयोग मार्च, १९५७ में प्रथम बार किये गये। तत्पश्चात् अप्रैल में इन प्रयोगों की पुष्टि की गयी। जुलाई, १९५७ में इस तत्त्व के निर्माण की घोषणा हुई। अनुसन्धानकर्ताओं के अनुसार इस तत्त्व का भार २५३ तथा अर्धजीवन अवधि लगभग १६ मिनट थी। इसका नाम उन्होंने जगत् प्रसिद्ध नोबेल पुरस्कार के स्थापक नोबेल के सम्मान में नोबेलियम प्रस्तावित किया।

कैलिफोर्निया विश्वविद्यालय के कार्यकर्ता अपने प्रयोगों द्वारा इस तत्त्व के निर्माण को दोहरा न सके। परन्तु अप्रैल, १९५८ में उन्होंने क्यूरियम के विरल समस्थानिक २४६ पर कार्बन-१२ के आयन का आक्रमण किया। कार्बन आयन को छ. करोड़ अस्सी लाख (६,८०,००,०००) इलेक्ट्रॉन वोल्ट की ऊर्जा तक त्वरित किया गया था। फलस्वरूप तत्त्व-संख्या १०२ बना जिसका भार २५४, और अर्धजीवन अवधि केवल तीन सेकेण्ड थी। इन प्रयोगों में तत्त्व के चालीस परमाणुओं के निर्माण की पुष्टि हुई। यह तत्त्व शीघ्र ही एक अल्फा-कण को स्वतन्त्र कर फर्मियम-२५० में परिवर्तित हो जाता है। इस निर्माण की पुष्टि भौतिक एवं रासायनिक क्रियाओं द्वारा हो चुकी है।

सीबोर्ग ने सुझाव रखा कि एकटीनियम (परमाणु संख्या ८९) तत्त्व से एक नयी तत्त्व श्रेणी का निर्माण होता है जिसे एकटीनाइड श्रेणी कह सकते हैं। इन तत्त्वों के गुण विरल मृदा की लैथेनाइड श्रेणी की भाँति हैं। इस

श्रेणी में भी विरल मृदाओं की भाँति १५ तत्त्व होने चाहिए जो तत्त्व-संख्या १०३ में समाप्त हों। इसके पश्चात् तत्त्व-संख्या १०४ इस श्रेणी का न होकर आवर्त-सारणी के चतुर्थ वर्ग के हेफनियम तत्त्व के समान होगा। तत्पश्चात् टैण्टलम, टंगस्टन आदि के समान गुण वाले तत्त्व बनेंगे।

अभी और भी अनेक पार-यूरेनियम तत्त्वों का निर्माण होना सम्भव है। सम्भवतः ७-८ तत्त्व और बनेंगे। परन्तु यह सब अल्पायु ही होंगे। वैज्ञानिकों का अनुमान है कि अब यूरेनियम जैसे गुरु तत्त्वों पर भारी आयनों (कार्बन, नाइट्रोजन, आक्सीजन आदि) के आक्रमण द्वारा नये तत्त्वों का निर्माण होगा। इन आयनों को त्वरित करने के लिए ऐसे त्वरकों की आवश्यकता होगी जो इस समय प्राप्त त्वरकों से कहीं शक्तिशाली हों। अमेरिका में अभी एक नया त्वरक बना है जिसके द्वारा कणों को 3×10^{10} इवों की ऊर्जा दी जा सकेगी। इससे भी अधिक शक्तिशाली त्वरकों के बनाये जाने की योजना अमेरिका तथा सोवियत संघ में प्रस्तुत है।

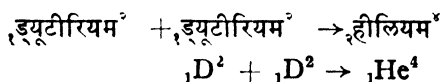
अध्याय १६

नाभिक-संगलन प्रतिक्रिया

परमाणु अनुसन्धानों में दिन प्रतिदिन नयी वृद्धियाँ हो रही हैं। नियन्त्रित संगलन क्रिया भी ऐसी ही अभिवृद्धि है। कुछ वर्षों से वैज्ञानिकों ने इस ओर ध्यान दिया है और यह सम्भव है कि कुछ वर्षों बाद इस क्रिया द्वारा मनुष्य ऊर्जा प्राप्त करने लगे। यदि इसमें सफलता मिल गयी तो मानव जाति को सदा के लिए नये ऊर्जा-स्रोत ढूँढने में छुटकारा मिल जायगा।

हम पिछले अध्यायों में देख चुके हैं कि जब यूरेनियम-जैसे गुरु तत्त्व का खण्डन होता है तो उस समय ऊर्जा का उदय होता है। इसके विपरीत जब हल्के तत्त्वों का संगलन होगा उस समय भी ऊर्जा स्वतन्त्र होगी, क्योंकि प्रकृति में आवर्त-सारणी के मध्य वाले तत्त्व (सिल्वर या रजत के लगभग) सब तत्त्वों में अधिक स्थिर हैं। उदाहरण द्वारा यह स्पष्ट हो जायगा।

हाइड्रोजन के एक समस्थानिक का भार २ है। इसे ड्यूटीरियम भी कहा जाता है। यदि ड्यूटीरियम के दो नाभिकों का संगलन हो सके तो निम्नलिखित प्रतिक्रिया होगी।



ड्यूटीरियम का भार 2.014734 है तथा हीलियम का 4.003473 है। दो ड्यूटीरियम परमाणुओं का भार 4.029468 होगा जबकि निर्मित हीलियम का भार केवल 4.003473 होगा। संगलन क्रिया द्वारा 0.24596 संमात्रा का क्षय होगा। इस समात्रा के क्षय से लगभग ढाई करोड़ $(2.5 + 10^9)$ इलेक्ट्रान वोल्ट ऊर्जा स्वतन्त्र होगी। इसी प्रकार दो आक्सीजन नाभिकों के संगलन द्वारा एक करोड़ अस्सी लाख $(1.8 + 10^9)$ इलेक्ट्रान वोल्ट ऊर्जा निकलेगी।

यूरेनियम एक गुरु-तत्त्व है और हाइड्रोजन सबसे हल्का तत्त्व है। इस कारण भार के अनुसार ड्यूटीरियम संगलन द्वारा यूरेनियम खण्डन की अपेक्षा अत्यधिक ऊर्जा स्वतन्त्र होगी। एक ग्राम यूरेनियम खण्डन द्वारा बार्डस सहस्र $(22,000)$ किलोवाट - घण्टे ऊर्जा मिलेगी और एक ग्राम ड्यूटीरियम के संगलन द्वारा एक लाख साठ सहस्र $(1,60,000)$ किलो-वाट घण्टे ऊर्जा प्राप्त होगी।

नाभिक-खण्डन प्रतिक्रिया को शृंखला रूप में करने की विधियाँ ज्ञात हैं और इस प्रतिक्रिया के उपयोग ससार में अनेक स्थानों पर हो रहे हैं। यदि एक बार खण्डन प्रतिक्रिया प्रारम्भ हो जाय तो उसे चलाये रखा जा सकता है। परन्तु संगलन-क्रिया में प्रत्येक ड्यूटीरियम-युग्म के बीच प्रतिकर्षण को पार करने के लिए ऊर्जा की आवश्यकता होगी। इस कारण संगलन क्रिया को सफल बनाने में अनेक कठिनाइयाँ आती हैं। बहुत समय तक लोगों को इसकी सफलता में सन्देह था। परन्तु अब इस विचारधारा में परिवर्तन आ गया है।

तत्त्वों के नाभिक आवेश के कारण उनके संगलन में सबसे अधिक रुकावट आती है। यदि दो कणों को इतनी अधिक गतिज ऊर्जा प्राप्त हो कि वह आवेश के प्रतिकर्षण को पार कर सकें तभी संगलन सम्भव होगा। संगलन सम्भावना को प्रायिकता के सिद्धान्त से ज्ञात किया जा सकता है। गतिज ऊर्जा बढ़ने से संगलन सम्भावना में वृद्धि होगी। इसका अनुमान निम्नलिखित सारणी द्वारा हो सकता है।

इयूट्रान परमाणुओं की संगलन संभावना सारणी

इयूट्रान की गतिज ऊर्जा इवो० मे	संगलन प्रायिकता
१००	$१०^{-६०}$
४००	$१०^{-६०}$
९००	$१०^{-२०}$
१,६००	$१०^{-१५}$
२,५००	$१०^{-१२}$
१०,०००	$१०^{-६}$
४०,०००	$१०^{-३}$

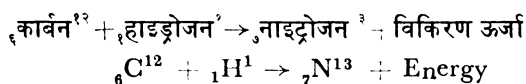
संगलन सम्भावना बढ़ाने के लिए गतिज ऊर्जा बढ़ाना आवश्यक है। ऊष्मा प्रदान करने पर गतिज ऊर्जा बढ़ सकती है। यदि हम इयूटीरियम कणों को सात सहस्र पाँच सौ (७,५००) डिग्री सेण्टीग्रेड के ताप पर लाये तो लगभग एक इलेक्ट्रान वोल्ट ऊर्जा गैस की प्राप्ति होगी जो संगलन कार्य के किसी उपयोग की न होगी। दस लाख ($१०^६$) डिग्री ताप पर स्थिति बदल जायगी और इयूटीरियम का संगलन होना प्रारम्भ हो जायगा। लगभग पचास लाख ($५ + १०^७$) डिग्री ताप पर एक किलोग्राम इयूटीरियम एक क्षण में संगलित होकर पन्द्रह करोड़ ($१.५ + १०^७$) किलोवाट घण्टा ऊर्जा उत्पन्न करेगा।

कुछ अन्य संगलन प्रतिक्रियाएँ उच्च ताप पर सम्भव हैं। हाइड्रोजन व लीथियम संगलित होकर हीलियम के दो परमाणु बनायेंगे। सामान्यतः जो प्रतिक्रियाएँ अत्यधिक उच्च ताप पर होती हैं उन्हें तापनाभिक प्रतिक्रियाएँ कहते हैं।

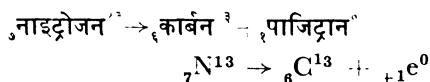
प्रकृति में ऐसी क्रियाएँ सम्भव हैं और हुआ भी करती हैं। सूर्य तथा तारिकाओं के मध्य ये क्रियाएँ ही हुआ करती हैं। इनसे उदित ऊर्जा ही उनके उच्च ताप का कारण है। ऐसा अनुमान है कि सूर्य बिम्ब के मध्य में दो करोड़ ($२ + १०^७$) सेण्टीग्रेड का ताप रहता है। इस ताप पर हाइ-

ड्रोजन से हीलियम इतनी शीघ्रता से बनेगा कि सूर्य में विस्फोट हो जायगा। इसी प्रकार हाइड्रोजन-लीथियम प्रतिक्रिया भी इस ताप पर अति तीव्रता से होगी। इन क्रियाओं द्वारा सूर्य की ऊष्मा इतने काल तक नहीं ठहर सकती।

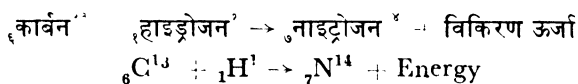
सूर्य के प्रकाश तथा ऊष्मा का क्या रहस्य है, इसका उत्तर वैज्ञानिक बेथे ने दिया है। उसके अनुसार इतने उच्च ताप पर सूर्य के अन्दर कार्बन-नाइट्रोजन चक्र चलता है। इसी चक्र द्वारा सूर्य को निरन्तर ऊष्मा प्राप्त हो रही है। इस चक्र में अनेक तापनाभिक क्रियाएँ भाग लेती हैं। इनका प्रारम्भ कार्बन-१२ पर एक प्रोटान के आक्रमण द्वारा होता है।



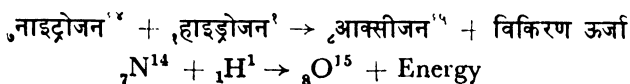
नाइट्रोजन-१३ अस्थिर समस्थानिक है और एक पाज़िट्रान स्वतन्त्र करता है।



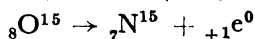
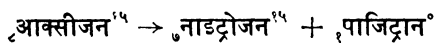
फलस्वरूप बने कार्बन-१३ नाभिक से एक अन्य प्रोटान प्रतिक्रिया कर नाइट्रोजन-१४ का निर्माण करता है।



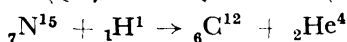
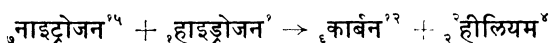
चक्र की तृतीय दशा में नाइट्रोजन पर एक अन्य प्रोटान तत्त्वान्तरण क्रिया करता है। इससे आक्सीजन-१५ का नाभिक निर्मित होता है।



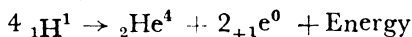
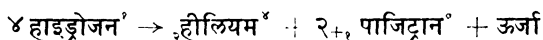
आक्सीजन-१५ अस्थिर समस्थानिक होने के कारण एक पाज़िट्रान स्वतन्त्र कर नाइट्रोजन-१५ में तत्त्वान्तरित होगा।



चक्र की अन्तिम दशा में नाइट्रोजन-१५ पर प्रोटॉन का आक्रमण होता है। फलस्वरूप कार्बन-१२ तथा हीलियम-४ बनते हैं।



अन्त में कार्बन-१२ का नाभिक बनता है जिससे चक्र फिर प्रारम्भ होता है। इस क्रिया में चार प्रोटॉन अन्तर्धान होते हैं और एक हीलियम तथा दो पाजिट्रॉन उत्पन्न होते हैं। चक्र की इन सारी क्रियाओं से यह सारांश निकला कि चार प्रोटॉन द्वारा एक हीलियम, दो पाजिट्रॉन एवं विकिरण ऊर्जा उत्पन्न होती है।

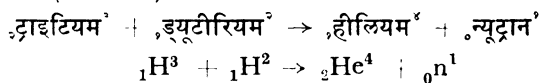


चक्र के एक बार पूर्ण होने में दो करोड़ सत्तर लाख (२,७०,००,०००) इलेक्ट्रॉन वोल्ट ऊर्जा उत्पन्न होगी। बेथे के अनुसार सूर्य में हाइड्रोजन के हीलियम में परिणत होने से ऊर्जा उत्पन्न होती है, यद्यपि यह क्रिया अप्रत्यक्ष रूप में होती है। अभी इस क्रिया से सूर्य अस्सी अरब वर्ष तक (8×10^{10}) ऊर्जा उत्पन्न करता रहेगा। ऐसी भी सम्भावना हो सकती है कि इसी प्रकार के कुछ अन्य चक्र सूर्य तथा तारागणों में क्रिया कर रहे हों।

संगलन-ऊर्जा का विस्फोटक उपयोग

सूर्य तथा तारागणों में उच्च ताप तथा दबाव रहता है। यह ताप-नाभिक प्रतिक्रियाओं के लिए उपयुक्त दशा रहती है। परमाणु बम के विस्फोट में अत्यन्त क्षणिक काल के लिए यह ताप तथा दबाव की दशा वर्तमान रहती है। उतने काल में ताप-नाभिक प्रतिक्रिया की जा सकती है। परन्तु वही प्रतिक्रिया सम्भव होगी जो अति तीव्रता से विकसित होती हो।

सबसे तीव्र ताप-नाभिक प्रतिक्रिया ड्यूटीरियम तथा ट्राइटियम (हाइड्रोजन का भार-संख्या ३ वाला समस्थानिक) के बीच विकसित होती है। (लगभग 10^{-16} सेकेण्ड)।



इसी प्रतिक्रिया का हाइड्रोजन बम में उपयोग किया गया है। इस विस्फोटक में एक सामान्य परमाणु बम रहता है, साथ में एक बर्तन में हाइड्रोजन एवं ट्राइटियम रखे जाते हैं। (तत्त्व या यौगिक के रूप में) परमाणु विस्फोट के द्वारा तापनाभिक प्रतिक्रिया के लिए उचित अवस्थाये प्रस्तुत हो जाती हैं, जो साथ में हाइड्रोजन बम का विस्फोट भी करती है।

हाइड्रोजन बम को परमाणु बम से कही अधिक विध्वंसकारी बनाया जा सकता है। हाइड्रोजन बम, अमेरिका, सोवियत संघ तथा ग्रेट ब्रिटेन द्वारा बनाये तथा परीक्षित किये जा चुके हैं।

नियन्त्रित तापनाभिक प्रतिक्रिया

हाइड्रोजन बम के विस्फोट ने अनियन्त्रित ऊष्मानाभिक प्रतिक्रिया की व्यावहारिकता को सिद्ध कर दिया है। परन्तु क्या मानव इस शक्ति को शान्तिपूर्ण उपयोग में ला सकेगा? यह प्रश्न हमारे सामने है। अभी इस समस्या को ससार के वैज्ञानिक भली-भाँति नहीं सुलझा पाये हैं। १९५५ में जेनीवा में परमाणु के शान्तिपूर्ण उपयोगों का प्रथम सम्मेलन हुआ था। उसका सभापतित्व भारत के प्रसिद्ध वैज्ञानिक होमी जहांगीर भाभा ने किया था। उन्होंने अपने अध्यक्षपदीय भाषण में सारे वैज्ञानिकों का ध्यान इस ओर आकर्षित किया था और कहा था कि विश्व की ईंधन की समस्या यूरेनियम, थोरियम आदि गुरुत्वों से नहीं हल होगी। मानव जाति की ऊर्जा की भूख उस समय शान्त होगी जब वह तापनाभिक संगलन प्रतिक्रिया का नियन्त्रित रूप से उपयोग कर सकेगी। इस भाषण ने उस सभा में उपस्थित जनो तथा ससार के प्रमुख स्थानों में हलचल पैदा कर दी। यदि

भाभा का कथन सत्य है तो अभी से वैज्ञानिकों को इस ओर आकर्षित होना चाहिए, ऐसा विचार लोगो के मस्तिष्क में घर कर गया।

होमी जहाँगीर भाभा के उपर्युक्त शब्दों का ससार पर बड़ा प्रभाव पड़ा। हमें भी आशा है कि उनके शब्द सत्य सिद्ध होंगे। अब कई देशों में इस विषय के अनुसन्धान सलग्नता से हो रहे हैं।

तापनाभिक प्रतिक्रिया का नियन्त्रण बड़ा कठिन कार्य है। इस दिशा में ब्रिटेन में अग्रगामी कार्य हुआ है। उन्होंने जीटा नामक एक यन्त्र बनाया। यह नाम अंग्रेजी नाम जीरो इनर्जी थर्मोन्यूक्लियर असेम्बली के प्रथमाक्षरो से बना है। जीटा उपकरण में ड्यूटीरियम के परमाणुओं का सगलन करने का प्रयत्न किया गया है। इस सगलन द्वारा हीलियम का निर्माण होना चाहिए। ड्यूटीरियम सगलन के सर्वप्रथम प्रयोग १९३४ में रदरफोर्ड और ऑलीफेट ने केम्ब्रिज विश्वविद्यालय में किये थे। उन्होंने त्वरित ड्यूटीरियम कणों के दण्ड द्वारा स्थिर ड्यूटीरियम कणों पर आक्रमण किया था। उससे दोनों नाभिकों का सगलन हो हीलियम बनती थी। इन प्रयोगों का सम्यक् रीति से निरीक्षण करने से ज्ञात हुआ कि सगलन क्रिया द्वारा हीलियम-४ का निर्माण नहीं होता। यदि क्षणिक काल के लिए यह नाभिक बने तो इसमें इतनी अधिक ऊर्जा रहती है कि इसमें एक न्यूट्रॉन वाष्पित हो जाता है। रदरफोर्ड ने देखा कि सगलन क्रिया द्वारा अधिकतर हीलियम-३ बनता है और एक न्यूट्रॉन तीव्र गति से बाहर चला जाता है। कभी-कभी ऐसा भी सम्भव हो सकता है कि सगलन क्रिया द्वारा ट्राइटियम-३ बने और एक प्रोटॉन बाहर निकल जाय।

जीटा तापनाभिक सघटन में यही क्रिया उच्च ताप द्वारा की जाती है। जैसा हम देख चुके हैं कि सगलन क्रिया के लिए उच्च ताप नितान्त आवश्यक है। यह दस करोड़ (१०^८) डिग्री सेण्टीग्रेड के लगभग हो सकता है। इतने

उच्च ताप की गैस को किस बर्तन में रखेंगे ? पाँच सहस्र डिग्री के आसपास सभी वस्तुएँ वाष्प में परिवर्तित होने लगती हैं। दस सहस्र डिग्री पर अणु खण्डित होकर परमाणु बन जाते हैं और एक लाख डिग्री (10^4) अंश पर परमाणु अपने इलेक्ट्रानों का क्षय प्रारम्भ कर देते हैं।

जीटा निर्माण करने में पहली समस्या ऊष्मा गैस का पात्र बनाने की थी। सामान्य द्रव्य से बनी कोई वस्तु इस कार्य के लिए सक्षम न हो सकती थी। इस कारण एक विलक्षण बर्तन का निर्माण हुआ जो केवल चुम्बक क्षेत्र का बना था। इसके पश्चात् उच्च ताप की समस्या सामने आयी। यह ताप हम लकड़ी, कोयला आदि जैसे किसी सामान्य ईंधन से नहीं उत्पन्न कर सकते थे। अतः इसके लिए विद्युत् विसर्जन ऊर्जा का सफल प्रयोग हुआ।

प्रकृति ने भी इन प्रयोगों में सहायता की। कुछ वर्षों से ज्ञात है कि ड्यूटीरियम द्वारा विद्युत्-विसर्जन करने पर चुम्बक बल उत्पन्न होता है, जो गैस के अणुओं को एक साथ इकट्ठा करके रखता है। इस प्रक्रम को 'पिच प्रभाव' कहते हैं। इस प्रभाव के कारण गैस कण बाहर की ओर नहीं जाने पाते। यदि कोई कण नलिका-बर्तन की दीवार की ओर जाने का प्रयत्न करते हैं तो उन्हें धक्का देकर फिर मध्य की ओर भेज दिया जाता है। ज्यो-ज्यो विद्युत्-विसर्जन द्वारा विद्युत्-धारा की मात्रा बढ़ती है त्यों-त्यों चुम्बक बल भी बढ़ता है और कणों को अधिक वेगपूर्वक नियन्त्रण में रखता है। इस नियन्त्रण के प्रभाव से कण दब जाते हैं और नलिका के मध्य छोटे दायरे में बन्द रहते हैं। उन पर नियन्त्रण उसी प्रकार रहता है जैसे रबर के धागे को खींचने पर वह दब कर सीधा हो जाता है। इसको हम चुम्बक बोतल भी कह सकते हैं।

परन्तु इस विद्युत्-विसर्जन द्वारा उत्पन्न क्षेत्र में कुछ कमियाँ रह जाती हैं। विसर्जन सर्वदा सीधा नहीं रहता। वह अपने मार्ग से विचलित हो

सकता है। यदि ऐसा होगा तो गैस नलिका के मध्य में न रहकर दीवार पर आ सकती है और इस प्रकार ऊष्मा का क्षय हो सकता है। विद्युत्-विसर्जन को स्थिर बनाने के लिए अनेक प्रयोग किये गये हैं। इस कार्य के लिए चुम्बक क्षेत्र का उपयोग किया गया है। ऊपर से दिया हुआ चुम्बक क्षेत्र विद्युत्-विसर्जन को स्थिर करने की क्षमता रखता है। 'जीटा' ससार में प्रथम यन्त्र था जिसमें इस विधि के उपयोग से दिखाया गया कि विद्युत्-विसर्जन को एक दिशा में स्थिर करना सम्भव है।

जीटा में एक विसर्ग नली का प्रयोग किया गया। इस नलिका में ड्यूटीरियम भरी गयी। इसमें क्षणिक विसर्जन उत्पन्न करने का प्रबन्ध भी किया गया जिससे उच्च डिग्री का ताप (क्षणिक समय के लिए) उत्पन्न हो सके। साथ में एक सहायक चुम्बक क्षेत्र लगाया गया जो विसर्जन को स्थिर दिशा में रखे और ड्यूटीरियम गैस को नलिका के मध्य में दबाकर नियन्त्रित रखने में सहायक हो। सामान्य द्रव्य के विद्युद्युग्ग यहाँ बेकार थे क्योंकि वह इतना उच्च ताप सहन न कर सकते। विसर्जन उत्पन्न करने के लिए कोई असाधारण उपाय ही कार्य कर सकता था। इसमें विसर्ग नलिका को अनन्त रखा गया। उसका आकार डमरू (∞) की भाँति था। इस नलिका को विद्युत् ट्रांसफार्मर के मध्य में एक अन्य ताम्र नलिका के साथ रखा गया। ट्रांसफार्मर द्वारा इन दोनों नलिकाओं के मध्य में विद्युत्-सम्बन्ध करने पर नलिका में विसर्जन उत्पन्न होता है। उच्च ताप उत्पन्न करने के लिए वेगवान विसर्जन होना चाहिए। विसर्जन के लिए बलवती विद्युत्-धारा की आवश्यकता है। विद्युत्-ऊर्जा को एक सघनक में जमा करते हैं। तत्पश्चात् क्षणिक काल में सारी ऊर्जा को विसर्जन क्रिया द्वारा बहिर्गत करते हैं। इस प्रकार थोड़े समय के लिए इतना वेगवान विसर्जन उत्पन्न होता है कि अत्यधिक उच्च ताप उत्पन्न हो जाता है। नलिका अचुम्बकीय धातु की बनायी गयी है। इसमें अल्यूमिनियम का प्रयोग हुआ है।

जीटा द्वारा बहुत-से आवश्यक अनुसन्धान हुए हैं जिनसे भविष्य में नियन्त्रित संगलन यन्त्र बनाने में बड़ी सहायता मिलेगी। इस उपकरण में

पचास लाख (5×10^4) डिग्री का ताप अवश्य पहुँचता है। इस ताप पर ड्यूटीरियम संगलन क्रिया की उत्पत्ति स्पष्ट रूप से होती है क्योंकि विद्युत-विसर्जन द्वारा अत्यधिक मात्रा में न्यूट्रान देखे गये हैं। इनकी उपस्थिति संगलन क्रिया की पुष्टि करती है।

पाठक यह सन्देह कर सकते हैं कि सम्भव है तापनाभिक संगलन क्रिया के लिए आवश्यक उच्च ताप लक्ष्य तक न पहुँचा हो और उत्पन्न न्यूट्रान केवल तत्वान्तरण द्वारा उत्पन्न हुए हो जैसा कि रदरफोर्ड एव ओलीफट ने १९३४ में अपने प्रयोगों द्वारा उत्पन्न किये थे। उनके प्रयोगों में भी ड्यूटीरियम के संगलन से न्यूट्रान उत्पन्न हुए थे, परन्तु वेगवान न्यूट्रानों के आक्रमण से उत्पन्न हुए थे। कदाचित् यहाँ पर भी न्यूट्रान गतिज ऊर्जा द्वारा प्रतिक्रिया करने लगे हों। यदि यह सत्य हुआ तो तापनाभिक क्रिया असफल मानी जायगी।

इसके विपरीत जीटा में यह देखा गया कि यदि विसर्जन में विद्युत धारा की मात्रा बढ़ायी जाय तो न्यूट्रानों की मात्रा शीघ्र बढ़ती है। इससे तापनाभिक क्रिया की पुष्टि ही होती है। इस क्रिया की एक और पुष्टि हुई है। बाह्य उपकरणों द्वारा नलिका के अन्दर का ताप नापा गया है। उससे ज्ञात हुआ है कि नलिका के अन्दर गैस का ताप कम से कम पचास लाख (5×10^4) डिग्री सेण्टीग्रेड है।

तापनाभिक क्रिया का नियन्त्रण सम्भव है। लोगों को यह विश्वास होने लगा है कि एक दिन यह ऊर्जा मानव जाति के शान्तिपूर्ण उपयोग में आ सकेगी।

सोवियत सघ में संगलन क्रिया पर कई वर्षों से कार्य हो रहा है। इस कार्य की सर्वप्रथम झलक रूसी वैज्ञानिक कुरशेटोव ने १९५६ में ब्रिटेन की परमाणु अनुसन्धानशाला हारवेल में दिये अपने एक व्याख्यान में दी

थी। सोवियत संघ की मास्को, लेनिनग्राद, खारकोव, सुक्कुमी और नोरोसीवीरिस्क की अनुसन्धानशालाओं में इस ओर कार्य हो रहा है। जीटा के रूप का एक उपकरण 'अल्फा' सोवियत संघ में बना है जिसके द्वारा पिच प्रभाव पर अनुसन्धान हो रहा है। ओग्रा^१ नामक उपकरण मास्को में कार्य कर रहा है।

संयुक्त राष्ट्र अमेरिका में कई स्थानों पर सगलन क्रिया विषयक कार्य हो रहा है। प्रिसटन विश्वविद्यालय में स्टैलेरेटर^२ नामक उपकरण बनाया गया है। इसमें ८ के रूप की नलिका ली गयी है जिसमें गैस का विद्युत्-विसर्जन करते हैं। लास एलेमास की अनुसन्धानशाला में पिच प्रयोगों पर उपयोगी कार्य हुआ है और एक नये उपकरण स्कैला का निर्माण हुआ है। इसमें अनुमानतः एक करोड़ (१०^७) डिग्री सेण्टीग्रेड का ताप उत्पादित हो सका है। लिवरमोर की अनुसन्धानशाला में पायरोट्रॉन^३ तथा ओकरिज राष्ट्रीय अनुसन्धानशाला में डीसी एक्स^४ नामक उपकरण तैयार किये गये हैं।

अमेरिका के कुछ उपकरणों में खुले सिरे वाली नलिका का प्रयोग हो रहा है। इनमें दोनों ओर दर्पण लगे हैं जिनके द्वारा प्लाज्मा^५ कण वापस हो जाते हैं। घनावेश युक्त आयन और इलेक्ट्रॉन के माध्यम को प्लाज्मा कहते हैं। यह गैस विद्युत्-विसर्जन द्वारा उत्पन्न होती है और विद्युत् की सुचालक होती है। एस्ट्रॉन उपकरण में तीव्र इलेक्ट्रॉन द्वारा उत्पन्न चुम्बक क्षेत्र से प्लाज्मा को नियन्त्रित करते हैं। यह उपकरण केलीफोर्निया विश्व-विद्यालय की विकिरण प्रयोगशाला में सरल पिच विधि पर कार्य कर रहा है।

1. Ogra	2. Stellarator
3. Pyrotron	4. DCX
5. Plasma	

इसके अतिरिक्त कुछ अन्य देशों में संगलन क्रिया पर महत्वपूर्ण अनु-सन्धान हो रहे हैं। स्वीडन के उपसाला नगर की काई सिग्बाहान' प्रयोगशाला में जीटा की भाँति टॉरायडल पिच' पर कार्य हो रहा है। जापान में अक्षीय चुम्बक विधि द्वारा कार्य करने की योजना बनी है। यह सामान्य पिच विधि से भिन्न है। जर्मनी के म्यूनिख, स्तुतगार्ट और आचन में सरल पिच' पर प्रयोग किये गये हैं। गाटिगन विश्वविद्यालय में जीटा की भाँति टोरा-यडल पिच विधि पर भी कार्य हुआ है। जर्मनी के वैज्ञानिकों ने विस्तृत सैद्धान्तिक कार्य किया है जिसके द्वारा प्लाज्मा-भौतिकी की अनेक समस्याओं का समाधान हुआ है। स्विट्ज़रलैण्ड में लीथियम आवरण में ट्राइटियम की उत्पत्ति विषय पर कार्य हुआ है। फ्रांस और इटली में भी इस ओर कार्य चल रहा है।

इन कार्यों से हमें आशा है कि शीघ्र ही मनुष्य सगलन ऊर्जा को नियन्त्रित कर सकेगा। एक गैलन समुद्र जल में उपस्थित ड्यूटीरियम द्वारा दस सहस्र (१०^४) किलोवाट घण्टा विद्युत् निकल सकती है। यदि समुद्र ऊर्जा का स्रोत बन गया तो मनुष्य को समाप्त होने वाले ईंधनों की फिर चिन्ता न करनी पड़ेगी। सगलन प्रतिकारी में परमाणु प्रतिकारी के विपरीत वे खण्डन पदार्थ जो हानिकारक विकिरण उत्पन्न कर सकें, नहीं बचेगे।

1. Kai Saigbahan
3. Linear pinch

2. Toroidal pinch

अध्याय १७

परमाणु व ताप-नाभिकीय बम

परमाणु बम का सर्वप्रथम विस्फोट १६ जुलाई, १९४५ में अमेरिका के न्यूमेक्सिको राज्य में एलेमोगोर्डो नामक स्थान में हुआ था। द्वितीय विस्फोट जापान के हिरोशिमा नगर तथा तीसरा जापान के नागासाकी नगर में किया गया था। हिरोशिमा वाला बम ६ अगस्त, १९४५ के प्रातःकाल उस नगर पर गिरा। आज की तुलना में यह अत्यंत छोटा बम था। परन्तु इस बम ने उस नगर की क्या दशा की इसको देखा जाय।

हिरोशिमा नगर में पिछत्तर सहस्र (७५,०००) घर थे। इनमें सात सहस्र (७,०००) तो पूर्णतया धराशायी हुए और पचपन सहस्र (५५,०००) अग्नि द्वारा भस्म हो गये। बचे मकानों में से नब्बे प्रतिशत को अधिक क्षति पहुँची। इस बम के विस्फोट द्वारा अठहत्तर सहस्र (७८,०००) मनुष्य मरे, चौदह सहस्र (१४,०००) का कुछ पता न चला। सैंतीस सहस्र (३७,०००) घायल हुए और दो लाख छत्तीस सहस्र (२,३६,०००) मनुष्यों पर अन्य विकिरण आदि के प्रभाव पड़े। इस बम द्वारा इतनी ऊर्जा का उदय हुआ जो बीस सहस्र (२०,०००) टन सामान्य विस्फोटक टी०एन० टी० (TNT) के द्वारा निकलती। द्वितीय महायुद्ध में लगभग पचास लाख टी. एन. टी. के बराबर विस्फोट हुए थे। इस प्रकार हिरोशिमा अणु बम द्वारा इस ऊर्जा का $\frac{1}{1000}$ वा भाग उदय हुआ। परन्तु आगे होने वाले ताप

नाभिक विस्फोटों में छोड़े गये एक बम से एक करोड़ पचास लाख (1.5×10^7) टन टी० एन० टी० के समान विस्फोट हुआ। केवल इस एक बम द्वारा द्वितीय महायुद्ध में प्रयोजित विस्फोटों से तिगुना विस्फोट हुआ। इस प्रकार युद्धार्थ उपयोगो में परमाणु ऊर्जा की पर्याप्त उन्नति हो चुकी है।

ऐसा अनुमान है कि अभी तक विभिन्न देशों द्वारा किये गये नाभिक विस्फोटों का योग २०० है जिसमें तीस से ऊपर ताप-नाभिकीय विस्फोट थे। परमाणु की दौड़ में रूस अमेरिका से पीछे था। वहाँ प्रथम परमाणु विस्फोट अगस्त, १४४९ में हुआ था। उमी समय से अमेरिका ने ताप नाभिकीय बम पर कार्य प्रारम्भ किया और प्रथम अमेरिकन ताप-नाभिक विस्फोट नवम्बर, १९५२ में किया गया। रूस में सर्वप्रथम ताप नाभिकीय विस्फोट अगस्त, १९५३ में किया गया। तत्पश्चात् इस होड़ में अनेक बमों की परीक्षा की गयी।

ब्रिटेन ने प्रथम परमाणु विस्फोट अक्टूबर, १९५२ में किया और मई, १९५७ में तापनाभिकीय बम की प्रथम परीक्षा की।

अब फ्रांस भी परमाणु क्लब का सदस्य हो गया है। १९६० के प्रारम्भ में फ्रांस द्वारा सहारा रेगिस्तान में प्रथम परमाणु विस्फोट किया गया।

इस समय तक विस्फोटों के लिए दो प्रकार की परमाणु ऊर्जा का उपयोग किया गया है। पहले प्रकार के बमों के निर्माण में परमाणु खण्डन की ऊर्जा का उपयोग होता है। इन्हें सामान्यतः परमाणु बम कहते हैं। दूसरी श्रेणी के बमों में खण्डन एवं सगलन दोनों क्रियाओं का उपयोग होता है। ऐसे बमों को सामान्यतः हाइड्रोजन बम या तापनाभिक विस्फोट सघटन भी कहते हैं।

प्रथम श्रेणी के बम में स्वचालित खण्डन क्रिया का उपयोग होता है। इसमें यूरेनियम-२३५ या प्लूटोनियम-२३९ का उपयोग होता है यद्यपि यूरेनियम-२३३ भी काम में लाया जा सकता है। ये तीनों समस्थानिक खण्डन क्रिया में समर्थ हैं और उचित अवस्था में छिन्न न्यूट्रॉन द्वारा खण्डन

क्रिया प्रारम्भ करने की क्षमता रखते हैं। वे एक क्षण में ही सारा ईंधन खण्डित कर ऊर्जा स्वतंत्र कर सकते हैं। इस क्रिया का कुछ अनुमान पाठकों को पहले अध्यायो द्वारा हो गया होगा।

पिछले अध्याय में देखा जा चुका है कि सगलन क्रिया से ऊर्जा उत्पन्न हो सकती है। हाइड्रोजन के परमाणुओं-जैसे हल्के तत्त्व उच्च ताप पर सगलित होकर ऊर्जा उत्पन्न करने की क्षमता रखते हैं। इस क्रिया में ड्यूटीरियम, ट्राइटियम आदि उपयोगी होते हैं।

लोगों का अनुमान था कि १९५२ तथा उसके पश्चात् अमेरिका द्वारा प्रशांत महासागर में किये गये नाभिक विस्फोट हाइड्रोजन बम थे जिनमें सगलन क्रिया द्वारा ऊर्जा स्वतंत्र हुई। ऐसे ही रूस द्वारा १९५३ के पश्चात् प्रयुक्त बमों में भी ऊर्जा स्वतंत्र होती थी। ऐसे बमों को सामान्यतः हाइड्रोजन बम अथवा तापनाभिक बम कहा जाता है। बम परीक्षा करने वाले राष्ट्रों ने इस पर कोई प्रकाश नहीं डाला। परन्तु अन्य स्रोतों से तथा विस्फोटन धूल की परीक्षाओं से अब हमें ज्ञात है कि इनकी ऊर्जा का मुख्य स्रोत सगलन क्रिया न होकर खण्डन क्रिया ही है। प्रथम परमाणु बमों और इन बमों में यह अन्तर है कि इनकी अधिकतर ऊर्जा यूरेनियम-२३८ के खण्डन से आती है। इसी कारण इनसे उत्पन्न रेडियधर्मी धूल यद्यपि परमाणु बमों की भांति ही होती है, पर उसकी मात्रा उनसे कहीं अधिक होती है। मार्च, १९५४ के बाइकिनी द्वीप पर किये गये अमेरिकन बमों के विस्फोट से ९० मील दूर पर जापानी नाविक रेडियधर्मी धूल के शिकार हुए थे। यदि यह बम सगलन बम होता तो उससे उत्पन्न रेडियधर्मी धूल अत्यन्त न्यून होती। जापानी नाविकों पर गिरी रेडियधर्मी धूल की परीक्षा करने पर उसमें यूरेनियम-२३७ के परमाणु मिले। यह समस्थानिक प्रकृति में नहीं पाये जाते, परन्तु यूरेनियम-२३८ पर एक करोड़ (१०^७) इवों ऊर्जाशील न्यूट्रॉन के आक्रमण से बनते हैं।

प्राकृतिक यूरेनियम में २३५ समस्थानिक कम मात्रा में रहता है और बड़ी कठिन क्रिया द्वारा २३८ समस्थानिक से अलग किया जाता है।

तत्पश्चात् बचे यूरेनियम-२३८ का कुछ उपयोग नहीं होता । इस कारण यह अत्यंत प्रचुर मात्रा में तथा सस्ते मूल्य पर उपलब्ध है । विस्फोट में इसका उपयोग बहुत सस्ता पड़ना चाहिए ।

यूरेनियम-२३८ के गुणों और २३५ समस्थानिक के गुणों में बहुत अन्तर है । यूरेनियम-२३५ खण्डन सामान्य न्यूट्रानों से होता है । इसके विपरीत २३८ समस्थानिक के खण्डन के लिए अति तीव्र अथवा ऊर्जाशील न्यूट्रान चाहिए । इतनी उच्च ऊर्जा वाले न्यूट्रान परमाणु बम से नहीं मिल सकते । यदि किसी प्रकार इनका खण्डन प्रारम्भ भी किया जाय तो उसे आगे बढ़ाना असम्भव होगा । यूरेनियम-२३८ की खण्डन-क्रिया को स्थिर करने के लिए पचास लाख (5×10^6) इवो० ऊर्जाशील न्यूट्रानों की निरन्तर पूर्ति करनी होगी । ऐसे न्यूट्रान केवल सगलन क्रिया द्वारा ही प्राप्त हो सकते हैं । सगलन क्रिया स्वयं प्रारम्भ नहीं होती । उसके लिए उच्च ताप की आवश्यकता होती है ।

इसलिए यूरेनियम-२३८ की खण्डन-क्रिया को सफल बनाने के लिए हमें तीन दशा वाले प्रक्रम की आवश्यकता है । प्रथम दशा में सामान्य खण्डन-क्रिया होगी । (यूरेनियम-२३५ अथवा प्लूटोनियम-२३९ द्वारा) । इस क्रिया से उच्च ताप उत्पन्न होगा जो सगलन-क्रिया प्रारम्भ करेगा । इस कारण दूसरी दशा में ड्यूटीरियम-ट्राइटियम या ड्यूटीरियम-ड्यूटीरियम सगलन क्रिया होगी । इस क्रिया से अत्यन्त तीव्र न्यूट्रान स्वतन्त्र होंगे । ये तीव्र न्यूट्रान यूरेनियम-२३८ का खण्डन कर सकेंगे जो तीसरी दशा होगी । इसे हम निम्न प्रकार लिख सकते हैं ।

प्रथम दशा—	स्वचालित खण्डन
↓ —	(यूरेनियम अथवा प्लूटोनियम)
↓ —	२३५ २३९
द्वितीय दशा—	ड्यूटीरियम-ड्यूटीरियम अथवा ड्यूटीरियम-
↓ —	ट्राइटियम संगलन ।
तृतीय दशा—	यूरेनियम-२३८ खण्डन ।

ऐसा अनुमान है कि इस प्रकार के बम में लगभग अस्सी प्रतिशत से अधिक ऊर्जा तीसरी दशा (यूरेनियम-२३८ खण्डन) में निकलती है। अनजाने में लोग इसे ही हाइड्रोजन बम कहते हैं।

यदि ऐसा बम बनाया जाय जिसमें लगभग सारी ऊर्जा सगलन क्रिया से प्राप्त हो तो उसके लिए समुचित मात्रा में ड्यूटीरियम-ट्राइटियम का उपयोग करना पड़ेगा। यह यूरेनियम-२३८ बम से महँगा पड़ेगा। परन्तु इसमें उसकी अपेक्षा न्यूनतम रेडियधर्मी धूल उत्पन्न होगी। ऐसा अनुमान है कि १९५६ से अमेरिका ने ऐसे बमों की भी परीक्षा की है।

परमाणु-विस्फोट के रूप

परमाणु बम का विस्फोट चार प्रकार से हो सकता है, इस कारण इसके चार रूप सम्भव हैं।

- १—पृथ्वी से काफी ऊपर विस्फोट ,
- २—पृथ्वी की सतह पर विस्फोट ,
- ३—जल के अन्दर विस्फोट ,
- ४—पृथ्वी के अन्दर विस्फोट ,

पृथ्वी के ऊपर के वायुमण्डल में यदि बम का विस्फोट किया जाय तो सर्वप्रथम एक विशाल अग्नि-गोला दिखाई देगा। इसके अन्दर का ताप सभवत एक करोड़ अश सेन्टीग्रेड से अधिक और दाब कई लाख वायुमण्डल के बराबर होगा। बम के चारों ओर की वायु दहकने लगेगी और इसका प्रकाश लगभग १०० किलोमीटर तक देखा जा सकेगा। अग्निगोले का आकार तीव्रता से बढ़ेगा और वह ऊपर की ओर उठेगा। लगभग १५ किलोमीटर उठने के पश्चात् इसका आकार कुरुरमुत्ता (मशरूम) जैसा हो जायेगा जिसपर चपटे बादल जिनका व्यास कई किलोमीटर हो सकता है, छा जायेंगे। यह कुछ समय तक रहेगा तत्पश्चात् हवा के झोके इसे उड़ा ले जायेंगे।

अग्नि-गोले की चमक लगभग तीन सेकेंड में समाप्त हो जायेगी, परन्तु इस के साथ इतनी ऊष्मा रहेगी कि लगभग दो या तीन किलोमीटर व्यास

तक आधे से अधिक मनुष्यों की तत्काल मृत्यु हो जायगी। विस्फोट के ठीक नीचे की पृथ्वी का ताप तीन सहस्र (३,०००) डिग्री तक पहुँच जायगा। इसकी चमक द्वारा पास खड़े लोगों की आँखों की पुतली जल जायगी। यदि कोई मनुष्य विस्फोट से लगभग १५ या २० किलोमीटर खड़ा होकर इस ओर देखेगा तो उसकी चमक से एक मिनट के लिए वह अन्धा हो जायगा।

अग्निगोले की उत्पत्ति के साथ ही विस्फोट के मध्य से आघात तरंग उत्पन्न होगी। इस तरंग की गति, ध्वनि की गति से अधिक होगी और यह शीघ्रता से अग्निगोले को पार कर चारों ओर हलचल पैदा करेगी। यदि मनुष्य का कान विस्फोट की ओर होगा तो उसके पर्दे के फटने की संभावना रहेगी। इसके वेग से बहुत दूर तक सारी इमारतें गिर जायेगी। मनुष्य को इनके गिरने से अधिक हानि होने की संभावना है।

परमाणु-विस्फोट से अनेक प्रकार के विकिरण निकलते हैं। न्यूट्रॉन और गामा-विकिरण सबसे अधिक मात्रा में निकलते हैं। ऊष्मा के कारण प्रकाश और पार-बैंगनी विकिरण भी निकलते हैं। विस्फोट होने के पश्चात् उस स्थान के आसपास बीटा तथा गामा-विकिरण निकलते रहेंगे। यह विकिरण खण्डन-क्रिया द्वारा उत्पन्न खण्ड से निकलते हैं। कुछ बचे यूरेनियम से अल्फा-कण भी निकलेगे।

यदि बम का विस्फोटन भूमि या उससे १०० मीटर ऊँचाई तक किया जाय तो उसे भूमि-विस्फोट कहेंगे। इसमें अग्नि-गोले का समुचित भाग भूमि से स्पर्श करेगा जिसके कारण वहाँ बड़ा गड्ढा खुद जायगा और मिट्टी घूल आदि अग्नि-गोले के साथ मिल जायेंगी। इस विस्फोट में घूल आदि के कारण ऊष्मा और चमक के प्रभाव कम दूरी तक जायेंगे। घूल या पत्थरो के भारी कण विस्फोट-स्थान पर कुछ समय बाद जमा हो जायेंगे जिसे स्थानीय अवपतन या 'लोकल फालआउट' कहते हैं। अन्यथा इस विस्फोट का बाह्य रूप प्रथम श्रेणी के समान ही होगा।

समुद्र में जलके भीतर अनेक परीक्षा-विस्फोट किये गये हैं। इनमें सर्वप्रथम जल में एक विशाल चमकदार बुलबुला उठता है। यह जल के

शीघ्र वाष्पीकरण द्वारा बनता है और जल की सतह को चीरता हुआ ऊपर उठ जाता है। इस क्रिया के साथ जल की विशाल मात्रा ऊपर उठती है। यह जल एक कुरुरमुत्ते के रूप में बाहर आता है जिसके नीचे जल का खोखला बेलन लगा रहता है। शीघ्र ही यह दो किलोमीटर से अधिक ऊंचाई तक उठ जाता है। कुरुरमुत्ते के ऊपरी भाग का व्यास २ किलोमीटर से अधिक हो सकता है और बेलन का व्यास लगभग ६०० मीटर रहेगा। मशरूम के नीचे से जल के सूक्ष्म कण ऊपर उठकर पाँच वर्गमील के क्षेत्रफल तक वर्षा करते हैं। जल में ३० मीटर ऊंची तरंगें उत्पन्न हो सकती हैं जिनके कारण जहाजों को भय रहता है। लगभग एक किलोमीटर की दूरी तक के जहाज उलट जायेंगे और दूर के जहाजों को हानि पहुँचेगी।

भूमि के अन्दर विस्फोट होने से लगभग ८०० मीटर व्यास का गड्ढा बन जायगा जिसकी गहराई १०० मीटर से अधिक होगी। अन्दर की मिट्टी में काफी हलचल होगी यद्यपि इसका प्रभाव बाहर बहुत कम होगा।

कथित तापनाभिक विस्फोटों द्वारा भी इसी प्रकार की क्रियाएँ होंगी। अन्तर इतना है कि उनका वेग परमाणु बम से कहीं अधिक होगा।

विभिन्न परमाणु अस्त्रों के साथ एक और नयी समस्या जुड़ी है जो अन्य विस्फोटों के साथ नहीं रहती। इसे फालआउट' कहते हैं। परमाणु-विस्फोट बड़ी मात्रा में रेडियधर्मी तत्त्व उत्पन्न करता है। ये तत्त्व अग्नि-गोले के साथ ऊपर उठकर वायुमण्डल की ऊपरी तह तक पहुँच सकते हैं। वहाँ वायु के वेग के साथ वे बड़ी दूर तक यात्रा कर कहीं दूसरे स्थान पर नीचे जमा हो सकते हैं। विस्फोट से उत्पन्न न्यूट्रान और गामा विकिरण द्वारा अन्य स्थिर पदार्थों के कणों का रेडियधर्मी हो जाना संभव है। इन पदार्थों के कण भी वायुमण्डल में मिलकर सुदूर पहुँचेंगे। इस प्रकार विस्फोट में खण्डन द्वारा उत्पन्न रेडियधर्मिता समीप के स्थानों पर

तो रहेगी ही, साथ ही साथ वह संसार के दूसरे कोनों पर भी पहुँच सकती है।

फालआउट दो श्रेणी के माने जाते हैं, स्थानीय फालआउट और विश्व फालआउट :

स्थानीय फालआउट उन कणों द्वारा होता है जो विस्फोट के साथ ऊपर उठते हैं, परन्तु वायु-मण्डल के निचले भाग तक सीमित रहते हैं। ये कण विस्फोट होने के पश्चात् धीरे-धीरे (कुछ घंटों से कुछ हफ्तों तक के काल में) नीचे आ जाते हैं। इस श्रेणी के फालआउट की अधिकांश मात्रा विस्फोट स्थान के पास ही सीमित रहती है यद्यपि कभी-कभी ये कण कई सौ मील तक भी यात्रा कर सकते हैं।

विश्व फालआउट उन कणों द्वारा होता है जो विस्फोट के वेग के कारण वायुमण्डल के ऊपरी भाग (समतापमण्डल)^१ में पहुँच जाते हैं। वहाँ पहुँचने के पश्चात् ये कण बहुत काल तक (५-१० वर्ष तक) नीचे नहीं आते। इस काल में वे अनुप्रस्थ गति से विश्व के हर कोने पर छा सकते हैं। तत्पश्चात् धीरे-धीरे वे वायुमण्डल के निचले भाग में आते हैं। इस भाग में पहुँचने के पश्चात् वे कुछ ही हफ्तों के काल में भूमि पर गिर सकते हैं। इससे यह ज्ञात होता है कि विश्व फालआउट बहुत काल के पश्चात् प्रकट होता है और संसार के हर भाग में इसके पहुँचने की सम्भावना रहती है।

फालआउट में अनेक तत्वों के रेडियधर्मी समस्थानिक उपस्थित रहते हैं जिनके द्वारा बीटा-कण एवं गामा-विकिरण स्वतंत्र हो सकते हैं। इनमें सबसे भयंकर स्ट्राशियम-९० समस्थानिक है जो परमाणु-विस्फोट के साथ सदा उपस्थित रहता है। यह समस्थानिक मृत्तिका में सरलता से मिल जाता है। यदि यह थोड़ी मात्रा में भी भूमि में मिल जाय तो उस पर उपजे सारे खाने योग्य पदार्थों, मवेशियों के चारे आदि में स्ट्राशियम-९० उपस्थित रहेगा।

इसकी अर्धजीवन अवधि लगभग बीस वर्ष है, जिस कारण उस भूमि पर निर्भर रहने वाला प्रत्येक प्राणी वर्षों तक रेडियधर्मी विकिरण द्वारा उत्पन्न रोगों से पीड़ित रहेगा। एक बार पीड़ित होने पर न जाने उसकी कितनी पीड़ियों को उसका दण्ड भोगना पड़ेगा। इस कारण यह प्रभाव बम-विस्फोट के तत्काल प्रभाव से भी भयंकर रहेगा।

ऊपर बताये प्रभावों का अनुमान एक प्रसिद्ध उदाहरण द्वारा हो सकता है। १ मार्च, १९५४ को प्रशान्त महासागर के बाइकिनी द्वीप समूह पर अमेरिकन सरकार द्वारा ताप-नाभिक परीक्षा-विस्फोट किया गया। इस विस्फोट द्वारा उत्पादित ऊर्जा एक करोड़ पचास लाख (1.5×10^9) टन टी० एन० टी० के समान थी। इस विस्फोट से पूर्व अमेरिकन सरकार ने टापू के चारों ओर क्षेत्र निर्धारित किया था और चेतावनी दे दी गयी थी कि कोई उस क्षेत्र में न घुसे। इस प्रयोग द्वारा निकले विकिरणों का कुछ जापानी मछुओं पर बहुत बुरा प्रभाव पड़ा। विस्फोट के समय मछुए फुकूरया मारु नामक नाव पर थे जो विस्फोट द्वीप से नब्बे मील उत्तर-पूर्व की ओर थी। यह स्थान अमेरिका द्वारा निर्धारित क्षेत्र के बाहर था। तीन बजकर ४५ मिनट प्रातःकाल के समय जापानियों ने एक लाल चमक देखी जो अंतरिक्ष के परे ज्ञात होती थी। यह ध्यान देने योग्य बात है कि किसी स्थान से ९० मील दूरी पर समुद्र की सतह अन्तरिक्ष से दो सहस्र दो सौ (२,२००) मीटर नीचे होगी। सात मिनट पश्चात् उन्हें एक घमाका भी सुनाई दिया।

लगभग ३ घंटे पश्चात् उस स्थान पर मटीली सफेद धूल आकाश से नीचे गिरने लगी। धूल-वर्षा लगभग ५ घंटे तक होती रही और सारी नाव तथा उसके नाविकों पर छा गयी। कुछ समय पश्चात् नाविकों को मिचलाहट, पेट में गड़बड़ी, आँखों में सूजन आदि की शिकायत होने लगी। दो तीन दिन पश्चात् उनके हाथों और गालों में सूजन आ गयी। इसी दिशा में वह नाव १४ दिन तक समुद्र यात्रा करने के पश्चात् जापान के याइजू बन्दरगाह पर लौटी।

लौटने के पश्चात् इन नाविकों पर ल्यूकीमिया के लक्षण दिखाई दिये और उनके मेरुदण्डों के कोषों में कमी आ गयी। कुछ को ज्वर की पीड़ा होने लगी। तीन-चार सप्ताह के काल में सब नाविकों के बाल उड़ गये। कुछ काल पश्चात् सब नाविकों की दशा में सुधार मालूम हुआ। ये मछुए नाव के यात्रा-काल में नहाते रहे थे तथा नाव को भी धोया गया था। इस कारण हानिकारक प्रभाव में कमी आ गयी थी। एक को छोड़कर अन्य सारे नाविक अभी तक जीवित हैं। एक नाविक ने नाव पर गिरी कुछ धूलको एक कागज में बन्द कर अपने तकिये में रख लिया था। उसी पर वह रोज सोता था। अवश्य ही उस धूल से निकले विकिरण उसके मष्तिष्क में कई घंटे तक प्रतिदिन प्रभाव डालते रहे होंगे। वही नाविक कुछ दिनों पश्चात् मृत्यु का शिकार हुआ।

बचे हुए नाविकों की दशा वाह्य रूप से इस समय अच्छी है, परन्तु आन्तरिक रूप से उन पर क्या प्रभाव पड़ा यह अभी ज्ञात नहीं है।

इसी परीक्षा-विस्फोट से २८ अमेरिकन सैनिक तथा २३९ मार्शल द्वीप निवासी भी अचानक प्रभावित हुए थे। उन में भी जापानी मछुओं के समान लक्षण प्रकट हो गये थे। परन्तु शीघ्र इलाज होने के कारण उनकी दशा अधिक नहीं बिगड़ी।

इन दुर्घटनाओं के कारण अमेरिकन सरकार ने विस्फोटों के फालआउट की जाँच की जिसकी सूचना १९५५ में मिली। इसके अनुसार एक बड़े तापनाभिकीय बम से सात सहस्र (७,०००) वर्ग मील तक स्थानीय फालआउट का भयानक प्रभाव पड़ा था। समुद्र में परीक्षा करने के कारण जल में रेडियधर्मिता बढ़ जाती है। मार्च, १९५४ के विस्फोट से बार्डिनिनी द्वीप के पास के सागर में रेडियधर्मिता बहुत बढ़ गयी। विस्फोट के दो दिनों पश्चात् इसकी मात्रा सामान्य मात्रा से (जल तथा वायुमण्डल में रेडियधर्मिता अत्यंत हलकी मात्रा में सदा उपस्थित रहती है) दस लाख गुनी बढ़ी दिखाई थी। चार माह पश्चात् भी इस स्थान से १५०० मील दूरी पर सामान्य मात्रा से तिगुनी रेडियधर्मिता पायी गयी। विस्फोट के तेरह

माह पश्चात् दस लाख वर्ग मील क्षेत्रफल तक यह रेडियधर्मिता पहुँच चुकी थी।

यह तो रही स्थानीय फालआउट की बात। एक बड़े तापनाभिक अस्त्र का विस्फोट इतना विशाल होता है कि उसका बड़ा भाग समतापमण्डल तक पहुँच जाता है। इसमें पहुँचने वाले कण १० वर्ष तक वायुमण्डल के उसी भाग में रहेंगे। तत्पश्चात् वे नीचे उतर कर पृथ्वी की सतह पर पहुँचेंगे। इनका प्रभाव पृथ्वी के सब स्थानों पर पड़ेगा। वैज्ञानिकों का विचार है कि इनका अधिकांश प्रभाव विषुवती रेखा के दोनों ओर मध्य अक्षांश रेखाओं के भाग पर पड़ेगा। विषुवती रेखा के भाग पर कम प्रभाव होगा। इस प्रकार अब तक हुए इतने बम विस्फोटों के कारण फालआउट की मात्रा बढ़ती जा रही है। भविष्य में मानवता पर इसके क्या हानिकारक प्रभाव होंगे इसका अनुमान करना इस समय कठिन है।

इस समय यह तो ज्ञात है कि रेडियधर्मी विकिरणों का जीवों पर हानिकारक प्रभाव होता है। यह समझ लेना कि कम मात्रा में ये विकिरण हानिकारक नहीं होते, भ्रमपूर्ण है। मनुष्य चाहे जितनी कम मात्रा में विकिरण का शिकार हो उससे हानि उसे अवश्य होगी। कम मात्रा के विकिरण का प्रभाव उसी समय ज्ञात नहीं होता, परन्तु धीरे-धीरे संचयागत रूप में उसका प्रभाव अवश्य पड़ता है। यदि कोई कार्यकर्ता विकिरण-प्रयोगों में लगा हो और बचाव की सारी सावधानी लेता हो, फिर भी विकिरण थोड़ी मात्रा में अवश्य उस पर प्रभाव डालते रहेंगे। अमेरिका में १९३०-५४ के मध्य में चिकित्सकों के देहान्त कालों को देखने से ज्ञात हुआ है कि जो चिकित्सक एक्स-रे या अन्य विकिरणों से चिकित्सा-कार्य करते थे उनका औसत जीवनकाल ६०.५ वर्ष था तथा जो चिकित्सक विकिरणों से कार्य नहीं करते थे उनका औसत जीवन-काल ६५.७ वर्ष था। रेडिय-चिकित्सा से कार्य करने वाले की जीवन-अवधि ११ प्रतिशत कम थी।

इस स्थान पर एक घातक रोग ल्यूकीमिया पर भी विचार करना आवश्यक है। इसे 'रक्त कैंसर' भी कहते हैं। रेडिय-विकिरणों के कारण इस

रोग की प्रायिकता अधिक हो गयी है। परमाणु अस्त्रों के विस्फोटों के कारण न जाने कितने व्यक्तियों की इस रोग द्वारा भविष्य में मृत्यु होगी।

इन्ही विचारों से उत्प्रेरित होकर ऐसे परमाणु बम बनाने का प्रयत्न हो रहा है जो रेडियधर्मी-विकिरण-रहित हो। ऐसे बम को हम स्वच्छ बम^१ भी कह सकते हैं। ऐसे बम के विस्फोट द्वारा उदित अधिकांश ऊर्जा संगलन क्रिया द्वारा उत्पन्न होगी। अमेरिका द्वारा ऐसे बम बनाने का दावा किया गया है जिनमें ९६ प्रतिशत ऊर्जा संगलन-क्रिया द्वारा और ४ प्रतिशत ऊर्जा खण्डन-क्रिया द्वारा उत्पन्न होगी। संगलन-क्रिया प्रारम्भ करने के हेतु खण्डन-क्रिया का उपयोग किया गया है। ऐसे बम के विस्फोट से न्यूनतम मात्रा में फालआउट होगा। परन्तु न्यूट्रान उत्पन्न होने से उत्प्रेरित रेडियधर्मिता की उत्पत्ति हो सकती है। फिर भी यह बम इस समय तक प्रयोजित बमों से अत्यंत स्वच्छ होगा। वैज्ञानिकों का ऐसा विचार है कि कुछ वर्षों में वे ऐसा बम बना सकेंगे जिसमें रेडियधर्मिता पूर्णतया अनुपस्थित होगी। परन्तु दुःख का विषय तो यह है कि उस समय तक न जाने कितने तापनाभिक बम परीक्षा-विस्फोटों में काम आ चुके होंगे और उनके द्वारा विश्व-वातावरण वर्षों के लिए दूषित हो चुका होगा।

अध्याय १८

विकिरण से सुरक्षा

रेडियतत्त्वों से विकिरण मुक्त होते हैं, यह बात रेडियम की खोज के साथ ही ज्ञात हो गयी थी। कुछ वर्षों पश्चात् यह भी ज्ञात हुआ कि ये विकिरण मनुष्य को हानि पहुँचाते हैं और यह भी कि एक्स-विकिरण भी इसी लिए मनुष्य को हानि पहुँचाने की क्षमता रखते हैं। १९२५ के लगभग वैज्ञानिकों ने इन विकिरणों से बचाव करने के उपयुक्त उपाय निकालने के प्रयत्न किये। परमाणु-खण्डन प्रयोगों की उपयोगिता के कारण इस समय संसार के अनेक स्थानों पर रेडियधर्मिता विषयक कार्य हो रहा है। इस कारण यह अत्यंत आवश्यक है कि कार्यकर्त्ता हानिकारक विकिरणों से अपनी रक्षा करते रहे तथा कार्य करते समय पूर्णरूप से सतर्क रहें। विकिरणों से बचाव करना एक बड़ी समस्या है। इस कारण उन समस्त अनुसन्धानशालाओं तथा औद्योगिक कार्यालयों में जहाँ परमाणु सम्बन्धी कार्य होते हैं विकिरण-बचाव का पूर्ण रूप से ध्यान रखा जाता है।

परमाणु-ऊर्जा सम्बन्धी कार्यों के कुछ ऐसे क्षेत्र हैं जिनमें अत्यधिक विकिरण उत्पन्न होते हैं। उनमें साइक्लोट्रॉन, कणत्वरक और नाभिक प्रतिकारी के क्षेत्र मुख्य हैं। नाभिक प्रतिकारी में ईंधन के व्यय होने पर खण्डन-पदार्थ बनते हैं। कुछ समय पश्चात् ईंधन के डंडों को बदलना आवश्यक हो जाता है। व्यय ईंधन से खण्डन खण्डों का रासायनिक क्रियाओं द्वारा विश्लेषण किया जाता है जिससे अनेक उपयोगी रेडियधर्मी समस्थानिक उपलब्ध होते हैं। खण्डन खण्ड भयंकर मात्रा में रेडियधर्मी विकिरण

स्वतंत्र करते हैं, अतः इस कार्य को करते समय अत्यधिक सावधानी बरतनी होती है।

अल्फा-कण, बीटा-कण, गामा-विकिरण एवं न्यूट्रान जीवों पर हानिकारी प्रभाव डालते हैं। अल्फा-कण अल्प द्रव्यों से भी रोके जा सकते हैं। इस कारण इनसे बचाव करना सरल है। परन्तु यदि अल्फा-कण स्वतंत्र करने वाले तत्त्व अकस्मात् श्वासादि मार्ग से शरीर में पहुँच जाये तो वे कुछ भागो में जमा होकर बहुत काल तक हानि पहुँचा सकते हैं। बीटा-कण शरीर में कुछ मिलीमीटर तक यात्रा कर सकते हैं। यदि किसी बीटा स्रोत का त्वचा से स्पर्श हो जाय तो वह हानिकारक फफोले उत्पन्न कर सकता है। एक्स-रे, गामा-विकिरण और न्यूट्रान शरीर के अन्दर के भागो तक पहुँच सकते हैं जिस कारण इनसे बचाव करना अति आवश्यक है।

इन कणों एवं विकिरणों से बहुमुखी हानियाँ सम्भव हैं। ये शरीर में उपस्थित परमाणुओं का आयनीकरण कर उसकी अवस्था में परिवर्तन लाती है। शरीर के प्रकिण्व (एनजाइम) विकिरण द्वारा नष्ट हो जाते हैं। जिस कारण कोष के कार्य में रुकावट होती है। अभी इस क्रिया का पूरे रूप से ज्ञान नहीं हुआ है, परन्तु ऐसा अनुमान है कि प्रकिण्व को नष्ट करने में सभवतः मुक्त मूलक का हाथ रहता है। विकिरण द्वारा पिथ्य सूत्र के विच्छेदन कोष तथा उसके नाभिक में सूजन होना, उसके द्रव की श्यानता में वृद्धि होना आदि प्रभाव देखे गये हैं। विध्वंस कोष आदि के कण जमा होकर रक्त के संचार में भी इसी प्रकार रुकावट उत्पन्न करते हैं। यह भी देखा गया है कि कोष के विभाजन द्वारा गुणित होने की क्रिया-गति में विकिरण द्वारा रुकावट आती है। अतः विकिरण के इस गुण के आधार पर कैंसर कोष के गुणन को एक्स एवं गामा-विकिरण की सहायता से रोका गया है। इस प्रकार नियंत्रित रूप से गामा-विकिरण के सम्पर्क द्वारा कैंसर-चिकित्सा सम्भव है, परन्तु शरीर के किसी भाग से अनियंत्रित मात्रा में इसका सम्पर्क होने पर कैंसर रोग हो सकता है।

इस समय विकिरण के कारण मनुष्य पर होनेवाले प्रभाव की उचित

खोज की जा रही है। अब हमें ज्ञात है कि यदि किसी विकिरण को अधिक देर तक मनुष्य के सम्पर्क में रखा जाय तो उस पर होनेवाले प्रभाव की चार दशाएँ होती हैं। प्रथम दशा में मिचलाहट और वमन आदि होते हैं। इसके पश्चात् दूसरी दशा में रोगी की दशा में सुधार आता है। यह सुधार-अवस्था कुछ दिन से कुछ सप्ताह तक रहती है। तत्पश्चात् तीसरी दशा प्रारम्भ होती है जो अत्यंत कष्टदायक होती है। यदि विकिरण की मात्रा अत्यधिक रही हो तो रोगी की इस अवस्था में मृत्यु हो सकती है। भूख न लगना, कमजोरी, ज्वर, हृदय-गति में तीव्रता, तीव्र अतिसार, मसूड़ों से रक्त का जाना और बालों का शरीर से गिरना इसके लक्षण होते हैं। विकिरण की तीव्रता के अनुसार इस दशा की अवधि कम या अधिक रहती है। यदि विकिरण की मात्रा अत्यधिक रही होगी तो रोगी की अवस्था खराब होती जायगी और वह बच न सकेगा। परन्तु उसकी मात्रा कम रहने पर चौथी अवस्था में रोगी की हालत में सुधार होने लगता है। इसकी अवधि ६ माह तक हो सकती है। विकिरण के कुछ हानिकारक प्रभाव दीर्घ काल तक गुप्त रहते हैं। रक्त तथा उसके निर्माण-स्थानों, आँतों और जनन अंगों पर विकिरण का प्रभाव शीघ्र ही होता है। इस कारण उन्हें रेडिय संवेदनशील अंग कहते हैं। इसके विपरीत पेशियों, अस्थियों तथा तान्त्रिक कोशिकाओं आदि पर विकिरण का प्रभाव कम पड़ता है, अतः इन्हें रेडिय प्रतिरोधी अंग कहते हैं।

विकिरण मात्रक

इस प्रसंग में कुछ रेडिय मात्रकों का ज्ञान करना उचित होगा। रंटजन एक उपयोगी मात्रक है। एक घन सेन्टीमीटर प्रमाणित वायु में आयनीकरण के फलस्वरूप एक स्थिर विद्युत् मात्रक विद्युत् उत्पन्न करने वाली एक्स-रे अथवा गामा-विकिरण को एक रंटजन कहेंगे। इतनी मात्रा द्वारा 2.0×10^8 आयन युग्म उत्पन्न होंगे। यह भी कह सकते हैं कि १ रंटजन मात्रक अवशोषण करने पर १ ग्राम वायुको ८६ अर्ग ऊर्जा मिलती है। रंटजन मात्रक

का उपयोग एक्स या गामा-विकिरण के लिए किया गया था। अल्फा, बीटा, प्रोटान या न्यूट्रान कण भी आयनीकरण उत्पन्न करते हैं। इन कणों द्वारा उत्पन्न आयनीकरण को नापने के लिए एक नये मात्रक का उपयोग किया गया है जिसे 'रैड' कहते हैं। किसी आयनीकरण विकिरण को, जिसके द्वारा १०० अर्ग ऊर्जा प्रति ग्राम अवशोषण पदार्थ उत्पन्न हो, एक रैड कहेंगे।

समान मात्रा में ऊर्जा उत्पन्न करने वाले आयनीकारक विकिरणों का मनुष्य या अन्य जीवों पर एक समान प्रभाव नहीं पड़ता। इस कारण एक अन्य मात्रक प्रस्तावित किया गया जिसे 'रेम' कहते हैं। रैड भौतिक मात्रक है, परन्तु रेम जैव मात्रक है जो हर प्रकार के आयनीकारक अभिकर्मक के लिए प्रयोग किये जाते हैं। एक रेम, आयनीकारक विकिरण की उस मात्रा को कहते हैं जो जैव वस्तु पर एक रैड एक्सरे के समान प्रभाव डालती है। इसे आपेक्षिक जैव प्रभावशीलता भी कहते हैं। भिन्न-भिन्न आयनीकारक पदार्थों में इसकी मात्रा बहुत भिन्न-भिन्न रहती है।

विकिरण	रैड	रेम
एक्स अथवा गामा-विकिरण	१	१
बीटा कण	१	१
तीव्र न्यूट्रान	१	१०
मन्द न्यूट्रान	१	४ से ५
अल्फा कण	१	१० से २०
प्रोटान	१	१०

महत्तम स्वीकृत विकिरण मात्रा

परमाणुविज्ञान के कार्यकर्ताओं को ऐसे उपकरणों से कार्य करना पड़ता है जिनमें विकिरण स्वतन्त्र होते रहते हैं। मनुष्य पर इन विकिरणों का

1. Rad
2. Rem or Roentgen equivalent of man
3. R. B. E. relative biological effectiveness

हानिकारक प्रभाव पड़ता है। इस कारण यह नितान्त आवश्यक है कि कार्य करते समय ऐसी देखभाल रखी जाय कि कार्यकर्ता पर विकिरण की कम से कम मात्रा पड़े। यह भी आवश्यक है कि इस मात्रा की जाँच की जाय और एक महत्तम मात्रा नियत की जाय जिससे अधिक कोई कार्यकर्ता ग्रहण न करे। यदि विकिरण अत्यन्त अल्प मात्रा में हो तो मनुष्य का शरीर उसको सहन कर सकता है। यदि कुछ हानिकारक प्रभाव भी होगा तो कुछ समय पश्चात् शरीर कोष उससे पुनः मुक्ति प्राप्त कर लेंगे। परन्तु यह ध्यान में रखना आवश्यक है कि शरीर के कुछ अंग (विशेषकर जनित अंग) इसके अपवाद हैं। उनको विकिरण द्वारा पहुँची हानि स्थायी होती है।

पृथ्वी में अल्प मात्रा में रेडियधर्मी तत्त्व उपस्थित रहते हैं। अन्तरिक्ष किरणों भी सदा आयनीकरण उत्पन्न करती रहती हैं। इस कारण सारे जैव प्राणियों पर अल्प मात्रा में आयनीकारक विकिरण पड़ते रहते हैं। इनका कोई हानिकारक प्रभाव तो नहीं ज्ञात हो सका। वैज्ञानिकों के अनुमान के अनुसार संसार के प्रत्येक प्राणी पर ०.१४ से ०.१६ रटजन प्रतिवर्ष की मात्रा में विकिरणों का प्रभाव पड़ता रहता है। सारी दशाओं पर विचार कर अब यह नियत किया गया है कि ०.३ रटजन प्रति सप्ताह की मात्रा से अधिक एक्स अथवा गामा-विकिरण किसी मनुष्य को नहीं ग्रहण करना चाहिए। दूसरे विकिरणों की भी मात्रा नियत की गयी है जो इस प्रकार है—

शरीर उक्तक पर महत्तम स्वीकृत मान्य मात्रा (रैंड मे)
प्रति सप्ताह

विकिरण	शरीर के अंदर किसी स्थान पर	पूर्ण शरीर पर	हाथों पर
एक्स अथवा गामा-विकिरण	०. २	०. ३	१. ०
बीटा कण	०. २	०. ३	१. ०
प्रोटान	०.०२	०.०३	०.१०
अल्फा किरणें	०.०१	०.०१५	०.०५
तीव्र न्यूट्रान	०.०२	०.०३	०.१०
मन्द न्यूट्रान	०.०४	०.०६	०.२०

ये मात्राएँ एक सप्ताह की है और इनका सप्ताह के ५ या ६ दिन में विभक्त रहना आवश्यक है। यदि सारे सप्ताह की मात्रा एक दिन में ली जाय तो हानि होने की आशंका रहेगी, चाहे सप्ताह में बचे दिनों में विकिरण कार्य न किया जाय।

वैज्ञानिकों का अनुमान है कि यदि किसी मनुष्य पर दुर्घटना से तीक्ष्ण विकिरणों का प्रभाव हो जाय तो निम्न प्रकार का परिणाम होने की आशंका रहेगी।

सम्पूर्ण शरीर पर तीक्ष्ण विकिरण का प्रभाव

विकिरण मात्रा	अनुमानित प्रभाव
० से २५ रटगन	कोई विशेष क्षति न होगी।
२५ से ५०	रक्त में परिवर्तन आने की सम्भावना, परन्तु शोच्य क्षति न होगी।
१०० से २००	क्षति और सम्भवतः शारीरिक असमर्थता।
२०० से ४००	क्षति अवश्य होगी। मृत्यु की सम्भावना।
४०० से ६००	पचास प्रतिशत मृत्यु।
६०० या अधिक	मृत्यु अवश्य।

कुछ रेडिय समस्थानिक, जल अथवा वायु द्वारा, मनुष्य के शरीर में पहुँच सकते हैं। इनकी महत्तम मात्रा नियत करना वांछित होगा। क्यूरी रेडिय समस्थानिकों की मात्रा का मापक है। १ ग्राम रेडियम से 3.7×10^{10} परमाणु प्रति सेकेण्ड विच्छेदित होते हैं। इस मात्रा को १ क्यूरी मात्रक कहते हैं। इसी प्रकार किसी रेडियधर्मी समस्थानिक की उस मात्रा को क्यूरी कहेंगे जिससे 3.7×10^{10} परमाणु प्रति सेकेण्ड विच्छेदित होते हों। दो अन्य मात्रकों मिलीक्यूरी (3.7×10^9 विच्छेदन प्रति सेकेण्ड) और माइक्रोक्यूरी (3.7×10^6 विच्छेदन प्रति सेकेण्ड) का भी प्रयोग किया जाता है।

यह ध्यान देने योग्य है कि दो समान क्यूरी मात्रक रेडियसमस्थानिकों

के प्रयोग से समान विकिरण स्वतन्त्र न होंगे। पाठकों को यह निम्न तालिका से सूचित हो जायगा।

एक क्यूरी स्रोत द्वारा उत्पन्न गामा-विकिरण

समस्थानिक	अर्धजीवन अवधि	रटजन प्रति घण्टा
स्वर्ण-१९८	२.७ दिन	०.२२
आयोडीन-१३१	८ दिन	०.२४
सीज़ियम-१३७	३७ वर्ष	०.३६
टैण्टेलम-१८२	११५ दिन	०.६१
रेडियम-२२६	१६२० वर्ष	०.८४
कोबाल्ट-६०	५.२६ वर्ष	१.३०

मनुष्य के शरीर के अन्दर रेडिय समस्थानिकों की हानिरहित महत्तम मात्रा नियत करने के प्रयत्न किये गये यद्यपि उनमें पूर्ण सफलता नहीं मिली। ऐसा अनुमान है कि ०.१ माइक्रोक्यूरी रेडियम और ०.३ माइक्रोक्यूरी आयोडीन-१३१ शरीर के अन्दर पहुँचकर हानि नहीं पहुँचाते। इसी प्रकार ०.०५ माइक्रोक्यूरी प्लूटोनियम-२३९ और १ माइक्रोक्यूरी स्ट्रॉन्शियम-९० हानिरहित ज्ञात होते हैं।

विकिरण से रक्षा

परमाणु अनुसन्धानकर्ताओं का विकिरण से बचाव आवश्यक है। विभिन्न विकिरणों के लिए अलग-अलग प्रकार की सावधानियाँ आवश्यक होती हैं। उदाहरणार्थ, अल्फ़ा-कण से बचाव खबर के दस्तानों द्वारा सम्भव है, परन्तु यह आवश्यक है कि प्रयोगशाला में वायु का आवागमन होता रहे। बीटा-कणों को एल्यूमिनियम, काँच आदि की चादरो से रोका जा सकता है।

इसके विपरीत न्यूट्रॉन एवं गामा-विकिरण अधिक मात्रा में द्रव्य को पार करते हैं, इस कारण उनसे बचाव करना कठिन कार्य है। प्रतिकारी में

दोनों ही परमाणु अधिकतम मात्रा में उत्पन्न होते हैं। इनसे बचाव के लिए कंक्रीट कवच का बहुधा उपयोग होता है। यह सस्ता होने के कारण सुलभ है। इसमें हाइड्रोजन, कैल्शियम, सिलिकन आदि तत्त्व रहते हैं जो न्यूट्रानों को मन्द करने और ग्रहण करने के लिए और गामा-विकिरण को घटाने के लिए अति उपयोगी है। प्रतिकारी के चारों ओर विशेष प्रकार के भारी कंक्रीट कवच बनाये जाते हैं जिनमें लौह अयस्क और बेराइट खनिज भी मिलाया जाता है जिसमें वे अधिक प्रभावशाली हो जायें। दुर्घटना से बचाने के लिए प्रतिकारी भूमि के अन्दर रखे जाते हैं या उनके चारों ओर गुम्बज की आकृति के निर्माण बने रहते हैं जिनसे यदि दुर्घटनावश प्रतिकारी फट जाय तो उसकी रेडियधर्मिता बाहर निकलकर वातावरण दूषित न कर सके।

भोजन में भी अत्यन्त सावधानी बरतना आवश्यक है। जहाँ रेडियधर्मी कार्य हो रहा हो वहाँ पर न तो भोजन रखा जाय और न खाया जाय। हाथ, नाखून आदि की स्वच्छता का सदैव ध्यान रखना भी आवश्यक है।

प्रतिकारी में परमाणु-खण्डन के फलस्वरूप प्रचुर मात्रा में रेडियधर्मी खण्ड उत्पन्न होते हैं। इनको बाहर निकाल कर फेंकना भी विकट समस्या का कार्य होता है। इस दिशा में सावधानी से कार्य करना आवश्यक है, जिससे स्थान, जल और वायुमण्डल दूषित न हो। प्रतिकारी के कार्य के कारण उसमें प्रविष्ट वायु में रेडियधर्मी कण उपस्थित रह सकते हैं। इस वायु को बाहर फेंकने से पहले विशेष छत्रों द्वारा प्रविष्ट करा कर रेडियधर्मी अशुद्धियों को रोक लिया जाता है। प्रतिकारी से बने बहुत-से अनुपयोगी रेडिय खण्डों को जमाकर भूमि में गहराई पर गाड़ना आवश्यक हो जाता है। ऐसे स्थानों को चिह्नित करना आवश्यक है जिससे भविष्य में वहाँ पर खुदाई न हो।

जिन प्रयोगशालाओं में रेडियधर्मी समस्थानिकों द्वारा कार्य होता है उनका निर्माण विशेष प्रकार से किया जाता है जिससे रेडियधर्मिता बाहर न फैल पाये। ऐसी प्रयोगशाला के अन्दर समुचित मात्रा में वायु का आवा-

गमन रहना आवश्यक है। जहाँ तक हो सके रेडिय समस्थानिक कार्य-स्थल को निष्कलंक इस्पात से बनाते हैं जिससे उसकी सफ़ाई सरलता से हो सके। कार्यकर्ता के बचाव के लिए उचित कवच धारण करना आवश्यक रहता है। कभी-कभी तीव्र रेडियधर्मी विकिरण से बचने के लिए दूरस्थ नियन्त्रण-यन्त्र से कार्य करना पड़ता है। इसके लिए कार्यकर्ता को कार्य-कुशल होना चाहिए जिससे वह समस्त कार्यों को उपकरण द्वारा ही कर सके। प्रयोग-शाला के प्रत्येक भाग की और कार्यकर्ता के कपड़ों एवं अंगों की समय-समय पर जाँच होनी चाहिए जिससे प्रयोगशाला की वस्तुओं और जीवों को रेडिय-धर्मी स्पर्श से बचाया जा सके।

अध्याय १९

भारत में परमाणु-अनुसन्धान की प्रगति

स्वतन्त्रता मिलने के पश्चात् से भारत सरकार परमाणु-अनुसन्धानों के प्रति सजग रही है। कई वर्षों पहले परमाणु-ऊर्जा आयोग का निर्माण हुआ था। यह आयोग भारत के प्रधान मन्त्री श्री जवाहरलाल नेहरू की देख-रेख में कार्य कर रहा है।

परमाणु-अनुसन्धान का सबसे बड़ा केन्द्र बम्बई के निकट ट्राम्बे में स्थित है। इसकी अध्यक्षता विश्व-प्रसिद्ध भौतिकशास्त्री डा० होमी जहाँगीर भाभा कर रहे हैं।

भारत में परमाणु-ऊर्जा का प्रयोग शान्तिपूर्ण उपयोगों के लिए निर्धारित हुआ है और सदैव रहेगा। सौभाग्य वश भारत को परमाणु-ऊर्जा के ईंधन की भविष्य में कमी न होगी। केरल प्रदेश में थोरियम अयस्क 'मोनेज़ाइट' का अक्षय कोष है। थोरियम का परमाणु-ऊर्जा में उपयोग किया जा सकता है, यह पाठकों को अब भली-भाँति विदित हो गया होगा। इसके अतिरिक्त यूरेनियम और थोरियम अयस्क अन्य स्थानों में भी पाये गये हैं। रांची (विहार) में पाये गये यूरेनियम और थोरियम अयस्कों की कोटि उत्तम है और ऐसा अनुमान है कि इन अयस्कों की मात्रा केरल के थोरियम अयस्क से कम से कम डेढ़ गुनी है।

अप्सरा

४ अगस्त, १९५६ भारत के इतिहास में स्मरणीय दिवस रहेगा। उस दिन भारत के प्रथम संतरित-जलाशय-परमाणु-प्रतिकारी 'अप्सरा'

ने कार्यारम्भ किया था। यह प्रतिकारी पूर्ण रूप से भारतीय वैज्ञानिकों एवं इंजीनियरों द्वारा ही बनाया गया है। इसका रूप ओकरिज के जलाशय प्रतिकारी पर आधारित है।

इस प्रतिकारी की लम्बाई १४ मीटर, चौड़ाई ८.२ मीटर और गहराई ८.५ मीटर है। कंक्रीट द्वारा निर्मित इस संरचना के अन्दर जल की टंकी बनायी गयी है। टंकी की लम्बाई ८.५ मीटर, चौड़ाई ३ मीटर और गहराई ८.५ मीटर है। आधार पर कंक्रीट की दीवारों की मुटाई २.४ मीटर है परन्तु ऊपर की ओर वह पतली होती गयी है।

प्रतिकारी के ऊपर रेलों पर खिसकने वाली ट्राली लगायी गयी है। यह ट्राली प्रतिकारी की लम्बी भुजा के समानान्तर आगे-पीछे चलायी जा सकती है। इस ट्राली के सहारे एक ढाँचा लटका है जिसके निचले भाग में प्रतिकारी का मध्यभाग अथवा ईंधन-दण्ड लगे है।

प्रतिकारी के मध्यभाग में ३५ दण्ड स्थित है। प्रत्येक दण्ड ५ से०मी० वर्ग लम्बा चौड़ा और ०.६ मीटर लम्बा है और एल्यूमिनियम के डब्बे के रूप का बना है जिसके अन्दर तेरह पतली पट्टियाँ रखी गयी है। ये पट्टियाँ यूरेनियम-एल्यूमिनियम मिश्र धातु की बनी है। उपयोजित यूरेनियम में यूरेनियम-२३५ समस्थानिक (समृद्ध यूरेनियम) ५० प्रतिशत मात्रा में रखा गया है।

यूरेनियम ईंधन-दण्डों के बीच खण्डन प्रतिक्रिया होती है। इस क्रिया में सामान्य जल का उपयोग करते हैं जो संयंत्रक, शीतलक और कवच का कार्य करता है। समृद्ध यूरेनियम द्वारा स्वतंत्र हुए न्यूट्रान प्रतिक्रिया को शृंखलाबद्ध रूप में चलाते हैं। प्रतिक्रिया का नियंत्रण चार एल्यूमिनियम दण्डों द्वारा होता है जिनपर केडमियम की पतली चादर लगायी गयी है।

यूरेनियम दण्डों को छोड़कर 'अप्सरा' का प्रत्येक भाग भारत में बना है।

केनाडा-इण्डिया प्रतिकारी

११ जुलाई, १९६० को भारत के द्वितीय परमाणु प्रतिकारी ने कार्य

करना प्रारंभ किया है। यह केनाडा राज्य की सहायता से बना है, इस कारण इसका नाम केनाडा-इण्डिया प्रतिकारी रखा गया है। यह प्रतिकारी केनाडा के एन० आर० एक्स० प्रतिकारी के आधार पर बना है।

इस प्रतिकारी में प्राकृतिक सामान्य यूरेनियम दण्डों का उपयोग किया गया है। संयंत्रण का कार्य भारी जल का जलाशय करता है जिसमें यूरेनियम दण्ड लटके रहते हैं। प्रतिकारी का शीतलन सामान्य जल द्वारा होता है जो दण्डों के मध्य से संचक्रित किया जाता है। मन्द न्यूट्रानों द्वारा इस प्रतिकारी की क्रिया शृंखलाबद्ध की गयी है। यह परमाणु भट्ठी चालीस सहस्र किलोवाट (४०,००० कि० वा०) ऊष्मा ऊर्जा पर चलती है।

प्रतिकारी को शीतल करने के हेतु जल की आवश्यकता होती है। ताजे जल को एक बन्द परिपथ में घुमाते हैं जिसका एक सिरा प्रतिकारी के मध्य भाग में लगा रहता है। दूसरे भाग को समुद्र के अन्दर रखा गया है। इसके द्वारा प्रतिकारी की ऊष्मा सागर में चली जाती है।

यह प्रतिकारी विश्व के सर्वश्रेष्ठ रेडियधर्मी समस्थानिक उत्पादकों की श्रेणी में है। इसके द्वारा भारत में उच्च स्तर के वैज्ञानिक अनुसन्धान संभव हो सकेंगे तथा उच्चकोटि की परमाणु-विज्ञान-शिक्षा भी देश में ही दी जा सकेगी। इस प्रतिकारी द्वारा परमाणु शक्ति से सम्बन्धित भौतिक, रासायनिक, जीव-विज्ञान और धातुकर्म सम्बन्धी मौलिक अनुसन्धान होना संभव हो गया है। इस उपकरण द्वारा भारत में प्रत्येक प्रकार के रेडियधर्मी समस्थानिक बन रहे हैं जो खेती, चिकित्सा, उद्योग, रासायनिक क्रियाओं और अन्य वैज्ञानिक अनुसन्धानों में उपयोजित होंगे। भारत सरकार ने योजना बनायी है कि अब भारत में भारतीय तथा अन्य एशिया-अफ्रीकी देशों के विद्यार्थियों को परमाणु-विज्ञान की शिक्षा दी जाय।

केनाडा-इण्डिया प्रतिकारी भारत तथा केनाडा राज्य के सहयोग से निर्मित हुआ है। प्रतिकारी का मध्य भाग केनाडा में बना है तथा बाह्य भाग भारत के वैज्ञानिकों एवं इंजीनियरों की देख-रेख में तैयार हुआ है। इस प्रतिकारी की लागत लगभग सात करोड़ पचास लाख (७,-

५०,००,०००) रुपये है जिसका आधा भाग केनाडा ने कोलम्बो योजना के अंतर्गत भारत को प्रदान किया है।

केनाडा-इण्डिया प्रतिकारी भारत और केनाडा के मैत्रीपूर्ण सहयोग का अप्रतिम सूचक है।

जरलीलीना

ट्राम्बे में भारतीय परमाणु-ऊर्जा-आयोग के अन्तर्गत जरलीलीना नामक परमाणु भट्ठी तैयार हो रही है। जरलीलीना भट्ठी परमाणु प्रतिकारियों की प्रणालियों के अध्ययन और नक्शे तैयार करने में सहायक होगी। इस भट्ठी की लागत लगभग ९ करोड़ रुपये होगी। इसमें सामान्य यूरेनियम का ईंधन के रूप में उपयोग होगा। इस भट्ठी में प्रारम्भ में १५ टन भारी पानी का संयंत्र के रूप में उपयोग होगा। यह अमेरिका के परमाणु शक्ति आयोग से लिया गया है।

यूरेनियम-थोरियम यंत्र

इन परमाणु-प्रतिकारियों के निर्माण और अन्य अनुसन्धान-कार्यों के हेतु शुद्ध ग्रेफाइट, यूरेनियम, थोरियम आदि की आवश्यकता पड़ती है। अब भारत को इन आवश्यक वस्तुओं को बाहर से न मँगाना पड़ेगा क्योंकि ये तथा अन्य वस्तुएँ भारत में बनायी जाने लगी है।

लगभग पाँच वर्ष पूर्व भारत के केरल राज्य में थोरियम यंत्र चालू किया गया था। अब इसकी उत्पादन-क्षमता छः गुनी बढ़ गयी है। इस यंत्र से परमाणु शक्ति के उत्पादन के हेतु आवश्यक यूरेनियम तथा थोरियम को शुद्ध कर, प्रतिकारी के उपयुक्त बनाया जाता है। यह ससार के सबसे

1. Zero Energy Reactor for Lattice Investigations and Neutron Analysis.

बड़े थोरियम नाइट्रेट यंत्रों में से है। यहाँ से भारत के बाहर भी थोरियम नाइट्रेट भेजा जाता है। इस यंत्र को भारत के वैज्ञानिक और इंजीनियरों ने बनाया है।

ट्राम्बे में यूरेनियम शुद्ध करने का एक यंत्र लगाया गया है जिसके द्वारा प्रतिकारी के लिए उपयुक्त यूरेनियम तैयार हो सकता है। एक अन्य थोरियम-यूरेनियम यंत्र भी ट्राम्बे में लगाया गया है।

एक यूरेनियम यंत्र बिहार के घटशिला नगर में लगाया गया है। इसके द्वारा ताम्र के अवशेष से यूरेनियम निकाला जाता है।

इन यंत्रों द्वारा यूरेनियम-थोरियम तत्त्वों का शुद्ध उत्पादन हो रहा है जिससे भारत को पर्याप्त थोरियम और यूरेनियम मिल सकेगा। परमाणु शक्ति में भारत शीघ्र ही आत्मनिर्भर हो जायगा।

प्रतिकारी में ईंधन को विशेष रूप में रखा जाता है। साधारणतया मेगनीशियम और एल्यूमिनियम की मिश्रधातु के डिब्बे में यूरेनियम की छड़ या पट्टिका को रखा जाता है जिसे ईंधन-तत्व (फ्यूएल-एलिमेंट) कहते हैं। इसको तैयार करने का यंत्र ट्राम्बे में शीघ्र बन जाने की आशा है।

भारी जलयंत्र

पंजाब प्रदेश में सतलज नदी के किनारे नगल नगर पर भारी जल उत्पादित करने का यंत्र बन रहा है। परमाणु-प्रतिकारियों के लिए भारी जल सर्वश्रेष्ठ सयंत्रक सिद्ध हुआ है। अभी तक इस बहुमूल्य पदार्थ को बाह्य देशों से मँगाना पड़ता है जिस पर बहुमूल्य विदेशी मुद्रा व्यय होती है। इस यंत्र के द्वारा १४ टन भारी जल प्रतिवर्ष तैयार हो सकेगा। साथ में सत्तर सहस्र (७०,०००) टन नाइट्रोजन उर्वरक भी तैयार होगा।

इस यंत्र द्वारा जल का विद्युत्-विच्छेदन कर ड्यूटीरियम की मात्रा को समृद्ध किया जायगा। तत्पश्चात् समृद्ध हाइड्रोजन के आसवन द्वारा विशुद्ध ड्यूटीरियम तैयार हो सकेगा।

अनुमान है कि इस विधि द्वारा उत्पादित भारी जल अमेरिका के सेवाना रिवर यंत्र में उत्पादित भारी जल से सस्ता बैठेगा।

भारत में हुए परमाणु-सम्बन्धी अनुसन्धान

भारत के परमाणु-सम्बन्धी अनुसन्धान अधिकतर ट्राम्बे में स्थित परमाणु-शक्ति संस्थान में हो रहे हैं। यह संस्थान दो सहस्र चार सौ (२,४००) एकड़ भूमि पर बना है। इस समय इस संस्थान में लगभग एक सहस्र वैज्ञानिक और शिल्पिक कार्य कर रहे हैं। इस संस्थान द्वारा हर वर्ष २५० युवक वैज्ञानिकों और इंजीनियरों को प्रशिक्षण दिया जाता है। यह कार्य विगत तीन वर्ष से प्रारम्भ किया गया है।

परमाणु-अनुसन्धान में उपयोजित यंत्र और उपकरण यही पर बनाये जाते हैं। यह हर्ष का विषय है कि भारत इस महत्त्वपूर्ण क्षेत्र में आत्म-निर्भर हो गया है।

इस संस्थान के अतिरिक्त बम्बई स्थित टाटा के 'मूलभूत अनुसन्धान संस्थान' (टाटा इस्टीट्यूट आफ फंडामेंटल रिसर्च) में परमाणु-अनुसन्धान की विभिन्न विधाओं पर कार्य हो रहा है। कलकत्ता में नाभिक भौतिकी संस्थान (इंस्टीट्यूट आफ न्यूक्लियर फिजिक्स) भी इस कार्य में अग्रसर हो रहा है। कुछ वर्ष हुए इस संस्थान में ८१ से०मी० व्यास का साइक्लोट्रॉन त्वरक लगाया गया जिसके द्वारा मूलभूत कणों के स्वभाव पर अनुसन्धान सम्भव हो गये हैं। दिल्ली, अलीगढ़ एवं गुजरात विश्व-विद्यालयों में भी इस महत्त्वपूर्ण विषय पर अनुसन्धान हो रहे हैं। कलकत्ते के बोस संस्थान (बोस इस्टीट्यूट) तथा बंगलौर के भारतीय विज्ञान संस्थान (इंडियन इस्टीट्यूट आफ साइंस) में भी परमाणु विषयक अनुसन्धान हो रहे हैं। इस प्रयत्न के द्वारा भारत के भौतिकी वैज्ञानिकों, रसायनज्ञों तथा इंजीनियरों को परमाणु ऊर्जा विषयक विशिष्ट शिक्षा मिल रही है जिसका उपयोग वे अपने-अपने विषयों में कर सकेंगे।

परमाणु-ऊर्जा का चिकित्सा एवं कृषि में उपयोजन करने में भी भारत

आगे बढ़ रहा है। अनेक चिकित्सालयों में कैंसर, ल्यूकीमिया आदि असाध्य रोगों की चिकित्सा के कर्मठ प्रयत्न हो रहे हैं। इस कार्य में प्रशिक्षण देने के हेतु परमाणु-ऊर्जा-आयोग द्वारा एक रेडियो रसायन प्रयोगशाला की स्थापना की गयी है। यह प्रयोगशाला परमाणु-शक्ति संस्थान को रसायन की सब शाखाओं के अनुसन्धान में रेडियधर्मी पदार्थों के प्रयोग करने में सहायता देती है।

रेडियधर्मी समस्थानिकों का कृषि-अनुसन्धानों एवं सामान्य प्रयोगों में उपयोग हो रहा है। दिल्ली में स्थित भारतीय कृषि-अनुसन्धानशाला इन प्रयोगों का सबसे बड़ा केन्द्र है। इस अनुसन्धानशाला में पिछले दस वर्षों से रेडियधर्मी समस्थानिकों द्वारा पौधों की नस्ल सुधारने पर खोज हो रही है। मिट्टी में उर्वरक देने की सही विधि ज्ञात करने में रेडिय-समस्थानिकों का अच्छा उपयोग हुआ है। १९५५ से अनुसन्धानशाला में रेडिय-विकिरण द्वारा पौधों की नस्ल परिवर्तित करने के बारे में अध्ययन चल रहे हैं। इनके द्वारा गेहूँ की किस्म को उन्नत करने में विशेष सफलता मिली है।

अभी कुछ समय पहले कृषि अनुसन्धानशाला में २०० फुट व्यास की गोलाकार जमीन में गामा-बाग' बनाया गया है। इस बाग के चारों ओर १ मीटर मोटी और ३६ मीटर ऊँची दीवार बनायी गयी है। इस बाग के मध्य में सीसे के भारी डिब्बे में २०० क्यूरी का कोबाल्ट-६० रखा है जिससे गामा-विकिरण निकलते रहते हैं। मोटी दीवार मनुष्यों को गामा-विकिरण के हानिकारक प्रभावों से बचाने के लिए बनायी गयी है। इस अहाते में प्रवेश करने के लिए इस्पात की एक दुहरी चादर का किवाड़ लगा है। यह किवाड़ उस समय खुलता है जिस समय गामा स्रोत (कोबाल्ट-६०) ढका हो। यंत्रों की सहायता से ऐसा प्रबन्ध किया गया

है कि अहाते के बाहर कोष्ठ में बैठा मनुष्य बटन द्वारा कोबाल्ट-६० को सीसे के डिब्बे से बाहर निकाल सकता है और बन्द कर सकता है। ज्योंही गामा स्रोत डिब्बे से बाहर निकलता है, वैसे ही अहाते का किवाड स्वतः बन्द हो जाता है।

गामा-बाग में फसल सुधारने के लिए परमाणु-ऊर्जा का प्रयोग किया जा रहा है। बाग की भूमि को अनेक भागों में बांटा गया है। प्रत्येक भाग में अलग-अलग किस्म के अनाज के पौधे या अन्य पेड़ लगे हैं और लगाये जा रहे हैं। गामा-विकिरण द्वारा पौधों की नस्लों में शीघ्र परिवर्तन लाये जा सकेंगे। इस प्रकार नस्ल में सुधार होने से अनाज की अधिक उपज होगी।

गामा-बाग में लगा कोबाल्ट-६० केनाडा के चाक रिवर प्रतिकारी द्वारा तैयार हुआ है। परन्तु अब ट्राम्बे में केनाडा-इण्डिया प्रतिकारी चालू होने से भविष्य में ऐसे स्रोत भारत में भी तैयार हुआ करेंगे।

ऊर्जा-उत्पादन योजनाएँ

भारत में परमाणु-ऊर्जा द्वारा विद्युत् उत्पादन का भविष्य उज्ज्वल है; क्योंकि इसका ईंधन पर्याप्त मात्रा में प्राप्य है। ब्रिटेन, सोवियत संघ और अमेरिका में विद्युत्-उत्पादक परमाणु-प्रतिकारी सफलतापूर्वक चल रहे हैं। इससे भारत सरकार को अपनी विद्युत्-उत्पादन योजना में प्रोत्साहन मिला और यह निश्चय किया गया कि तृतीय पंच वर्षीय योजना के अन्तर्गत परमाणु-ऊर्जा द्वारा विद्युत्-उत्पादन करने के तीन स्टेशन बनाये जायें।

परमाणु-ऊर्जा आयोग के अध्यक्ष श्री होमी जहाँगीर भामा ने घोषणा की है कि प्रथम विद्युत् घर महाराष्ट्र प्रदेश में तारपोर नगर में बनेगा और दो लाख पच्चीस सहस्र (२,२५,०००) किलोवाट विद्युत्-ऊर्जा का उत्पादन करेगा। इसके बनने में लगभग पैंतालीस करोड़ (४५,००,००,०००) रुपये की लागत लगेगी। १९६४ में इसके पूर्ण होने की आशा है। पहले यह विचार था कि इसका प्रतिकारी ब्रिटेन के केलडर हाल प्रतिकारी के

आधार पर बनाया जाय। परन्तु अब संसार के अनेक बड़े प्रतिकारी निर्णायक निगमों के सुझाव लेकर इस विषय में निश्चय होगा। ऐसा विचार है कि इस स्टेशन की उत्पादन-शक्ति की दशाओं को बढ़ाकर दस लाख (१०,००,०००) किलोवाट तक ले जाया जाय।

इसके अतिरिक्त दो अन्य स्टेशन क्रमशः राजस्थान और दक्षिण भारत में बनेंगे।

इस समय तक परमाणु-ऊर्जा द्वारा उत्पादित विद्युत् सामान्य स्रोतों द्वारा निकली विद्युत् से मँहगी बैठती है। परन्तु भारत में बिजली की दर सामान्यतः अन्य औद्योगिक देशों से अधिक है। इस कारण प्रारम्भ से ही इन स्टेशनों द्वारा निकली विद्युत् मँहगी न पड़ेगी। इन स्टेशनों द्वारा ऐसे स्थानों में विद्युत् पहुँचायी जा सकेगी जहाँ कोयले और जल की कमी है और इसीलिए उन स्थानों में अभी तक विद्युत् नहीं उत्पादित हो सकी है।

भारत में यूरेनियम और थोरियम प्राप्य हैं। ऐसा अनुमान है कि संसार का सबसे समृद्ध थोरियम अयस्क “मोनेज़ाइट” भारत में पाया जाता है। भारत सरकार अन्य अयस्कों की खोज कर रही है। योग्य वैज्ञानिकों के नेतृत्व में भारत में परमाणु-अनुसन्धान हो रहे हैं। हमें पूर्ण आशा है कि निकट भविष्य में भारत की गिनती संसार के प्रमुख परमाणु-ऊर्जा-उत्पादक देशों में होने लगेगी।

परिशिष्ट (अ)

तत्त्वों के परमाणु-भार

परमाणु-संख्या	नाम	संकेत	परमाणु-भार
१	हाइड्रोजन	H	१.००८
२	हीलियम	He	४.००३
३	लीथियम	Li	६.९४०
४	बेरीलियम	Be	९.०१३
५	बोरान	B	१०.८२
६	कार्बन	C	१२.०१०
७	नाइट्रोजन	N	१४.००८
८	आक्सीजन	O	१६.०००
९	फ्लोरीन	F	१९.००
१०	नीऑन	Ne	२०.१८३
११	सोडियम	Na	२२.९९७
१२	मैग्नीशियम	Mg	२४.३२
१३	एल्यूमिनियम	Al	२६.९८
१४	सिलिकन	Si	२८.०९
१५	फास्फोरस	P	३०.९७५
१६	सल्फर	S	३२.०६६
१७	क्लोरीन	Cl	३५.४५७
१८	आर्गन	Ar	३९.९४४
१९	पोटैशियम	K	३९.१००

परमाणु-संख्या	नाम	सकेत	परमाणु-भार
२०	केलसियम	Ca	४०.०८
२१	स्कैण्डियम्	Sc	४४.९६
२२	टाइटैनियम्	Ti	४७.९०
२३	वैनेडियम	V	५०.९५
२४	क्रोमियम्	Cr	५२.०१
२५	मैगनीज	Mn	५४.९३
२६	आयरन, (लौह)	Fe	५५.८५
२७	कोबाल्ट	Co	५८.९४
२८	निकल	Ni	५८.६९
२९	कॉपर, (ताम्र)	Cu	६३.५४
३०	जिंक, (यशद)	Zn	६५.३८
३१	गैलियम	Ga	६९.७२
३२	जर्मेनियम्	Ge	७२.६०
३३	आर्सेनिक	As	७४.९१
३४	सेलीनियम्	Se	७८.९६
३५	ब्रोमीन	Br	७९.९१६
३६	क्रिप्टान	Kr	८३.८०
३७	रुबिडियम्	Rb	८५.४८
३८	स्ट्रॉन्शियम्	Sr	८७.६३
३९	इट्रियम्	Y	८८.९२
४०	ज़र्कोनियम्	Zr	९१.२२
४१	नियोबियम्	Nb	९२.९१
४२	मोलिब्डेनम	Mo	९५.९५
४३	टेक्नीशियम्	Tc	(९९)
४४	रुथेनियम्	Ru	१०१. ७
४५	रोडियम्	Rh	१०२.९१

परमाणु-संख्या	नाम	संकेत	परमाणु-भार
४६	पैलेडियम	Pd	१०६. ७
४७	सिल्वर, (रजत, रौप्य)	Ag	१०७. ८८०
४८	कैड्मियम्	Cd	११२. ४१
४९	इंडियम्	In	११४. ७६
५०	टिन, वग	Sn	११८. ७०
५१	ऐंटिमनी	Sb	१२१. ७६
५२	टेल्यूरियम्	Te	१२७. ६१
५३	आयोडीन	I	१२६. ९१
५४	जीनान	Xe	१३१. ३
५५	सीज़ियम्	Cs	१३२. ९१
५६	बेरियम	Ba	१३७. ३६
५७	लैन्थेनम्	La	१३८. ९२
५८	सीरियम्	Ce	१४०. १३
५९	प्रेज़िओडिमियम्	Pr	१४०. ९२
६०	नीओडिमियम्	Nd	१४४. २७
६१	प्रोमीथियम्	Pm	(१४५)
६२	समेरियम्	Sm	१५०. ४३
६३	युरोपियम	Eu	१५२. ०
६४	गैडोलिनियम्	Gd	१५६. ९
६५	टर्बियम्	Tb	१५९. २
६६	डिसप्रोशियम्	Dy	१६२. ४६
६७	होल्मियम्	Ho	१६४. ९४
६८	एरबियम्	Er	१६७. २
६९	थ्यूलियम्	Tm	१६९. ४
७०	इटर्बियम्	Yb	१७३. ०४
७१	ल्यूटीशियम	Lu	१७४. ९९

परिशिष्ट (अ)

३०३

परमाणु-संख्या	नाम	संकेत	परमाणु-भार
७२	हैफनियम	Hf	१७८. ६
७३	टैंटलम्	Ta	१८०. ८८
७४	टंगस्टन, वुल्फ्रम	W	१८३. ९२
७५	रीनियम्	Re	१८६. ३१
७६	ऑस्मियम्	Os	१८०. २
७७	इरीडियम्	Ir	१९३. १
७८	प्लेटिनम्	Pt	१९५. २३
७९	स्वर्ण, (गोल्ड)	Au	१९७. २
८०	पारद, (मरकरी)	Hg	२००. ६१
८१	थैलियम्	Tl	२०४. ३९
८२	लेड, (सीस)	Pb	२०७. २१
८३	बिस्मथ	Bi	२०९. ००
८४	पोलोनियम्	Po	२१०. ००
८५	एस्टेटिन	At	(२१०)
८६	रेडान	Rn	२२२
८७	फ्रांसियम्	Fr	(२२३)
८८	रेडियम	Ra	२२६. ०५
८९	एक्टिनियम्	Ac	२२७
९०	थोरियम्	Th	२३२. १२
९१	प्रोटो-एक्टिनियम	Pa	२३१
९२	यूरेनियम्	U	२३८. ०७.
९३	नेपच्यूनियम्	Np	(२३७)
९४	प्लूटोनियम्	Pu	(२४४)
९५	अमेरिसियम्	Am	(२४३),
९६	क्यूरियम्	Cm	(२४५)
९७	बर्कीलियम्	Bk	(२४७),

परमाणु-संख्या	नाम	संकेत	परमाणु-भार
९८	केलिफोर्नियम	Cf	(२४९)
९९	आइंस्टीनियम्	Es	(२५४)
१००	फर्मियम्	Fm	(२५६)
१०१	मेडलीवियम्	Md	(२५६)
१०२	नोबेलियम्	No	(२५४)

नोट

कुछ तत्त्व इस पृथ्वी पर नहीं पाये जाते। इनका निर्माण कृत्रिम प्रयोगों द्वारा किया गया है। ऐसे हर तत्त्व के अनेक समस्थानिक प्रयोगों द्वारा उपलब्ध हुए हैं। तालिका में ऐसे प्रत्येक तत्त्व का एक ऐसा सम-स्थानिक कोष्ठ में दिया गया है जिसकी अर्धजीवन अवधि सबसे दीर्घ है।

परिशिष्ट (आ)

कुछ उपयोगी रेडियधर्मो समस्थानिक

परमाणु-संख्या	तत्त्व	समस्थानिक-भार	अर्धजीवन-अवधि
१	हाइड्रोजन	३	१२.५ वर्ष
४	बेरीलियम्	{ ७ १०	५४.५ दिन २.५ × १० ^६ वर्ष
६	कार्बन	{ ११ १४	२०.३५ मिनट ५,७२० वर्ष
७	नाइट्रोजन	१३	१० मिनट
८	आक्सीजन	१५	१.९७ मिनट
९	फ्लोरीन	१८	१.८७ घंटा
११	सोडियम	{ २२ २४	२.६ वर्ष १५.० घंटा
१२	मैग्नीशियम	२७	९.५८ मिनट
१३	एल्यूमिनियम	२९	६.६ मिनट
१४	सिलिकन	३१	२.६ घंटा
१५	फास्फोरस	३२	१४.३ दिन
१६	सल्फर	३५	८७ दिन
१७	क्लोरीन	{ ३६ ३८	४.४ × १० ^५ वर्ष ३७.३ मिनट
१८	आर्गन	{ ३७ ४१	३४ दिन १.७८ मिनट
१९	पोटैशियम	४०	९.९ × १० ^६ वर्ष

परमाणु-संख्या	तत्व	समस्थानिक-भार	अर्धजीवन-अवधि
२०	केलशियम्	४५	१५२ दिन
२१	स्कैण्डियम्	{ ४६ ४८	८५ दिन १.८३ दिन
२२	टाइटेनियम्	४५	३ घंटा
२३	वैनेडियम्	४८	१६ दिन
२४	क्रोमियम्	५१	२६.५ दिन
२५	मैगनीज़	[५२ ५४	६० दिन ३१० दिन
२६	लोह	[५५ ५९	२.९ वर्ष ४६.३ दिन
२७	कोबाल्ट	[५६ ६०	८० दिन ५.२६ वर्ष
२८	निकल	६३	८५ वर्ष
२९	ताम्र	६४	१२.८ वर्ष
३०	यशद	[६५ ६९	२५० दिन १३ ८ घंटा
३१	गैलियम्	[६६ ७२	९.२ घंटा १४ १ घंटा
३२	जर्मेनियम्	[७१ ७७	११.४ दिन १२ घंटा
३३	आर्सेनिक	[७६ ७७	२६ ८ घंटा ४० घंटा
३४	सेलीनियम्	७५	१२८ दिन
३५	ब्रोमीन	८२	३५.१ घंटा
३६	क्रिप्टान	८५	४.५ घंटा
३७	रुबिडियम्	८६	१९.५ दिन
३८	स्ट्रॉशियम्	८९	५३ दिन

परमाणु-संख्या	तत्व	समस्थानिक-भार	अर्धजीवन-अवधि
३९	इट्रियम	$\begin{cases} ९० \\ ९० \end{cases}$	२० वर्ष २.५४ दिन
४०	ज़र्कोनियम	$\begin{cases} ९५ \\ ९७ \end{cases}$	६५ दिन १७ घंटा
४१	नियोबियम	९५	९० घंटा → ३५ दिन
४२	मोलिब्डेनम	९९	६८.३ घंटा
४३	टेक्नीशियम	$\begin{cases} ९७ \\ ९९ \end{cases}$	९० दिन → १० ^३ वर्ष २ १×१०^५ वर्ष
४४	रुथेनियम	$\begin{cases} ९७ \\ १०३ \\ १०६ \end{cases}$	२ ८ दिन ४२ दिन १ वर्ष
४५	रोडियम	१०५	३६.२ घंटा
४६	पैलेडियम	१०३	१७ दिन
४७	रजत	$\begin{cases} ११० \\ १११ \end{cases}$	२७० दिन ७.५ दिन
४८	कैड्मियम	$\begin{cases} ११३ \\ ११५ \\ ११५ \end{cases}$	५.१ वर्ष २.३ दिन ४३ दिन
४९	इंडियम	११४	५० दिन
५०	वग	११३	११२ दिन
५१	ऐटिमनी	$\begin{cases} १२२ \\ १२४ \\ १२५ \end{cases}$	२.८ दिन ६० दिन २.७ वर्ष
५२	टेल्यूरियम	$\begin{cases} १२७ \\ १२९ \\ १३१ \end{cases}$	९० दिन → ९.३ दिन ३२ दिन → ७२ मिनट ३० घंटा → २५ मिनट
५३	आयोडीन	१३१	८ दिन
५४	जीनान	१३१	१२ दिन

परमाणु-संख्या	तत्व	समस्थानिक-भार	अर्धजीवन-अवधि
५५	सीज़ियम्	१३४	२.३ वर्ष
५६	बेरियम्	{ १३१ १४०	१२ दिन १२.८ दिन
५७	लैन्थेनम्	१४०	४० घंटा
५८	सीरियम्	१४१	३३ दिन
५९	प्रेज़िओडिमियम्	{ १४२ १४३	१९ घंटा १३.८ घंटा
६०	नीओडिमियम्	१४७	११ दिन
६१	प्रोमीथियम्	१४७	२.२६ वर्ष
६२	समेरियम्	१५३	४७ घंटा
६३	युरोपियम्	{ १५४ १५५	१६ वर्ष १.७ वर्ष
६४	गैडोलिनियम्	१५३	२२५ दिन
६५	टर्बियम्	१६०	७१ दिन
६६	डिसप्रोशियम्	१६६	८२ घंटा
६७	होलमियम्	१६६	२७.३ घंटा
६८	एरबियम्	१६३	६५ घंटा
६९	थ्यूलियम्	१७२	२.५ दिन
७०	इर्टरबियम्	१७५	१०० घंटा
७१	ल्यूटीशियम्	१७६	३.७ घंटा
७२	हेफ़नियम्	१८१	४५ दिन
७३	टैटलम्	१८२	११५ दिन
७४	टंग्स्टन	{ १८५ १८७	७३.२ दिन २४.१ घंटा
७५	रीनियम्	{ १८६ १८८	७२.८ घंटा १९ घंटा

परमाणु-संख्या	तत्व	समस्थानिक-भार	अर्धजीवन-अवधि
७६	ऑसमियम्	{ १८५ १९१ १९३	९७ दिन १५ दिन ३२ घंटा
७७	इरीडियम	{ १९२ १९४	७४.७ दिन १९ घंटा
७८	प्लेटिनम्	१९७	१८ घंटा
७९	स्वर्ण	{ १९८ १९९	२.६९ दिन ३.३ दिन
८०	पारद	{ १९७ २०३	६५ घंटा; २५ घंटा ४३.५ दिन
८१	थैलियम्	२०४	२.७ वर्ष
८३	बिस्मथ	२१०	४.८५ दिन
८४	पोलोनियम्	२१०	१३८ दिन
८५	एस्टेटीन	२११	७.५ घंटा

परिशिष्ट (इ)

विशेष उपयोगी रेडिय समस्थानिक

शुद्ध बीटा-विकिरण स्वतन्त्र करने वाले कुछ उपयोगी रेडियसमस्थानिक

परमाणु-संख्या	तत्त्व	परमाणु-भार	अर्धजीवन-अवधि	महत्तम विकिरण उर्जा
१	हाइड्रोजन	३	१२.५ वर्ष	०.१९ लाख इवो०
६	कार्बन	१४	५७२० वर्ष	१.५५
१५	फास्फोरस	३२	१४३ दिन	१७.१२
१६	सल्फर	३५	८७ दिन	१.६६
२०	कैलशियम्	४५	१५२ दिन	२.५४
३८	स्ट्रेशियम्	९०	२० वर्ष	५.३७
३९	इट्रियम्	९०	२५४ दिन	२१.८

परमाणु बिलम्बन

बीटा एवं गामा-विकिरण स्वतन्त्र करने वाले कुछ उपयोगी रेडियसमस्थानिक

परमाणु-संख्या तत्त्व परमाणु-भार अर्धजीवन-अवधि महत्तम विकिरण उर्जा (लाख इवो०)

बीटा गामा

११ सोडियम् २४ १५ वर्ष १३.९ १३.८; २७.६

१९ पोटेशियम् ४२ १२.४ घटा २०.४; ३५.८ १५.१

२६ लौह ५९ ४६.३ दिन २६; ४६ ११; १३

२७ कोबाल्ट ६० ५.२६ वर्ष ३.१ ११.७; १३.३

५३ आयोडीन १३१ ८ दिन ३.३; ६ ७.२, ३.६४; २.८४; ०.८

७९ स्वर्ण १९८ २.६९ दिव ९.७ ४.११

परिशिष्ट (इ)

३११

गामा-विकिरण स्वतन्त्र करने वाले कुछ उपयोगी रेडियसमस्थानिक

परमाणु-संख्या तत्त्व	परमाणु-भार	अर्धजीवन-अवधि	विकिरण उर्जा (लाख इवो०)
	उच्च ऊर्जाशील (१० लाख इवो० से अधिक)		
२७ कोबाल्ट	६०	५.२६ वर्ष	११.७; १३.३
४७ रजत	११०	२७० दिन	६.७६ से १४.१६ तक १० विकिरण
६३ युरोपियम्	१५४	१६ वर्ष	१२
७३ टैटलम्	१८२	११५ दिन	०.४६ से १२.३७ तक ३३ विकिरण

परमाणु विलक्षणन

माध्यमिक ऊर्जाशील (५ लाख से १० लाख इवो० तक)

५५	सीजियम्	१३७	३७ वर्ष	६.६२
५८	सीरियम्	१४४	२७५ दिन	१.३
५९	प्रेजियोडिमियम्	१४४	१७.५ मिनट	७ से २२ तक तीन विकिरण
(सीरियम-१४४ से उत्पन्न)				
७७	इरीडियम्	१९३	७४.७ दिन	१.३७ से ६.५१ तक १२ विकिरण

अल्प ऊर्जाशील (५ लाख इवो० से कम)

३४	सेलीनियम्	७५	१२८ दिन	०.६७ से ४.०५ तक १० विकिरण
६९	थ्यूलियम्	१७०	१२७ दिन	०.८४
७४	टंग्स्टन	१८५	७३.२ दिन	१.३४
८०	पारद	२०३	४३.५ दिन	२.८६

परिशिष्ट (ई)

कुछ उपयोगी स्थिरांक

प्रकाश वेग (C) 2.9979×10^{10} सेन्टीमीटर प्रति सेकेंड

इलेक्ट्रान आवेश (e) 4.802×10^{-10} स्थिर वैद्युत मात्रक

अथवा 1.603×10^{-19} कूलो

इलेक्ट्रान आवेश-भार अनुपात (e/m) 5.273×10^{18} स्थिर वैद्युत मात्रक प्रति ग्राम

अथवा 1.759×10^{11} विद्युत् चुम्बकत्व मात्रक प्रति ग्राम

स्थिर इलेक्ट्रान भार (me) 9.108×10^{-28} ग्राम

अथवा 0.0005489 परमाणु भार मात्रक

अथवा 5.109×10^5 लाख इलेक्ट्रान वोल्ट

न्यूट्रान-भार 1.674×10^{-24} ग्राम

अथवा 1.008665 परमाणु भार मात्रक

अथवा 939.57 लाख इलेक्ट्रान वोल्ट

प्रोटान-भार 1.672×10^{-24} ग्राम

अथवा 1.007276 परमाणु भार मात्रक

अथवा 938.27 लाख इलेक्ट्रान वोल्ट

१ परमाणु भार मात्रक 931.1×10^6 लाख इलेक्ट्रान वोल्ट

अथवा 1.49×10^{-3} अर्ग

अथवा 3.96×10^{-12} कैलोरी

अथवा 8.15×10^{-14} किलोवाट-घंटा

१. इलेक्ट्रान वोल्ट उर्जा १.६०२०७×१०^{-१९} अर्ग
 १ क्यूरी ३.७×१०^{१०} विच्छेदन प्रति सेकेंड

- १ रंटगन १ स्थिर वैद्युत मात्रक प्रति घन सेन्टीमीटर प्रामाणिक वायु
 अथवा २.०८३×१०^९ आयन युग्म प्रति घन सेन्टीमीटर
 प्रामाणिक वायु
 अथवा १.६१×१०^{१२} आयन युग्म प्रति ग्राम वायु
 अथवा ६.७७×१०^४ लाख इलेक्ट्रान वोल्ट प्रति घन सेन्टीमीटर
 प्रामाणिक वायु
 अथवा ५.२४×१०^६ लाख इलेक्ट्रान प्रति ग्राम वायु
 अथवा ८६ अर्ग प्रति ग्राम वायु

पाराशिष्ट (उ)

व्याख्यात्मक शब्दावली

अन्तरिक्ष-विकिरण

ये बाह्य आकाश-मंडल से आने वाले तीव्र-वेधी विकिरण है जिनकी उत्पत्ति अन्तरिक्ष में होती है। इन विकिरणोंकी संरचना ऊर्जाशील प्रोटान व अन्य परमाणु नाभिकों द्वारा होती है। द्रव्य पर इनके आक्रमण से अनेक कणों एवं विकिरणों की उत्पत्ति होती है।

अभ्र-प्रकोष्ठ

यह नाभिक भौतिकी का अत्यंत उपयोगी उपकरण है जिसके द्वारा कणों के मार्ग का चित्र लिया जाता है।

अर्धजीवन-अवधि

रेडियधर्मी तत्त्वों का क्षय एक विशेष नियम द्वारा होता है। इसके अनुसार प्रत्येक तत्त्व के आधे परमाणु एक नियत समय में तत्त्वांतरित हो जाते हैं। इस काल को उस तत्त्व की अर्धजीवन अवधि कहते हैं।

अल्फ़ा-कण

यह कण कुछ रेडियधर्मी तत्त्वों द्वारा स्वतंत्र होता है। इसे हीलियम तत्त्व का नाभिक भी कह सकते हैं। इसका भार ४ मात्रक एवं आवेश २ धनमात्रक है।

इलेक्ट्रान

यह ऋणावेश युक्त मूलभूत कण है जो सारे परमाणुओं में विद्यमान रहता है।

ऊर्जा

वह शक्ति जो कार्य में परिणत हो सके, ऊर्जा कहलाती है।

एक्स-विकिरण

ये प्रकाश के समान, परन्तु अति सूक्ष्म तरंग-दैर्घ्य वाले विकिरण हैं जो वेगवान् इलेक्ट्रान-दण्ड की द्रव्य पर हुई प्रतिक्रिया के फलस्वरूप उत्पन्न होते हैं।

खण्डन-क्रिया

भारी तत्त्व के नाभिक की लगभग दो बराबर भागों में बँटने की क्रिया को खण्डन-क्रिया कहते हैं। इसके फलस्वरूप नाभिक से कुछ न्यूट्रान एवं ऊर्जा मुक्त होती है।

गाइगर-मुलर गणक

यह रेडियधर्मिता मापने का एक यंत्र है। इस उपकरण में लगी एक विशेष नलिका द्वारा आवेशयुक्त कण एवं आयनीकरण विकिरणों की उपस्थिति का ज्ञान होता है। नलिका में उत्पन्न हलचल को संवृद्ध करके लेखी द्वारा अंकित करते हैं अथवा ध्वनि द्वारा ज्ञात करते हैं।

गामा-विकिरण

प्रकाश के अनुरूप विकिरण जिनका तरंग-दैर्घ्य अत्यंत सूक्ष्म (एक्स विकिरण से भी कम) होता है, गामा-विकिरण कहलाते हैं। भार-रहित एवं आवेश-रहित ये विकिरण अनेक तत्त्वों के तत्त्वांतरण के फलस्वरूप मुक्त होते हैं और द्रव्य में, एक्स-विकिरण से अधिक, प्रवेश करने की क्षमता रखते हैं।

ड्यूटीरियम

हाइड्रोजन का २ भार संख्या वाला समस्थानिक ड्यूटीरियम कहलाता है।

तत्त्वान्तरण

किसी नाभिक में ऐसे क्रान्तिकारी परिवर्तन को जिसके फलस्वरूप वह दूसरे तत्त्व में परिणत हो जाय, तत्त्वांतरण कहते हैं।

त्वरक

कणों को तीव्र गति देने वाले उपकरण को त्वरक कहते हैं। अनेक प्रणालियों के त्वरक बनाये गये हैं। साइक्लोट्रान एक विशेष रूप का त्वरक है जिसमें कणों को सर्पिल मार्ग में त्वरित करते हैं। कणों को सीधे मार्ग में त्वरित करने वाले यंत्र को 'सरल त्वरक' कहते हैं।

नाभिक

यह परमाणु का वह मध्य भाग है जो अत्यंत सूक्ष्म स्थान ग्रहण करता है, परन्तु जिसमें उसका लगभग सारा भार सकेन्द्रित रहता है। इसमें प्रोटान एवं न्यूट्रान कण उपस्थित रहते हैं।

न्यूट्रान

यह आवेशरहित मूलभूत कण है जिसका भार लगभग प्रोटान के समान है।

परमाणु

यह किसी मूल तत्त्व का वह सूक्ष्मतम कण है जो स्वतंत्र अवस्था में रह सकता है। परमाणु विभिन्न मात्राओं में रासायनिक प्रक्रिया करके अणुओं का निर्माण करते हैं।

परमाणु-ऊर्जा

यह वह ऊर्जा है जो परमाणुओं की खण्डन अथवा संगलन प्रक्रिया के फलस्वरूप मुक्त होती है।

परमाणु-प्रतिकारी

परमाणुओं के नियंत्रित खण्डन की वह प्रणाली तथा यंत्र जिसके द्वारा मुक्त ऊर्जा का उपयोग किया जा सकता है, परमाणु-प्रतिकारी कहलाते हैं।

पाजिट्रान

यह इलेक्ट्रान का प्रति-कण है जिसे घनावेश युक्त मूलभूत कण कह सकते हैं। इस पर आवेश १ मात्रक है और इसका भार साधारण इलेक्ट्रान के समान है।

पारयूरेनियम तत्त्व

ये यूरेनियम से उच्च परमाणु-संख्या वाले तत्त्व हैं जो प्रकृति में नहीं पाये जाते। इनका निर्माण कृत्रिम क्रियाओं द्वारा हुआ है।

प्रोटान

यह हाइड्रोजन परमाणु नाभिक होता है जो मूलभूत कणों की श्रेणी में आता है। इस पर १ मात्रक घनावेश और १ मात्रक भार संकेन्द्रित रहता है।

प्लूटोनियम

यह मनुष्य निर्मित ९४ परमाणु-संख्या वाला तत्त्व है जिसका भार सामान्यतः २३९ रहता है। इसका निर्माण यूरेनियम-२३८ पर मन्द न्यूट्रानों के आक्रमण से होता है। यह एक खण्डनीय तत्त्व है और परमाणु-ऊर्जा उत्पन्न करने में उपयोगी सिद्ध हुआ है।

बीटा कण अथवा इलेक्ट्रान

यह ऋणावेशयुक्त सूक्ष्मतम कण है जो अनेक रेडियोधर्मी तत्वों द्वारा मुक्त होता है।

मोनेज़ाइट

यह थोरियम तत्त्व का मुख्य अयस्क है। भारतमें यह केरल राज्य में उपलब्ध है।

यूरेनियम

यह प्रकृति में उच्चतम भार संख्या वाला तत्त्व है। इसकी परमाणु-संख्या ९२ तथा भार-संख्या २३८ है। इसका एक २३५ भार संख्या वाला समस्थानिक भी सूक्ष्म मात्रा में पाया जाता है जो खण्डनीय पदार्थ है। इसका उपयोग परमाणु-प्रतिकारी में होता है।

रेडिय तत्त्व

वे तत्त्व जो रेडियधर्मी गुण रखते हैं।

रेडियधर्मिता

परमाणु की स्वतः तत्त्वांतरण क्रिया के गुण को रेडियधर्मिता कहते हैं। यह विशेष नियमों द्वारा नियंत्रित होती है।

रेडियम

यह क्षारीय मृदा—समूह का एक तत्त्व है जो स्वतः तत्त्वांतरित होता रहता है। इसकी भार-संख्या २२६ और परमाणु-संख्या ८८ है। यह रेडिय-धर्मी तत्त्व है और एक अल्फा-कण मुक्त कर रेडान में परिणत हो जाता है।

विच्छेदन

परमाणुओं के टूटने की प्रतिक्रिया जिसके फलस्वरूप कण एवं विकिरण मुक्त होते हैं, विच्छेदन कहलाती है।

संकेतक

किसी तत्व का रेडियधर्मी समस्थानिक जो इतनी सूक्ष्म मात्रा में उपस्थित हो कि उसका अस्तित्व गणक यंत्र द्वारा ज्ञात हो, संकेतक कहलाता है।

संगलन-क्रिया

हलके तत्वों के नाभिकों को संगलन द्वारा भारी तत्वों के नाभिकों में रूपान्तरण करने को नाभिक-संगलन क्रिया कहते हैं। इस क्रिया द्वारा प्रभूत ऊर्जा उत्पन्न होती है।

संयन्त्रक

परमाणु-प्रतिकारी में न्यूट्रानों की गतिज ऊर्जा को कम करने वाली वस्तु को संयन्त्रक कहते हैं। खण्डन शृंखला प्रतिक्रिया चलाने में इसका उपयोग होता है।

समस्थानिक

एक ही तत्व के विभिन्न भार वाले परमाणु समस्थानिक कहलाते हैं। इनकी परमाणु-संख्या समान होते हुए भी परमाणु-भार भिन्न-भिन्न होते हैं।

साइक्लोट्रान

यह परमाणु-विखण्डन प्रयोगों के हेतु निर्मित यंत्र है जिसमें दो अर्ध गोलाकार खोखले विद्युत् चुम्बक लगे रहते हैं। इनके मध्य से कण त्वरित होते हैं।

परिशिष्ट (ऊ)

पारिभाषिक शब्दावली

अंतरिक्ष	Cosmos
अंतरिक्ष-किरण	Cosmic ray
अंतरिक्ष-यान	Space-ship
अश	degree
अक्षय्यता	conservation
अक्षीय	axial
अणु	molecule
अति निर्वात	high vacuum
अतिसतृप्त	supersaturated
अनुनाद	resonance
अनुनाद पट्ट	resonance band
अनुनादी ग्रहण	resonance capture
अनुपात गुणक	ratio index factor
अनुप्रस्थ	horizontal
अणुवीक्षण यंत्र	microscope
अपद्रव्य	impurity
अभिकर्मक	reactant
अभ्रक	mica
अभ्रकोष्ठक, अभ्रप्रकोष्ठ	cloud chamber
अयस्क	ore

अर्धचालक	semiconductor
अर्धजीवन अवधि	half-life period
अवयव	component
अवशेष	tailing
अवशोषण	absorption
अतितप्त	superheated
अवैयक्तिक	indirect
असपीड्य	incompressible
आक्रमण	bombard
आघात-तरंग	shock-wave
आधारभूत	fundamental
आभा	flash
आयतन कोण	angle of incidence
आयताकार	rectangular
आयन	ion
आयन-युग्म	ion pair
आयन विनिमय	ion exchange
आयनीकरण	ionization
आर्द्रता	moisture, humidity
आलम्बित	suspended
आवर्त-सारणी	periodic table
आवेश	charge
आवृत्ति	frequency
आवृत्ति मूच्छक	frequency modulated
आसवन	distillation
इस्पात	steel
उत्तेजन	excitation

उत्तोलक	elevator
उत्प्रेरक	catalyst
उत्प्रेरित	induced
उत्प्रेरित भंजन	catalytic cracking
उत्सर्जन	emission
उदय	release
उपकरण	apparatus
उपग्रह	satellite
उपपारमाणविक विमितियाँ	sub-atomic distances
उप-संक्रान्तिक	sub-critical
उर्वरक	fertilizer
ऊर्जा	energy
ऊतक	tissue
ऊष्मा	heat
ऊष्मा विनिमायक	heat exchanger
ऋणाग्र	cathode
ऋणात्मक	negative
ऋणायन	anion
कक्षा	orbit
कण	particle
कला	phase
काल	time
किरणभावन	irradiation
किलोवाट-घंटा	kilowatt-hour
कीटमारक	insecticide
कृत्रिम	artificial
कैलास, मणिभ	crystal

कोण	angle
कोष कोश	cell
क्रान्तिक	critical
क्वांटम् यांत्रिकी	quantum mechanics
क्षय	decay
क्षरण	leak
क्षिप्र	prompt
क्षेत्र	field
खण्ड	fragment
खण्डन	fission
गतिज ऊर्जा	kinetic energy
गलग्रन्थि	thyroid
गलनांक	melting point
गवाक्ष	window
गामा-उद्यान	gamma garden
गिरीं	pulley
गुणक	factor
गुणक दशा	multiple stage
गुप्त प्रतिबिम्ब	latent image
गुरु परिवर्तन	mutation
गेरुई-प्रतिरोधी	rust resistant
गोला	sphere
गौण	secondary
ग्रन्थि	tumour
ग्रहण	capture
ग्रहीत्व	uptake
ग्राहक	holder

घटन	phenomenon
घन	cube
घनत्व	density
चक्रण	circulation
चमक	scintillation
चयापचय	metabolism
चरम	critical
चाप	arc
चापदीप	arc-lamp
चालक	conductor
चिकित्सा-निदान	medical therapy
चिह्नित	labelled
चुम्बक	magnet
जनित्र	generator
जलाशय-प्रतिकारी	pool reactor
जीव-रसायन	biochemistry
जीवाणु	bacteria
जैव रासायनिक	biochemical
टक्कर	collision
टर्बो जनित्र	turbogenerator
तत्त्व	element
तत्त्वांतरण	transmutation
तनु	dilute
तनुता	dilution
तन्तु	filament
तरंग	wave
तरंग-दैर्घ्य	wave-length

ताप-आयनिक	thermoionic
ताप-नाभिक	thermonuclear
ताप-वैद्युत	thermoelectric
ताल	lens
तैल	oil
त्वरक	accelerator
दण्ड	rod, beam
दिक्	space
दिष्ट धारा	direct current
दुर्बल संकेन्द्रण	weak focussing
दूरस्थ नियंत्रण	remote control
दैहिक	physiological
दोलक	oscillator
दोलन	oscillation
दोलन लेखी	oscillograph
द्रव	liquid
द्रव्यमान	mass
द्रावक	flux
द्वितीयक प्रणाली	secondary system
धडकन क्षमता	pumping efficiency
धनाग्र	anode
धनात्मक	positive
धनायन	cation
धातुकर्म	metallurgy
धातुमल	slag
धात्र	armature
धारा	current

ध्रुव	pole
ध्रुवीयता	polarity
नलिका	tube
नाभिक	nucleus
नियंत्रण-दण्ड	control rods
नियमित	controlled
नियामक	regulator
निरपेक्ष	neutral
निरावेश	neutral
निरीक्षण	observation
निर्वीजित	sterilized
निर्वात	evacuated, vacuum
निष्कलंक (अकलुष) इस्पात	stainless steel
नोदक दण्ड	propeller shaft
न्यूनता	deficiency
पटल	screen
पट्टिका	plate
पाठ्यांक	reading
परम आवेश	absolute charge
परमाणु	atom
परमाणु ऊर्जा	atomic energy
परमाणु-पुंज	atomic pile
परमाणु विखण्डक यंत्र	atom smasher
परमाणु-संख्या	atomic number
परवलय	parabola
परिक्रमण	revolution
परिगणन	calculation

परिधि	range
परिपथ	circuit
परिवहन	circulation
परिष्करण	purification
परोपजीवी	pests
पायस	emulsion
पार-बैंगनी	ultra-violet
पारयूरेनियम	transuranium
पार-सक्रान्तिक	super-critical
पिण्ड सूत्र	chromosomes
पुनरुत्पादन गुणक	reproduction factor
पृथक्करण	separation
पृष्ठ तनाव	surface tension
पोषक तत्त्व	nutrient
प्रकाश कोष	photo cell
प्रकाश पायस	photo emulsion
प्रकाश सश्लेषण	photosynthesis
प्रकिण्व	enzyme
प्रकीर्णन	scattering
प्रक्रम	mechanism, process
प्रतिक्रण	anti-particle
प्रतिकर्षण	repulsion
प्रतिकारी	reactor
प्रतिक्रिया	reaction
प्रतिक्षेप	recoil
प्रतिदीप्ति	fluorescence
प्रतिबिम्ब	image

प्रतिमान	standard
प्रतिरूप	model
प्रतिरोधक	barrier
प्रतिरोधी	resistant
प्रतिरोधकता	resistance
प्रत्यावर्तक	reflector
प्रत्यावर्ती धारा	alternating current
पृथक्कृत	insulated
प्रपात	cascade
प्रयोग	experiment
प्रवर्धन	amplify
प्रशीतन	cooling
प्रशीतन कुंडली	cooling coil
प्राथमिक प्रणाली	primary system
प्रायिकता	probability
फंदे	loops
बन्धन ऊर्जा	binding energy
बलवान् संकेन्द्रण	strong focussing
बहुलीकरण	polymerization
बिन्दु	drop
बुदबुद कोष्ठक	bubble chamber
बेलन	cylinder
भार वर्णक्रम लेखी	mass spectrograph
भारी जल	heavy water
भौतिक	physical
भौतिकी	physics
भौमिकी	geology

भ्रमि	spin
मणिभ	crystal
मध्यमान	mean
मनका	beads
मात्रक	unit
मुक्त	release
मुक्तमूलक	free radical
मूलभूत	fundamental, elementary
मृत्तिका	soil
मेरुदण्ड	spinal cord
यंत्र	instrument
यांत्रिकी	mechanics
युग्म	pair
यौगिक	compound
रचना	composition
रसायन	chemistry
रसायनज्ञ	chemist
रासायनिक	chemical
रूपांतरण	transformation
रेडिय तत्त्व	radio element
रेडियधर्मिता	radio activity
रेडियधर्मी	radioactive
रेडिय-रसायन	radio chemistry
लक्ष्य	target
लघु तरंग	short wave
लवण	salt
वंशानुगत	hereditary

वर्ण-क्रम मापी	spectrometer
वर्ण-क्रम लेखी	spectrograph
वर्तन	refraction
वर्तनांक	refractive index
वलय	ring
वलयाकार चुम्बक	ring magnet
वायव्य विसरण	gaseous diffusion
वायुमण्डल	atmosphere
वाष्पशील	volatile
वाष्पित्र	boiler
वाहक तत्त्व	carrier element
विकर्षण	repulsion
विकसित	developed
विकिरण	radiation
विकृति	deformation
विक्षेप	deflect
विक्षेपण	deflection
विघटन	disintegration
विद्युत्	electricity
विद्युत् चुम्बकीय	electromagnetic
विद्युदग्र	electrode
विधि	method
विनिमय	exchange
विभव	potential
विमा	dimension
विरल मृदा	rare earth
विलम्बित	delayed

विलयन	solution
विलोम ध्रुव	opposite poles
विशिष्टता	specificity
विश्लेषण	analysis
विषम	opposite
विषमाग	heterogeneous
विषाणु संक्रमण	virus infection
विषुवत रेखा	equator
विसरण	diffusion
विसर्ग नलिका	discharge tube
विमर्जन	discharge
वृक्ष-चयापचय	plant metabolism
वृक्ष-प्रजनन	plant breeding
वृत्ताकार प्रवाहित	circulated
वेग	velocity
वेधन	penetration
वोल्टता	voltage
व्यवस्था	assembly
व्युत्पन्न	derivative
शक्ति	force
शर्करा	sugar
शल्य कर्म	surgery
शीतन पद्धति	cooling mechanism
शून्य प्रवणता	zero gradient
शृंखला	chain, series
श्यानता	viscosity
शृंग	peak

श्लेषा	gelatin
श्लेषीकरण	gelatinisation
संकर	alloy
संकेत	symbol
संकेतक पद्धति	tracer technique
संकेत मार्ग	trail
संकेन्द्रित	focussed
संक्षारण	corrosion
संगलन	fusion
संघट्टन	assembling
सघनक	condenser
संघनन	condensing
संचरित	propagated
संचयागत	cumulative
संतुलन	balance
सघान	launch
सप्रजनक	breeder
समात्रा	mass
संमिश्र	alloy
समृद्ध	enriched
संयंत्रक	moderator
संरचन	structure
संवहन	convection
संवेदनशीलता	sensitivity
सवेदी	sensitive
संसंजक शक्ति	cohesive force
संसंजन	cohesion

सक्रियकरण विश्लेषण	activation analysis
सक्रिय भाग	core
सक्रियमाण ऊर्जा	energy of activation
सतर्कता सूचक	warning signal
सान्द्र	concentrated
सापेक्षवाद	relativity
समताप मण्डल	stratosphere
समता	uniformity
समस्थानिक	isotope
समस्वरण घुन्डी	tuning knob
समाग	homogeneous
समीकरण	equation
सम्यक्	accurate
सरल त्वरक	linear accelerator
मुचालक	good conductor
स्थानान्तरण	transfer
स्थिर वैद्युत	electrostatic
स्नेहक	lubricant
स्पद	pulse
स्पदन	vibration
स्पन्दित शक्ति	pulsed power
स्वतः	spontaneous
हलचल	circulation
हस्तांतरण	disposal

